तथा ताम्रे न कुर्वीत कदाचन ॥ उष्णोदकैर्धान्यचूर्णैः करौ श्मश्रूणि शोधयेत् ॥" अथ पिण्डदानम् । तच्चार्चनोत्तरमग्नौकरणोत्तरं भोजनोत्तरं विकिरोत्तरं स्वधावाचनोत्तरं विप्रविसर्जनोत्तरं चेति हेमाद्रौ स्मृतिषु च पक्षा उक्ताः । तेषां शाखाभेदेन व्यवस्था । "प्रेतश्राद्धेषु पूर्वमन्येषु भोजनोत्तरम् ।" इति चन्द्रिकामाधवौ । सर्वत्र भोजनोत्तरमिति बहवः । आश्वलायनः—"भुक्तवत्स्वनाचान्तेषु पिण्डान्निदध्यादाचान्तेष्वेके । भुक्तवत्स्विति पूर्वनिषेधार्थम् । साग्निरतिप्रणीतसमीपे अनग्निर्द्विजसमीपे । हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः—'व्याममात्रं समुत्सृज्य पिण्डांस्तत्र प्रदापयेत् ।' प्रसारितभुजान्तरं व्यामः । संकटे तु व्यासः—'अरत्निमात्रमुत्सृज्य' इति । यत्तु तत्रैव—'सिकताभिर्मृदा वापि वेदी दक्षिणनिम्नगा ।' इति । तदन्यशाखिपरम् । देवलः—'ततस्तैरभ्यनुज्ञातो दक्षिणां दिशमेत्य च ।' चन्द्रिकायाम्—"पिण्डनिर्वापणं कार्यं कुशाभावे विचक्षणैः । काशेषु राजदूर्वासु पवित्रे परमे हिते ॥" आश्वलायनः—'स्फ्येन रेखामुल्लिखेत् । अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषद इति तामभ्युक्ष्य सकृदाच्छिन्नैर्दर्भैरवस्तीर्य प्राची-

---

(कुशा) इसकी पीकको कांसी और तांबेके पात्रमें कभी न करे, गरम जल और अन्नके चूर्णसे डाढी मूछोंको शुद्ध करे । अब पिंडदान कहते हैं । उसमें इतने मत हेमाद्रि आदि स्मृतियोंमें लिखे हैं कि, पूजनके अनन्तर, अग्नौकरणके अनन्तर, भोजनके उपरान्त, विकिरके उपरान्त, स्वधा वाचनके उपरान्त, ब्राह्मण विसर्जनके उपरान्त पिण्डदान करे, इन सब पक्षोंकी शाखाके भेदसे व्यवस्था जाननी उचित है चन्द्रिका और माधव तो यह मानते हैं कि, प्रेत श्राद्धमें भोजनसे पहिले और दूसरे श्राद्धमें भोजनके पीछे पिंडदान करे, सब श्राद्धोंमें भोजनके पीछे करे, यह बहुत कहते हैं । आश्वलायनने लिखा है कि, भोजनके पीछे और आचमनके पहिले पिंडदान करे, आचमनके अन्तमें दे यह कोई कहते हैं, भोजनके अनन्तर दे, यह कथन पहले निषेधके निमित्त है अग्निहोत्री अतिप्रणीत अग्निके निकट और अनग्नि ब्राह्मणोंके समीप पिण्डदान दे हेमाद्रिमें जातूकर्ण्यका वाक्य है कि, व्याम (भुजान्तर) मात्र स्थानको त्यागकर पिंड दे, फैलाई हुई बांहके अन्तरको व्याम कहते हैं, और संकटमें अरत्नि मात्र अन्तर त्यागकर पिंड दे यह व्यास कहते हैं जो उसी स्थानपर लिखा है कि, रेत वा मृत्तिकासे दक्षिणकी ओर नीची वेदी बनावे वह अन्य शाखावालोंके निमित्त है । देवलने लिखा है कि, फिर उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे दक्षिण दिशामें जाकर पिंड दे, चन्द्रिकामें लिखा है कि, कुशा न हो तो बुद्धिमान् मनुष्य काश राजदूर्वाको उत्तम पवित्र पर पिंडदान करे । आश्वलायनने लिखा है कि, "स्फ्य" से रेखा लिखे, फिर "अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः" इस मन्त्रसे उसको छिडके फिर एक बार तोडी हुई कुशा उसपै धरे फिर अपसव्य

नावीती रेखां त्रिरुदकेनोपनयेच्छुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इति तस्यां पिण्डान्निपृणीयात्पराचीनपाणिः पित्रे पितामहाय प्रपितामहायैतत्तेऽसौ ये च त्वामत्रानु ' इति। हेमाद्रौ पारस्करः-' कराभ्यामुल्लिखेत् स्फ्येन कुशैर्वापि महीं द्विजः ॥' बह्वृचानां करेणैव लेखा चाग्नेय्यभिमुखेति वृत्तिः। ' दक्षिणाप्राचीं वेदिमुद्धृत्य ' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च। देवलः-" आवाहयित्वा दर्भाग्रैस्तेषां स्थानानि कल्पयेत्। तेष्वासीनेषु पात्रेण प्रयच्छेत्सतिलोदकम् ॥ " पराचीनेन निम्नपितृतीर्थेन। वायवीये-' मधुसर्पिस्तिलयुतांस्त्रीन् पिण्डान्निर्वपेद्बुधः।' त्रिस्थलीसेतौ-" तिलमन्नं च पानीयं धूपं दीपं पयस्तथा। मधुसर्पिःखण्डयुक्तं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते ॥ " याज्ञवल्क्यः " सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः। उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान्दद्याद्वै पितृयज्ञवत् ॥" केचित् पिण्डेषु माषान् वर्जयन्ति। "माषाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वर्ज्याश्चैवाग्निपिण्डयोः। ब्राह्मणेषु यथा मद्यं तथा माषोऽग्निपिण्डयोः ॥" इति स्मृतिसारात्। 'माषान् सर्वत्र वै दद्यात् पिण्डेऽग्नौ च विवर्जयेत्।' इति स्मृतेश्च। अत्र मूलं चिन्त्यम्। हेमाद्रावपि सर्वशब्दस्य प्रकृतार्थत्वात्सर्वान्नग्रहणमुक्तम्। 'अत्र शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमेकत्रोद्धृत्योच्छिष्टसमीपे दर्भेषु त्रींस्त्रीन् पि-

---

होकर रेखापर तीन बार जल छिड़के कि, पिता, पितामह, प्रपितामह शुद्ध हों, फिर उस रेखापर सीधे हाथसे पिता, पितामह, प्रपितामहको पिण्डदान दे और कहे कि, यह पिण्ड तुम्हारे और तुम्हारे अनुयायियोंके निमित्त है, हेमाद्रिमें पारस्करका कथन है कि हाथोंसे वा "स्फ्य " से वा कुशाओंसे ब्राह्मण रेखा करे, बह्वृचोंको तो एक हाथसे रेखा अपने संमुख करनी लिखी है यह वृत्तिग्रन्थमें लिखा है, आपस्तम्बका भी कथन है कि, दक्षिणको नीची वेदीपर रेखा करके पिण्ड दे, देवलका कथन है कि, आवाहन करके तीन कुशाओंके अग्रभागपर पितरोंकी कल्पना करे, जब बैठ जायँ तब पात्रमें रखकर पराचीन (नीचे किये पितृतीर्थ) से तिल जल दान करे, वायवीयका कथन है कि, बुद्धिमान् मनुष्य मधु, घी, तिलसे युक्त तीन पिण्ड दे। त्रिस्थलीसेतुमें लिखा है कि, तिल, अन्न, जल, धूप, दीप, दूध, मधु, घी, खांडसे युक्त अष्टांग पिंड कहा है, याज्ञवल्क्यने कहा है कि तिलोंसहित सम्पूर्ण अन्नको लेकर दक्षिणकी ओर मुख कर मनुष्य उच्छिष्टके निकट पितृयज्ञके समान पिंडदान करे, कोई तो इस स्मृत्यर्थसारके वाक्यसे पिंडोंमें उरदोंको वर्जित करते हैं कि उरद श्राद्धोंमें लेने चाहिये किन्तु अग्नि और पिंडोंके विषयमें निषिद्ध हैं कारण कि, जैसे ब्राह्मणके विषे मदिरा दूषित है इसी प्रकार अग्नि और पिंडोंमें उरद दूषित हैं, ऐसा स्मृतिसारमें लिखा है और स्मृतिमें भी लिखा है कि उरदोंको सर्वस्थानमें देना परन्तु पिंड और अग्निमें न देना, इसमें मूल विचारने योग्य है। हेमाद्रिमें तो सर्व शब्दका प्रकृतार्थ होनेसे सम्पूर्ण अन्नोंका ग्रहण करना। यहां सम्पूर्ण शेष रहे अन्नको ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर एक पात्रमें उठा ले,

ण्डान् दद्यात्' इति गोभिलसूत्रे ॥ 'सर्वस्मात् प्रकृतादन्नात्पिण्डान्मधुतिलान्वितान्।' इति च। शेषनियमात्तदभावे पिण्डनिवृत्तिः प्राप्नोतीति मैथिलवाचस्पती। तन्न। तुषोपवापवत् परप्रयुक्तद्रव्यत्वेऽप्यर्थकर्मत्वाद्गुणानुरोधेन प्रधानत्यागाच्च शेषलोपेऽपि द्रव्यान्तरेण कार्यम्। अतो नेयं प्रतिपत्तिः। किंतु प्रधानमित्युक्तं प्राक्। अन्यथा सपिण्डीकरणादौ संयोजनादेः प्रधानस्य लोपापत्तेरिति दिक्। अथ पिण्डप्रमाणम्। हेमाद्रावङ्गिराः—"कपित्थबिल्वमात्रान्वा पिण्डान्दद्याद्विधानतः। कुक्कुटाण्डप्रमाणान्वामलकैर्बदरैः पुमान् ॥" इति। तत्रैव धूम्रः—"कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डान् दद्यात्समाहितः। तत्समं विकिरं दद्यात् पिण्डान्ते तु षडंगुलैः ॥" अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टास्तु—"एकोद्दिष्टे सपिण्डे तु कपित्थं तु विधीयते। नारिकेलप्रमाणं तु प्रत्यब्दे मासिके तथा ॥ तीर्थे दर्शे च संप्राप्ते कुक्कुटाण्डप्रमाणतः। महालये गयाश्राद्धे कुर्यादामलकोपमम् ॥ २ ॥" इत्याहुः। कलिकायामाचार्यैः—"यत्र स्युर्बहवः पिण्डास्तत्र बिल्वफलोपमाः। यत्र चैको भवेत्पिण्डस्तत्र खर्जूरसन्निभः ॥ प्रेतपिण्डस्तु दैर्घ्येण द्वादशांगुल उच्यते॥" इति। वायवीये—'पत्नी पिण्डांस्तु मृद्नीयात्त्रिवर्गस्य सहायिनी ॥' हेमाद्रौ लौगाक्षिः—"महालये गयायां च प्रेतश्राद्धे

फिर उसको उच्छिष्टके निकट कुशाओंपर तीन २ पिंड दे, यह गोभिलसूत्रमें लिखा है संपूर्ण प्रकृत अन्नसे शहत तिलयुक्त पिंडोंको दे शेष नियम होनेसे उसके अभावमें पिंडकी निवृत्ति होती है यह मैथिल और वाचस्पतिका कथन है सो उचित नहीं तुषोंके उपवाप (बोना) के समान पर प्रयुक्त द्रव्यवाले कर्मको अर्थकर्म होनेसे, और गुणके अनुरोधसे, प्रधानके त्यागसे शेष पदार्थके अभावमें भी दूसरे द्रव्यसे कर्म करना, इससे यह प्रतिपत्ति नहीं किंतु प्रधान है यह पहले कह आये हैं नहीं तो सपिंडीकरण आदिमें मुख्य भी पिंड मिलानेका लोप हो जायगा यह संक्षेपसे कहा है। अब पिंडके प्रमाण वर्णन करते हैं—हेमाद्रिमें अंगिराका वाक्य है कि, कैथ और बेलके प्रमाण वा कुक्कुटके अण्डे वा आंवले वा बेरके तुल्य पिंड विधिसे देवे। वहां ही धूम्रका कथन है कि कैथके प्रमाणसे सावधान हो कर पिंड दे और पिंड दिये पीछे वहां छः अंगुलके अन्तर उतने ही विकिर दान करे, अन्त्येष्टिपद्धतिमें भट्टोंने तो एकोद्दिष्ट और सपिण्डोंमें कैथके तुल्य, मासिक और वार्षिकमें नारियलके तुल्य, तीर्थके मिलनेपर वा दर्शमें कुक्कुटके अंडेके समान, महालय और गयाश्राद्धमें आमलेके समान पिंड देना कहा है, यह कहते हैं, कालिकामें आचार्योंने लिखा है कि, जहां बहुतसे पिंड हों वहां बेलफलके समान और जहां एक पिंड हो वहां खजूरके सदृश और प्रेतका पिंड तो बारह अंगुल लंबा देना कहा है। वायवीयमें लिखा है कि, धर्म, अर्थ, कामकी सहायिनी पत्नी यत्नसे उन पिंडोंको मलकर बनावे, हेमाद्रिमें लौगाक्षिका कथन है कि, महालय, गया और प्रेतका श्राद्ध और

दशाहिके । पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत् ॥" शाट्यायनिः-'असावेतत्त इत्युक्त्वा तदन्ते च स्वधा नमः।' असावित्यत्र सम्बन्धरूपगोत्रादिविशिष्टं पित्रादिनाम सम्बुद्ध्यन्तमुक्त्वा पुनश्चतुर्थ्यन्तं तदन्तेऽयं पिण्ड इदमन्नं वा स्वधा नमो न ममेति वदेदिति हेमाद्रिः । पिण्डदाननिर्णयः । पित्रादिनामाज्ञाने त्वापस्तम्बः-'यदि नामानि न विद्यात्स्वधापितृभ्यः पृथिवीषद्भ्य इति पिण्डं दद्यात्, स्वधापितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्य इति द्वितीयम्, स्वधापितृभ्यो दिविषद्भ्य इति तृतीयम्, एवं मातामहेषु मातृषु च' ॥ बह्वृचानां तूक्तं प्राक् कलिकायां स्मृतिः-'यावद्देवोच्चरेन्मन्त्रं तावत्प्राणं निरोधयेत् ॥' येषा तु गृह्योक्तं दर्शे श्राद्धं पृथगुक्तं तेषां पितृभ्यः पश्चिमे मातृभ्यस्तत्पश्चिमे मातामहीभ्यः पिण्डादि देयमिति सांख्यायनः। 'अस्मिन् पक्षे तत्पश्चिमे मातामहीभ्योऽपि दद्यात्' इति हेमाद्रिः।'पूर्वासु पितृभ्योऽपि दद्यादपरासु स्त्रीभ्यः' इति सूत्राच्च । एवं यत्र तीर्थमहालयादौ-'केचिदिच्छन्ति नारीणां पृथक्छ्राद्धं महर्षयः।' इति चतुर्विंशतिमतात् 'पित्रादि नवदैवत्यं तथा द्वादशदैवतम्' इत्यग्निपुराणाच्च मातॄणां पृथगुक्तम् । यत्र वा " आचार्यगुरुशिष्येभ्यः सखिज्ञातिभ्य एव च । तत्पत्नीभ्यश्च सर्वा-

---

दशगात्र श्राद्ध, इनमें पिंड शब्द और अन्य श्राद्धोंमें अन्न शब्द उच्चारण करे, शाट्यायनिका कथन है कि, असावेतत्ते यह कहकर स्वधा नमः कहे और यहां पितरोंका संबंध रूप गोत्र आदिसे युक्त सम्बुध्यन्त हे पितः आदि नाम कहकर फिर चतुर्थ्यन्त नाम पित्रे आदि, फिर अयं पिंडः इदमन्नं, स्वधा नमः फिर (न मम) मेरा नहीं यह उच्चारण कर दे दे यह हेमाद्रिका मत है ! पिता आदिके नाम यदि न जानते हों तो आपस्तम्बने यह लिखा है कि जो नाम न जाने तो पृथ्वीसत् पितरोंको स्वधा यह कहकर पहिला पिंड और अन्तारिक्षसत् पितरोंको स्वधा यह कहकर दूसरा पिंड और दिविषत् पितरोंको स्वधा यह कहकर तीसरा पिंड प्रदान करे बह्वृचोंके निमित्त तो पहिले कह आये हैं । कलिकामें स्मृतिका वाक्य है कि, इतने मंत्रको जबतक कहे तबतक प्राणको रोके जिनके गृह्यसूत्रमें अमावास्याको पितरोंका श्राद्ध पृथक् लिखा है उनके मतमें पितरोंके पश्चिम दिशामें माताओंके माताओंसे पश्चिम ओरमें मातामहीको दे यह सांख्यायनका मत है । इस पक्षमें उन्हींके पश्चिम और मातामहियोंको भी दे, यह हेमाद्रिका कथन है, और यह सूत्र भी है कि, पूर्व दिशाओंमें पितरोंको और पश्चिम ओरमें स्त्रियोंको दे, इसी प्रकार जहां तीर्थ और महालय आदिमें कोई महर्षि स्त्रियोंके पृथक् श्राद्धकी इच्छा करते हैं और इस अग्निपुराणके कथनसे पिता आदि नौ देवताओंका और विश्वेदेवा आदि बारह १२ देवताओंका श्राद्ध होता है इससे माताओंका श्राद्ध पृथक् वर्णन किया है, कहीं ऐसा है कि, आचार्य गुरु शिष्योंको सखा ज्ञातियोंको और उनकी सम्पूर्ण पत्नियोंको और सदा उन सबको महालयमें पृथक् पिंड दे,

भ्यस्तथैव च जलाञ्जलीन् ॥ पिण्डांस्तेभ्यः सदा दद्यात्पृथग्भाद्रपदे नरः। तीर्थेषु चैव सर्वेषु माघमासे मघासु च ॥ २ ॥" इति चतुर्विंशतिमते-"दौहित्रपुत्र-दाराश्च एकनिष्ठाः सहोदराः। निःसन्ताना मृता ये च तेभ्योऽप्यत्र प्रदीयते॥" इति एकोद्दिष्टान्युक्तानि तत्रापि तत्पश्चिमे पिण्डदानं ज्ञेयम्। येषां न पृथक् तैः सपत्नीकाः पित्रादयो वाच्याः। "अन्वष्टकागयामातृश्राद्धं चैव मृतेऽहनि। एकोद्दिष्टं तथा मुक्त्वा स्त्रीषु नान्यत्पृथग्भवेत् ॥" इति शंखोक्तेश्च। मनुः-'तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपनादिकम्।' हस्तलेपाभावेऽपि हस्तं निमृज्यादेवेति मेधातिथिः। विष्णुः-'अत्र पितरो मादयध्वम्'इति दर्भमूले करावघर्षणम्। कलिकायां सुमन्तुः-"एकोद्दिष्टेषु वर्षासु दर्भलेपो न विद्यते। सपिण्डीकरणादौ तु लेपः सर्वत्र शस्यते॥" मनुः-"आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून्। षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात् पितॄनेव च मन्त्रवत्॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः॥" त्रिः प्राणायामं कृत्वेति मेधातिथिः। अमन्त्रं प्राणान्निरुध्येति कर्काद्याः। मन्त्रः-'वसन्ताय नमः नमो वः पितरः' इत्याद्यैः। शेषं पूर्वावनयनशेषम्। आश्वलायनः-"निपृताननुमन्त्रयेतात्र पितरो मादयध्वं यथाभा-

---

और जल दे, सम्पूर्ण तीर्थमें माघमास और मघामें भी इसी प्रकार देने और दौहित्र पुत्र स्त्री छोटे भाई और जो विना सन्तान मरेहैं उनको भी यहां पिंड दिया जाता है।एकोद्दिष्ट लिखा है वहां भी उनसे पश्चिम ओरमें ही पिण्ड देना जानना, जिनके मतमें पृथक् पिण्ड देना नहीं वहां सपत्नीक पिता आदिका उच्चारण करना, और शंखका भी कथन है कि अन्वष्टकाके गया और मातृश्राद्ध, मरण दिनमें एकोद्दिष्ट इनके सिवाय अन्यश्राद्ध स्त्रियोंका पृथक् नहीं होता। मनुका कथन है कि, उन कुशाओंपर लेपभागियोंके निमित्त उस हाथका मार्जन करे, हाथपर लेप न हो तो भी हाथको मार्जन करे, यह मेधातिथिका मत है, विष्णु-का कथन है कि, "अत्र पितरो मादयध्वं" यह कहकर कुशाके मूलमें हाथको घिसे, कलिकामें सुमंतुका कथन है कि, एकोद्दिष्ट और वर्षामें कुशाका लेप नहीं करना, सपिंडी-करण आदिमें तो सब स्थानमें लेप श्रेष्ठ है, मनुने कहा है कि आचमन कर, उत्तरके मुख करके तीन वार शनैः २ प्राणायाम करके और छः ऋतु और पितरोंको नमस्कार करके मन्त्र पढे, और शेष जलको शनैः २ पिण्डके निमित्त फिर डाल दे। मेधातिथिका कथन है कि, तीन वार प्राणायाम करे, यह अर्थ है यहां मंत्र विना प्राणोंको निरोध करे, यह कर्क आचार्य आदि कहते हैं। 'वसंताय नमः' 'नमो वः पितरः' इत्यादि मन्त्रोंको पढकर यह कृत्य करे, शेष पदसे पहिले दिये जलका शेष ग्रहण करना चाहिये। आश्वला-यनने कहा है कि, स्थित हुए पितरोंसे अनुमंत्रण (प्रार्थना) करे कि, यहां पितर

गमावृषायध्वमिति सव्यावृदुदङावृत्य यथाशक्ति प्राणान्नासिस्त्वाऽभिपर्यावृत्त्याऽमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषतेति चरोः प्राणभक्षं भक्षयेन्नित्यं निनयनम् ” इति ॥ नित्यग्रहणं शेषाभावेऽपि कुर्यादित्यर्थः । शौनकः-“अथैषामत्र पितर इत्याद्येनानुमन्त्रणम् । अमीमदन्तेत्याद्येन मन्त्रेणाप्यनुमन्त्र्य तान् ॥ पिण्डशिष्टचरोरन्नं किञ्चिदाघ्राय तत्त्यजेत् । प्रक्षाल्याचम्य शुन्धन्तामित्याद्यैरेव पूर्ववत् ॥ मन्त्रैः पिण्डेषु पानीयं निषिञ्चेत् पितृतीर्थतः ॥ ३ ॥” व्याघ्रः-“अद्भिः प्रक्षाल्य तत्पात्रं तत्पिण्डं प्रति पूर्ववत् । कृत्वावनेजनं कुर्यात्पिण्डपात्रमधोमुखम् ॥ ” एतत्कातीयादीनाम् । आचार्यः-‘ततः सम्यग् द्विराचम्य नीवीं विस्रस्य वाग्यतः ।’ आश्वलायनः-‘असावभ्यंक्ष्वासावंक्ष्वेति पिण्डेष्वभ्यञ्जने वासो दद्याद्दशामूर्णास्तुकां वा पञ्चाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं स्वलोमैतद्वः पितरो वासो मानोतोऽन्यत् पितरो युङ्ध्वम्’ इति ॥ श्राद्धचिन्तामणौ ब्राह्मे-“एतद्वः पितरो वासस्त्विति जल्पन्पृथक्पृथक् । अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यं वासः पठेद्बुधः ॥ ” इदं कातीयानाम् । ‘एतद्वा इति सूत्राणि प्रतिपिण्डम्’ इति तत्सूत्रात् । हेमाद्रौ ब्राह्मे-“श्रेष्ठमाहुस्त्रैककुदमञ्जनं नित्यमेव हि । तैलं कृष्णतिलेभ्यश्च दद्यादभ्यञ्जनं हितम् ॥ ” त्रैककुदं (सुरमा)

प्रसन्न हों और अपने २ भागको ग्रहण करो, यह कहकर वामावर्तसे वा उत्तरकी ओर फिर यथाशक्ति प्राणोंको नासिकासे खींचकर पढ़े कि “ अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ” इसके चरुका जो प्राणके भक्षणका शेष है नित्य भक्षण करे और दे । नित्यके ग्रहणसे यह अर्थ जानना कि, शेष न रहे तो भी करे, शौनकने कहा है कि, इसके अनन्तर पितरोंका ‘ अत्र पितरः’ इस पहले मन्त्रसे वा ‘अमीमदन्त’ इस आदिके मंत्रसे अनुमन्त्रण करके पिण्डसे शेष रहे चरुके अन्नको कुछ सूंघकर उसको त्याग दे । फिर हाथ धो और आचमन करके ‘ शुन्धंताम् ’ इत्यादि मंत्रोंसे पूर्वके समान पितृतीर्थसे पिंडोंके ऊपर जल छिडके । व्याघ्रका कथन है कि, जलसे उस पात्रको प्रतिपिण्ड पूर्वके समान धोकर अवनेजन करे, और पिण्डके पात्रको औंधामुख धरे, यह कातीयोंके निमित्त है । आचार्यका कथन है कि फिर भली प्रकार दो बार आचमन और नीबीको ढीली करके मौन साधे रहे, आश्वलायनने कहा है कि, असावभ्यंक्ष्व असावंक्ष्व, ऐसे कह २ कर पिंडोंपर अभ्यंजन और अञ्जन दे । वस्त्र देकर पढे कि, “दशामूर्णास्तुकां वा, पंचाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं सलोमैतद्वः पितरो वासो मानोतोऽन्यत्पितरो युङ्ध्वमिति” श्राद्धचिन्तामणिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि , पृथक् २ कहता हुआ कि, हे पितरो ! यह तुम्हारा वस्त्र है, फिर पढ़े कि अमुक २ गोत्रवाले आपको यह वस्त्र प्रदान किया है, यह कातीयोंके निमित्त है कारण कि, उनका सूत्र है कि एतद्वः इस मंत्रको प्रतिपिंडपर पढे । हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, सुरमेका अञ्जन और काले तिलोंके तेलका अभ्यञ्जन उत्तम

इति प्रसिद्धम् । अञ्जनप्राथम्यमापस्तम्बादिविषयम् । तत्रैव व्याघ्रः-"गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं च विनिवेदयेत् ॥ " देवलः-" दक्षिणां सर्वभोगांश्च प्रतिपिण्डं प्रदापयेत् । भक्ष्याण्यपूपानिक्षूंश्च व्यञ्जनान्यशनानि च ॥ " तत्रैव शंखः-"यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् । अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिण्डमूले कथञ्चन ॥ " एतत्सव्येनेति केचित् । युक्तं त्वपसव्येन । मनुः-' अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः । ' ततो ' नमो वः पितर इषे' इत्यादिनोपस्थानम् । मात्स्ये-" अथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात्सकृत्सकृत् । तिलपुष्पाक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च ॥" अत्र दैवे सव्यं पित्र्ये त्वपसव्यमिति कर्कः । परिभाषोक्तवचनात्सव्यमिति युक्तम् । अत्र शिवा आपः सन्तु । सौमनस्यमस्त्वित्यादिप्रयोगो ज्ञेयः । मात्स्ये-"दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद्द्विजेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः । अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्ते पुनर्द्विजैः ॥ गोत्रं तथा वर्धतां नस्तथेत्युक्तः स तैः पुनः । दातारो नोऽभिवर्धन्तामन्नं चैवेत्युदीरयेत् ॥ स्वस्तिवाचनकं कुर्यात्पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः ॥२॥" स्वस्तिवाचनात्प्राक् पात्रचालनं कार्यम् । हेमाद्रौ बृहस्पतिः-" भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः । तदन्नमसु-

---

और सदा युक्त कहा है, अंजनका प्रथम कहना आपस्तम्बोंके निमित्त है वहां ही व्याघ्रका कथन है कि गंध, पुष्प, धूप, दीपको प्रदान करे। देवलने कहा है कि दक्षिणा, सम्पूर्ण भोग, भक्षण पदार्थ, गन्ना और अनेक व्यंजनको प्रतिपिण्डपर दे। वहां ही शंखका कथन है कि, जो कुछ भक्ष्य भोज्य अपने घर बनाया जाता है वह पिण्डके मूलमें निवेदन किये विना भोजन न करे, यह सव्य होकर करे, यह कोई कहते हैं, युक्त तो अपसव्यसे है, मनुने कहा है कि, देनेके अनुसार उन पिंडोंको सूंघे, फिर ' नमो वः पितरः ०' और ' इषे० ' इत्यादि मंत्रोंसे स्तुति करे। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि ब्राह्मणोंके आचमन करनेके उपरान्त स्वयं आचमन करके तिल फूल चावल और पीछेसे अक्षय्योदक दे, यहां कर्कने यह कहा है कि दैवश्राद्धमें सव्य और पितृश्राद्धमें अपसव्य होकर करे। परिभाषामें कहे उसी वचनसे सव्यसे ही करना युक्त कहा है, यहां जल मंगलरूप, फूलरूप हो इत्यादि प्रयोग जानने चाहिये। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, इनको देकर बुद्धिमान् मनुष्य प्राङ्मुख होकर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर यजमान कहे कि, 'अघोर हो' ब्राह्मण कहे कि अघोर हैं, फिर कहे कि हमारा 'गोत्र' बढै ब्राह्मण कहें कि, 'बढै' फिर दाताओंकी वृद्धि हो ब्राह्मण कहे और अन्न बहुत हो, इत्यादि कहे फिर भक्तिसे पिंडोंको उठाकर स्वस्तिवाचन करावे, स्वस्तिवाचनसे प्रथम पात्रोंको हिलाना उचित है कारण कि, हेमाद्रिमें बृहस्पतिका कथन है कि, पात्रोंकी स्थिति रहते जो स्वस्तिवाचन करते हैं उस अन्नको पितरोंके निराश हो चले जानेपर राक्षस भक्षण

रैर्भुक्तं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥" जातूकर्ण्यः-"पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योऽथवा सुतः। न स्त्रीभिर्न च बालेन नासजात्या कथंचन ॥" याज्ञवल्क्यः-'स्वस्ति वाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च।' तत्रैव वृद्धशातातपः-"पितॄणां नामगोत्रेण करे देयं तिलोदकम्। प्रत्येकं पितृतीर्थेन अक्षय्यमिदमस्त्विति ॥" अत्र षष्ठी प्रागुक्ता। तत्रैव नागरखण्डे-"उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम्। हिरण्यं देवतानां च पितॄणां रजतं तथा ॥" बृहस्पतिः-" तस्मात्पणं काकिणीं वा फलपुष्पमथापि वा। प्रदद्याद्दक्षिणां यज्ञे तथा स सफलो भवेत् ॥" अत्र पित्रुद्देशेन दक्षिणादाने अपसव्यं, विप्रोद्देशेन सव्यमिति माधवः। कालिकायामाचार्यः-' दद्याद्यज्ञोपवीत्येव ताम्बूलं दक्षिणां तथा।' अत्रिः-'वदेच्च तांस्ततो विप्रान् पित्रादिभ्यः स्वधोच्यताम्।' गोभिलः-'अघोराः पितरः सन्त्वित्युक्ते स्वधां वाचयिष्य इति पृच्छति पितृभ्यः स्वधोच्यतामित्युक्तेऽस्तु स्वधेत्युच्यमाने धारां दद्यादूर्जंवहन्ती ' इति। आपस्तम्बेन तु-' पुत्रान् पौत्रानभितर्पयन्ति ' इत्यपि परिषेचने मन्त्र उक्तः। आश्वलायनः-'अथैतान् प्रवाहयेत्। परेतनपितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः। दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः

करते हैं। जातूकर्ण्यका कथन है कि श्राद्धके पात्रोंको स्वयं, शिष्य वा पुत्र हिलावे, स्त्री, बालक, भिन्न जाति ये कभी भी न हिलावे, याज्ञवल्क्यने कहा है कि फिर स्वस्तिवाचन और अक्षय्योदकका दान करे, वहां ही वृद्धशातातपने कहा है कि पितरोंके हाथमें नाम और गोत्र लेकर प्रत्येक पिंडपर पितृतीर्थ (अंगुष्ठ और तर्जनीके मध्यसे) तिल, जल देना और ' इदम् अक्षय्यम् अस्तु ' ऐसा कहे, यहां षष्ठी विभक्तिका उच्चारण पहले कह आये हैं, वहां ही नागरखण्डमें कहा है कि अर्घ्यपात्रको सीधा करके देवताओंको सोना और पितरोंको चांदीकी दक्षिणा दे, बृहस्पतिने कहा है कि इससे पण, काकिणी, फल, पुष्पकी दक्षिणा यज्ञमें दे, कारण कि, दक्षिणासे वह सफल होता है, पितरोंके निमित्त दक्षिणादानमें अपसव्य और ब्राह्मणोंके निमित्त दक्षिणादानमें सव्य होकर रहे यह माधवका मत है। कलिकामें आचार्यका कथन है कि सव्य होकर ही तांबूल और दक्षिणा दे, अत्रिका कथन है कि फिर ब्राह्मणोंसे कहे कि, पितरोंके निमित्त स्वधा उच्चारण करो। गोभिलने कहा है कि, अघोर पितर हों ब्राह्मणोंके ऐसे कहनेके उपरांत यजमान पूछे कि पितरोंके निमित्त स्वधा कहता हूं तुम पितरोंके निमित्त स्वधा कहो। जब ब्राह्मण स्वधा हो ऐसा कह चुके तब ' ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृत ' इस मंत्रसे पिंडोंपर जलकी धारा दे, आपस्तम्बने तो "पुत्रान् पौत्रानभितर्पयन्ति" यह मंत्र भी पिंडोंके सींचनेमें ही कहा है। आश्वलायनने कहा है कि फिर पिण्डोंको यह मन्त्र पढ़कर जलमें प्रवाह करे, "परेतन पितरः सोम्यासोगंभीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः। दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छत " प्रत्य-

सर्ववीरं नियच्छत ' इति । मात्स्ये-'वाजे वाजे इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ।' प्रचेताः-'स्वस्तिवाच्यं ततः कृत्वा पितृपूर्वं विसर्जयेत् ।' आश्वलायनः-' अन्नं प्रकीर्योपवीत्या·ॐ स्वधेति विसृजेदस्तु स्वधेति वा ॥ ' ब्रह्मवैवर्ते-" आमावाजेति मन्त्रं तु पठित्वा च प्रदक्षिणाम् । द्वारोपान्ते ततः कृत्वा संयतः प्रविशेद्गृहम् ॥ प्राञ्जलिश्च ततः प्राह तान् विप्रान्सत्यवादिनः । दातारो नोऽभिवर्धन्तामन्नं च न इति ब्रूहिति ॥ एवमस्त्विति ते·तं च कथयन्ति समाहिताः ॥ ३ ॥" एतन्मण्डलदेशे कार्यमिति हेमाद्रिः । मनुः-" दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥ " बौधायनः-" अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु माच याचिष्म कञ्चन ॥" इति । अत्र दातारो वोऽभिवर्धन्तां, लभध्वं याचध्वमित्यादूहेन पठित्वा विप्रैः प्रतिवचनं कार्यमिति सुदर्शनभाष्ये । 'स्वादुषंसद' इति ' ब्राह्मणासः पितरः' इति च मन्त्रद्वयं पठन्ति । शौनकः-"ब्राह्मणानथ निर्यातान् परीत्य त्रिःप्रदक्षिणम् । सस्त्रीकः स्वजनैः सार्द्धं प्रणमेद्रचिताञ्जलिः ॥ कनिष्ठप्रथमा ज्येष्ठचरमाः स्युः प्रदक्षिणे ॥" हेमाद्रौ बृहस्पतिः-"अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाब्ज-

---

पुराणमें लिखा है कि ' वाजे वाजे० ' यह कहता हुआ कुशाओंके अग्रभागसे पिण्डोंको विसर्जन करे । प्रचेताका वाक्य है कि स्वस्तिवाचन कर पिताके क्रमसे पिंड विसर्जन करे, आश्वलायनने कहा है कि अन्नको बखेरकर और सव्य होकर ' ॐ स्वधा ' वा ' अस्तु स्वधा ' कहकर पिण्ड विसर्जन करे । ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि ' आमावाज०' इस मंत्रको पढ़कर द्वारके निकट प्रदक्षिणा करके सावधानतासे गृहमें प्रवेश करे, फिर सत्यवादी उन ब्राह्मणोंको हाथ जोडकर कहे कि हमारे दाताओंकी वृद्धि हो, और बहुत अन्न हो, वे ब्राह्मण सावधान होकर उसे एवमस्तु (ऐसा ही हो) कहे, यह मण्डलके देशमें भी करना उचित है यह हेमाद्रिका मत है । मनुने कहा है कि हमारे यहां दाताओंकी वृद्धि हो वेद और सन्तानकी वृद्धि हो श्रद्धा न जाय, बहुत देनेको हमारे हो । बौधायनने कहा है कि अन्न हमारे बहुत हो, अतिथि मिले, हमें याचना करनेवाले मिले हम किसीकी याचना न करे, हमारे दाताओंकी वृद्धि हो, लभध्वं मा याचध्वं (प्राप्त हो मत मांगो) इत्यादि ऊहसे पढ़कर ब्राह्मण प्रतिवचन दे, यह सुदर्शनभाष्यमें लिखा है ' स्वादुषंसद ' ' ब्राह्मणासः पितरः ' इन दो मंत्रोंको पढ़ते हैं, शौनकका कथन है कि जानेके समय ब्राह्मणोंकी स्त्री और कुटुम्बियों सहित यजमान हाथ जोडकर तीन परिक्रमा करके प्रणाम करे, और परिक्रमामें छोटा पहिले और ज्येष्ठ पीछे रहे, हेमाद्रिमें बृहस्पतिका कथन है कि आज तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करके मेरा जन्म सफल हुआ, आज

न्दनात्। अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहाद्दिवम् ॥ पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः। तत्क्लेशजातं चित्तात्तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ॥ २ ॥" प्रचेताः-'विसृजेद्भक्तिसंयुक्तः सीमान्ते चाप्यनुव्रजेत्'। अथ पिण्डप्रतिपत्तिः। हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे-"पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी प्रथमं नरः। पत्न्यै प्रजार्थी दद्याद्वै मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥ उत्तमां गतिमन्विच्छन् गोषु नित्यं प्रयच्छति। प्रजां प्रज्ञां यशः कीर्तिमप्सु पिण्डं प्रवेशयेत् ॥ प्रार्थयन् दीर्घमायुष्यं वायसेभ्यः प्रयच्छति। आकाशं गमयेदप्सु स्थितो वा दक्षिणामुखः ॥ ३ ॥" आश्वलायनः-'वीरं मे दत्त पितरः' इति पिण्डानां मध्यमं पत्नी प्राशयेत्। 'आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथा यमरपा असत्' इति मन्त्रौ दत्तस्याद्येनादाय द्वितीयेन प्राशनम्। आपस्तम्बस्तु दाने मन्त्रमाह-'अपां त्वोषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व' इति मध्यमं पत्न्यै प्रयच्छति इति। प्राशनेऽपि 'यथेह पुरुषो असत्' इति तद्द्वितीयः पाठोऽन्येषां तत्तच्छाखायां ज्ञेयः। तत्रैव शंखः-'पत्नी वा मध्यमं पिण्डमश्नीयादार्तवान्विता।' कालिकायां छागलेयः-"प्राचीनावीतिनाऽऽमंत्र्य पत्नीः पिण्डो विभज्यते। प्रतिपत्न्यस्य मन्त्रस्य कर्तव्या

मेरे वंशके पितर आपकी कृपासे स्वर्गको गये, ऐसे श्रेष्ठ आपको मैंने पत्रशाक आदिके देनेसे क्लेश दिया उसको आप चित्तसे भूलकर क्षमा करनेको योग्य हो। प्रचेताका कथन है कि भक्तिसे युक्त हो ब्राह्मणोंको बिदा कर और सीमाके अन्ततक उनके पीछे पहुँचा दे। अब पिंडकी प्रतिपत्ति लिखते हैं। हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका वाक्य है कि प्रथम पिण्ड तो मनुष्य भोगके अर्थ अग्निमें डाले, द्वितीय पिण्डको प्रजार्थी मनुष्य मंत्र पढ़कर पत्नीको दे, उत्तम गतिकी इच्छावाला सदैव गौओंको दे। प्रजा, बुद्धि, यश, कीर्तिकी इच्छावाला जलमें डाल दे; दीर्घ अवस्थाकी इच्छावाला काकोंको दे वा जलमें खडा होकर आकाशमें दक्षिणाभिमुख होकर फेंक दे, आश्वलायनने कहा है कि 'वीरं मे दत्त पितरः' (हे पितरो ! मुझे वीरपुत्र दो) यह कहकर पत्नीको मध्यम पिंडका भक्षण करावे, फिर 'आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजं' 'यथा यमरपा असत्' इन मंत्रोंमें दिये पिंडका प्रथम मंत्रसे ग्रहण और दूसरेसे भक्षण करे। आपस्तम्बने तो दानका मंत्र लिखा है कि 'अपां त्वोषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व' इस मंत्रसे मध्यम पिंड पत्नीको दे, भक्षणका भी मंत्र है कि, 'यथेह पुरुषो असत्' यह आपस्तम्बका पाठ है, अन्योंका मंत्र उन २ की शाखाओंमें जानना, वहां ही शंखका कथन है कि मध्यके पिंडको ऋतुवाली भी भक्षण कर ले। कालिकामें छागलेयका कथन है कि अपसव्य होकर पत्नियोंको बुलाकर पिंडका विभाग करे यहां तो 'प्रतिपत्नी' इस मंत्रके पढनेकी आवृत्ति करनी। माधवीयमें विष्णुधर्मका कथन

वृत्तिरत्र तु ॥" माधवीये विष्णुधर्मे-"तीर्थे श्राद्धे सदा पिण्डान् क्षिपेत्तीर्थे समाहितः। प्रक्षिपेत् सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥"अग्नौ अगाधे जले वा प्रक्षिपेत्। विप्रेषु सत्सु भोजनदेशावस्थितेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेन्नोद्वासयेत्। याज्ञवल्क्यः-'पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा।' बृहस्पतिः-"अन्यदेशगता पत्नी रोगिणी गर्भिणी तथा। तदा तं जीर्णवृषभश्छागो वा भोक्तुमर्हति ॥" अथ पिण्डोपघाते हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे देवलः-"श्वसृगालखरैः पिण्डः स्पृष्टो भिन्नः प्रमादतः। कर्तुरायुष्यनाशः स्यात्प्रेतस्तं नोपसर्पति ॥" जातूकर्ण्यः पूर्वश्लोकान्ते-"तद्दोषपरिहारार्थं प्राजापत्यं प्रकल्पयेत्। पुनः स्नात्वा तदा कर्ता पिण्डं कुर्याद्यथाविधि ॥" काकस्पर्शे तु न दोषः पिण्डोपघातं प्रक्रम्य 'धनस्य तु विनाशः स्यात् काकस्पर्शादिकं विना' इति तत्रैव श्लोके गौतमोक्तेः। स्मृतिदर्पणे अत्रिः-"मार्जारमूषकस्पर्शे पिंडे च द्विदलीकृते। पुनः पिण्डाः प्रदातव्यास्तेन पाकेन तत्क्षणात् ॥" बौधायनः-"श्वचाण्डालादिभिः स्पृष्टः पिण्डो यद्युपहन्यते। प्राजापत्यं चरित्वार्थः पुनः पिण्डं समाचरेत् ॥" बोपदेवोऽप्येवमाह-'दिनान्तरे तु प्राजापत्यमात्रम्।' शेषप्रतिपत्तित्वेन पिण्डावृत्तौ मानाभावादिति मैथिलाः। तन्न। सपिण्डीकरणादौ शेषनाशे संयोजना-

---

है कि तीर्थश्राद्धमें सदैव पिंडोंको तीर्थमें सावधान होकर डाल दे, और ब्राह्मणोंके विद्यमान रहते उनके उच्छिष्टका मार्जन न करे। अग्नि,वा गहरे जलमें फेंक दे,ब्राह्मण भोजनके स्थानमें बैठे हों तो उनके उच्छिष्टका मार्जन न करे, न उन्हें बाहर निकाले।याज्ञवल्क्यका कथन है कि गौ, बकरी ब्राह्मणोंको दे, वा अग्नि, जलमें फेंक दे। बृहस्पतिका कथन है कि पत्नी परदेशमें हो, रोगयुक्त वा गर्भिणी हो तो उस पिंडको बूढे बैल वा बकरेको भक्षण करनेको दे। अब पिण्डके उपघात (नाश) लिखते हैं। हेमाद्रि प्रायश्चित्तकाण्डमें देवलने कहा है कि कुत्ता, गीदड़, गधा इन्होंने प्रमादसे पिण्डस्पर्श किया वा तोड़ दिया हो तो कर्ताकी अवस्थाका नाश होता है, और प्रेतको नहीं मिलता। जातूकर्ण्यने लिखा है कि पूर्वश्लोकके अन्तमें उस दोषकी शांतिके निमित्त प्राजापत्य व्रत करे, कर्ता फिर स्नान करके विधिसे पिण्ड बनावे काकके स्पर्शमें दोष नहीं, कारण कि पिण्डनाशके प्रकरणमें उसी श्लोकमें गौतमका कथन है कि पिंडका नाश काकके स्पर्शको छोड़कर हो जाय तो धनका नाश होता है। स्मृतिदर्पणमें अत्रिका कथन है कि बिलाव मूसाके स्पर्शसे पिंड फूट जाय तो उसी पाकसे पुनः पिंड दे, बौधायनका कथन है कि कुत्ता, चांडाल आदिके स्पर्शसे पिण्ड नष्ट हो जाय तो प्राजापत्य व्रत करके फिर पिंडदान करे। बोपदेवने भी ऐसे ही कहा है कि प्राजापत्य मात्र तो किसी और दिनमें करे, शेष कर्मकी प्रतिपत्ति (सिद्धि) उससे ही हो जायगी, पिण्डकी आवृत्तिमें कोई प्रमाण नहीं; यह मैथिलोंका मत है, सो ठीक नहीं, कारण कि सपिण्डीकरण आदिमें शेष

दिलोपापत्तेः ॥ तेन वचनाद्वमन इवात्रापि तन्मात्रपिण्डदानावृत्तिः ॥ अतएव- 'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे वा भोजनसमापनात्' इत्यापस्तम्बसूत्रम् ॥ रात्रौ भोजनमात्रं पूर्वेद्युः कार्यम् ॥ श्राद्धसमाप्तिस्तु परदिने एव । समाप्तिपर्यन्तं कर्तुरुपवासश्चेति हरिदत्तेन व्याख्यातम्। तस्मात् पाकान्तरेण पिण्डदानमात्रं कार्यम् ॥ अथ पिण्डनिषिद्धकालः। स च प्रायेण महालयादिनिर्णये पूर्वमुक्तः । हेमाद्रौ बृहत्पाराशरः-" युगादिषु मघायां च विषुवत्ययने तथा । भरणीषु च कुर्वीत पिंडनिवर्पणं न हि ॥ " स्मृतिरत्नावल्याम्-" पुत्रे जाते व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नेन पिण्डनिर्वपणादृते ॥ " तत्रैव कात्यायनः- " वृद्धेरनन्तरं चैव यावन्मासः समाप्यते। तावत् पिण्डान्नैव दद्यान्न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ " बौधायनः-'संस्कारेषु तथान्येषु मासं मासार्धमेव च ।' तथा- "भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च। पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ " त्रिस्थलीसेतौ कार्ष्णाजिनिः-' विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ।' उत्तरार्द्धं प्राग्वत्। " वृद्धिमात्रे तथान्यत्र पिण्डदाननिराक्रिया । कृता गर्गादिभिर्मुख्यैर्मासमेकं तु कर्मणाम् ॥ " हेमाद्रौ ज्योतिःपराशरः-"विवाहे विहिते मासां"

कर्मका नाश होनेपर पिंड मिलानेका लोप हो जायगा, तिससे वचनके बलसे वमनके समान यहां भी पिंडदानकी पुनः आवृत्ति होती है, इसीसे रात्रिमें श्राद्ध न करे, और जब प्रारम्भ हो जाय तो भोजन समाप्तिसे प्रथम न करे, यह आपस्तंबका सूत्र है, इसकी व्याख्या हरदत्तने यह लिखी है कि, पहिले दिन रात्रिको भोजन करे और श्राद्धकी समाप्ति तो दूसरे दिनमें करे और समाप्तिपर्यन्त कर्ता व्रत करे, इससे अन्य पाक बनाकर कर्ता पिंडदान मात्र करे। अब पिंडमें निषिद्धकाल लिखते हैं, वह काल महालय आदिके निर्णयमें पहिले कह दिया। हेमाद्रिमें वृद्धपराशरका कथन है कि, युगादि मघा विषुवत् अयन भरणी इनमें पिंडदान न करे, स्मृतिरत्नावलीमें लिखा है कि, पुत्रजन्म व्यतीपात और चन्द्रमा सूर्यका ग्रहण इनमें पिंडदानको छोडकर यत्नसे श्राद्ध करे, वहां ही कात्यायनका कथन है कि, पुत्रजन्मके पीछे जबतक मासकी समाप्ति हो तबतक पिंडदान और तिलोंसे तर्पण न करे। बौधायनसूत्रमें लिखा है कि, तैसे ही अन्य संस्कारोंमें भी मास और अर्द्धमासतक न करे, तैसे ही वाक्य है कि, रविवार भौमवार त्रयोदशी नन्दा शुक्रवार मघा नक्षत्रमें पिंडदान, मट्टीसे स्नान, तिलतर्पण इनको न करना चाहिये। त्रिस्थलीसेतुमें कार्ष्णाजिनिने लिखा है कि, विवाह, व्रत, मुण्डनमें वर्ष, छः महीने वा तीन महीनेतक पिण्डदान आदि पूर्वोक्त तीनोंको न करे, इसी प्रकार और भी वृद्धिमात्रमें पिण्डदानका निषेध गर्गआदि मुनियोंने करनेवालोंको कहा है, हेमाद्रिमें पराशर ज्योतिषियोंके वाक्य हैं कि, विवाह किये पीछे

स्त्यजेयुर्द्वादशैव हि । सपिण्डाः पिण्डनिर्वापं मौञ्जीबन्धे षडेव हि ॥" तत्रैव-"महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि । यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा ॥ कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा ।" इति । 'मातापित्रोरिति क्षयाहविशेषणम् हविरुभयत्ववद्विवक्षितम् ॥ तेन भ्रातृपितृव्यादिवार्षिकेऽपि पिण्डदानं कार्यम्' इति केचित् । सपिण्डीकरणं नवश्राद्धषोडशश्राद्धोपलक्षणार्थमिति निर्णयामृत उक्तम् । क्षयाहे विशेषः संग्रहे-"मातापित्रोराब्दिके तु विवाहादिषु सर्वदा । तिलैः पिण्डाः प्रदातव्यास्त्वन्यश्राद्धे विवर्जयेत् ॥" अत्र मूलं चिन्त्यम् । रामकौतुके-"नन्दाश्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे । गण्डवैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः ॥" विश्वरूपनिबन्धे-"तिथिवारसंयुक्तो यो दोषो वै समुदाहृतः । स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नान्यश्राद्धे कदाचन ॥" अन्यत्तूक्तं प्राक् । उच्छिष्टोद्वासनमाह हेमाद्रौ वसिष्ठः-"श्राद्धे नोद्वासनीयानि ह्युच्छिष्टान्यादिनक्षयात् । श्च्योतन्ते वै सुधाधारास्ताः पिबन्त्यकृतोदकाः ॥" व्यासः-'उच्छिष्टं न प्रमृज्यात्तु यावन्नास्तमितो रविः ॥' इदं गृहान्तरसत्त्वे । एकगृहे तु मनुः-"उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥" बलिं

सम्पूर्ण सपिण्ड बारह महीनेतक और यज्ञोपवीतमें छः महीनेतक पिण्डदान न करे, वहां ही लिखा है कि महालय गयाश्राद्ध मातापिताका मरणदिन जिस किसी मनुष्यकी सपिण्डी, इनमें पिण्डदान वह भी मनुष्य करे, जिसका विवाह हुआ हो । इस वचनमें 'मातापित्रोः' यह क्षयीके दिनका विशेषण, हवि दोनोंके निमित्त है, इसके समान विवक्षित नहीं है इसके भाई पितृव्य आदिकके वार्षिक श्राद्धमें कोई पिंडदान करनेको कहते हैं, सपिंडीकरण नवश्राद्ध षोडशश्राद्धके उपलक्षणार्थ है, यह निर्णयामृतमें लिखा है । मरणादिनका विशेष संग्रहमें लिखा है, पिताके वार्षिक और विवाह आदिमें सदैव तिलसे पिंड देने चाहिये, अन्य श्राद्धमें वर्जित है, इनमें मूल विचारने योग्य है । रामकौतुकमें कहा है कि, नन्दा आश्विनी रविवार भौमवार वा शुक्रवार कृत्तिका पिताके मरणका नक्षत्र गंड वैधृति व्यतीपातमें पुत्रकी इच्छावाला पिंडदान न करे । विश्वरूप निबन्धमें लिखा है कि, तिथिवारका किया जो दोष कहा है वह उसी श्राद्धके विषयमें है, जो तिथिवारके निमित्त हो अन्य श्राद्धमें किसी प्रकार नहीं, और तो पहिले कह आये हैं । उच्छिष्टका फेंकना हेमाद्रिमें वसिष्ठने लिखा है कि, पहिले ही श्राद्धके उच्छिष्ट नहीं फेंकना, कारण कि, उच्छिष्टमेंसे जो अमृतकी धारा गिरती है उनको वे पान करते हैं, जिनको जलदान नहीं प्राप्त हुआ । व्यासका कथन है कि, 'जबतक सूर्य न छिपे तबतक उच्छिष्टका मार्जन न करे, यह भी तब है, जब दूसरा घर हो, एक घरमें तो मनुका यह वाक्य है कि, उस समयतक उच्छिष्ट रहती है जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन न हो, फिर गृहबलि करे

वैश्वदेवादि नित्यकर्मेति मेधातिथिः। ब्रह्माण्डे-'शूद्राय चानुपेताय श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत्।' तथा-'कामं दद्याच्च सर्वं तु शिष्याय च सुताय च।' भोक्तुरिति शेषः। जातूकर्ण्यः-'द्विजभुक्तावशिष्टं तु शुचिभूमौ निखानयेत्।' अथ वैश्वदेवादिनिर्णयः। अत्र मामकः श्लोकः-"श्राद्धेऽनग्निककर्तृकेऽग्निकरणात्पश्चाज्जुहोतिर्बलिस्त्वन्ते स्यादथवा भवेद्विकिरतः पश्चात् पृथक्त्वे पचेः। श्राद्धान्ते त्वथवा महालयविधावूर्ध्वं भुजेः स्यात्क्षये त्वन्तेऽमासु च मध्यतः शुभविधावादौ तथा साग्निके।" अस्यार्थः-साग्नेः पृथक्पाकेन सर्वत्रादौ वैश्वदेवः। "पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः। पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः॥ पित्रर्थं निर्वपेत्पाकं वैश्वदेवार्थमेव च। वैश्वदेवं न पित्रर्थं न दार्शं वैश्वदेविकम्॥ २॥" इति लौगाक्षिस्मृतेः। अत्र साग्निक आहिताग्निरिति हेमाद्रिः। "श्राद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु साग्निकः। एकादशादिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते॥" इति हेमाद्रौ शालंकायनोक्तेश्च। तत्रैव परिशिष्टे-"संप्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च। अग्रतो वैश्वदेवः स्यात् पश्चादेकादशेऽहनि॥" स्मार्ताग्निमतां तद्र-

---

यही धर्मकी व्यवस्था है, बलिसे वैश्वदेवादि नित्य कर्म लेना यह मेधातिथिका मत है। ब्रह्मांडपुराणमें लिखा है कि शूद्रको और जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो उसको उच्छिष्ट न दे, वैसा ही वाक्य है कि शिष्य और पुत्रको यथेच्छ देकर भोजन करे। जातूकर्ण्यका कथन है कि ब्राह्मणोंके भोजनका शेष पवित्र भूमिमें गाड़ दे। अब वैश्वदेवादिको कहते हैं, उसमें मेरा बनाया श्लोक है, जिस श्राद्धका अग्निहोत्री न हो उसमें हवन और बलि अग्नौकरणके पश्चात् होते हैं, वा पृथक् पाक हो तो विकिरसे पीछे होते हैं और महालयमें श्राद्धके अन्तमें, क्षयाहमें भोजनके पीछे अमावस्याको श्राद्धके मध्यमें और श्राद्धका कर्ता अग्निहोत्री हो तो सब शुभविधियोंमें आदिमें हवन और बलि होते हैं, साग्निक ब्राह्मण पृथक् पाक बनाकर सब स्थानमें पहले वैश्वदेव करे, कारण कि लौगाक्षिने स्मृतिमें कहा है कि अग्निहोत्री पक्षांत कर्मसे और वैश्वदेवसे निवृत्त होकर पिण्डयज्ञ करे और फिर अन्वाहार्य कर्मको करे। पितरोंके निमित्त पाक बनावे और विश्वेदेवाओंके निमित्त बनावे। विश्वेदेवाओंका पाक पितरोंको और पितरोंका पाक विश्वेदेवाओंको न देना, यहां साग्निक आहिताग्नि हेमाद्रिने लिखा है। हेमाद्रिमें शालंकायनका भी कथन है कि साग्निक श्राद्धसे पहले ही एकादश श्राद्धको त्यागकर वैश्वदेव करे, कारण कि वहां अन्तमें ही लिखा है। वहां ही परिशिष्टका कथन है कि पार्वण वा एकोद्दिष्ट श्राद्ध हो तो प्रथम और एकादशाह आदि हो तो पीछे होता है, स्मार्त अग्निवाले और अग्निसे हीन अग्नौकरणके वा विकिरके पीछे

हितानां वाग्नौकरणोत्तरं विकिरोत्तरं वा होममात्रं पृथक्पाकेन भूतयज्ञादि तु श्राद्धान्त एव । अत्र मूलं हेमाद्रिचन्द्रिकादौ स्पष्टम् । सर्वेषां श्राद्धान्ते वा तत्पाकेन वैश्वदेवनित्यश्राद्धादीति तृतीयः । "श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः । कुर्याद्भिक्षां ततो दद्याद्धन्तकारादिकं तथा ॥" इति पैठीनसिस्मृतेः । ततः श्राद्धशेषात् । 'श्राद्धाहि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत् ।' इति चतुर्विंशतिमताच्च । एवं वैश्वदेवकालत्रयस्य अपरार्के सांख्यायनपरिशिष्टमुदाहृत्यैव व्यवस्थोक्ता । "आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते दर्शे मध्ये महालये । एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते ॥" इति बहुस्मृत्युक्तत्वात्सर्वेषां श्राद्धान्ते एवेति मेधातिथिस्मृतिरत्नावल्यादयो बहवः । बोपदेवस्तु वृत्तिकारेण विसर्जनान्तं श्राद्धमुक्त्वा 'उच्छेषणं तु' इति पूर्वोक्तमनुवाक्योदाहरणाद्बह्वृचानां श्राद्धान्त एव । मध्यपक्षस्त्वन्यशाखापर इत्याह । हेमाद्रिस्तु वृद्धावप्यन्ते एव वैश्वदेवमाह । कातीयानां तु श्रौतस्मार्ताग्निमतामादावेकेनैव पाकेनेति कर्कः । अन्येषां मते तैत्तिरीयाणां तु साग्निकानां सर्वत्रादौ वैश्वदेवः । 'पञ्चयज्ञाश्च अन्ते च' इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् । अस्य पक्षद्वयस्य पूर्ववद्व्यवस्था । हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—"ततो नित्य-

---

हवनमात्र करे, भूतयज्ञ आदिको तो पृथक् पाकसे श्राद्धके अन्तमें करे, इसमें मूल हेमाद्रि चन्द्रिका आदिमें स्पष्ट है। अथवा सब मनुष्य श्राद्धके पाकसे श्राद्धके अन्तमें वैश्वदेव नित्यश्राद्ध आदि करें, यह तीसरा मार्ग है, कारण कि पैठीनसिकी स्मृति है कि विधिसे श्राद्धको करके पीछे वैश्वदेव करे, फिर उसी अन्नमेंसे भिक्षा और हन्तकार आदि दे चतुर्विंशतिका भी मत है कि श्राद्धके दिन श्राद्धके शेष अन्नसे वैश्वदेव करे, इस प्रकार वैश्वदेवके तीन कालोंकी व्यवस्था अपरार्क, सांख्यायन, परिशिष्टके वचनोंको जानकर कही और वृद्धिश्राद्धकी आदिमें और क्षयके अन्तमें और अमावस्याके मध्यमें महालय और एकोद्दिष्टके निपटनेपर वैश्वदेव लिखा है। इत्यादि बहुत स्मृतियोंमें कहनेसे सबके मतमें श्राद्धके अन्तमें ही बलिवैश्वदेव करे। यह मेधातिथि, स्मृतिरत्नावलि आदि बहुत कहते हैं। बोपदेवने तो यह लिखा है कि वृत्तिकारने विसर्जनपर्यन्त कर्म कहकर 'उच्छेषणं तु' इस पूर्वोक्त मनुवाक्यके उदाहरणसे बह्वृचोंका तो वैश्वदेव श्राद्धके अन्तमें ही होता है, मध्य पक्ष तो अन्य शाखावालोंके निमित्त है। हेमाद्रिने तो वृद्धिमें भी वैश्वदेव पीछे ही कहा है। कातीय और स्मार्त श्रौताग्निवालोंको तो एक पाकसे पूर्वमें ही वैश्वदेव करना, यह कर्क कहते हैं, औरके मतमें तैत्तिरीय साग्निकोंको तो सर्वत्र आदिमें वैश्वदेव होता है और पञ्चयज्ञ अन्तमें होते हैं, यह सुदर्शनभाष्यमें लिखा है। इन दो पक्षोंकी व्यवस्था पूर्वके समान जाननी। हेमाद्रिमें मार्कण्डेयका

क्रियां कुर्याद्भोजयेच्च ततोऽतिथीन् । ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥" ततः श्राद्धशेषात् । नित्यक्रियां नित्यश्राद्धम् । तत्र-'पृथक्पाके न नैत्यकम्' इति तेनैवोक्ते पाकैक्ये विकल्पः । अथ नित्यश्राद्धम् । हेमाद्रौ व्यासः-'एक-मप्याशयेद्विप्रं षण्णामप्यन्वहं गृही ।' अपीत्यनुकल्पः । प्रचेताः"नामन्त्रणं न होमं च नाह्वानं न विसर्जनम् । न पिण्डदानं विकिरं न दद्यादत्र दक्षि-णाम् ॥"अत्र-'निर्दिश्य भोजयित्वा तु किंचिद्दत्त्वा विसर्जयेत्'इति तेनैवोक्तेर्दक्षिणा-विकल्पः । यत्तु-"नित्यश्राद्धं दैवहीनं नियमादिविवर्जितम् । दक्षिणारहितं चैव दातृभोक्तृव्रतोज्झितम् ॥" इति काशीखंडे । तद्विप्राभावपरमिति पृथ्वीचन्द्रः । भविष्ये-"आवाहनं स्वधाकारं पिण्डाग्नौकरणादिकम् । ब्रह्मचर्यादिनियमा विश्वे-देवा न चैव हि ॥ दातॄणामथ भोक्तॄणां नियमो न च विद्यते ।" एतद्दिवाऽस-म्भवे रात्रावपि कार्यम् । "दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै । यामिन्यां प्रहरं यावत्तावत्कर्माणि कारयेत् ॥" इति बृहन्नारदीयोक्तेः । "रात्रौ प्रहरपर्यंतं दिवाकृत्यानि कारयेत् । ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः ॥" इति पृथ्वी-चन्द्रोदये संग्रहोक्तेश्च । न च दार्शिकाब्दिकाद्यपि रात्रौ स्यादिति वाच्यम् । इष्टापत्तेः । तस्य तिथिसन्धित्वात् । 'सायं रात्रौ न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विच-

---

कथन है कि , फिर नित्यक्रिया करके अतिथियोंको भोजन करावे फिर, भृत्य आदि सहित मनुष्य उस श्राद्धके अन्नको भोजन करे,नित्याक्रियासे नित्यश्राद्धका ग्रहण है वह पृथक् पाकसे नित्य करना, यह उसने ही कहा है कि एक पाक हो तो विकल्प जानना । अब नित्य-श्राद्धको वर्णन करते हैं । हेमाद्रिमें व्यासका वाक्य है कि गृहस्थ छहों पितरोंके निमित्त एक भी ब्राह्मणको जिमा दे,यहां एक कहना अनुकल्प(गौण) है कि नित्यश्राद्धमें निमंत्रण,हवन, आवाहन, विसर्जन, पिण्डदान, विकिर, दक्षिणा न दे, यहां जानकर भोजन कराकर विसर्जन करे, यह प्रचेताने ही लिखा है और इससे दक्षिणामें विकल्प है और किसीने यह कहा है कि, नित्यश्राद्ध विश्वेदेवाओंसे हीन नियमोंसे वर्जित दक्षिणासे हीन दाता भोक्ताओंके विना होता है यह काशीखण्डमें लिखा है, सो ब्राह्मणके अभावमें है, यह पृथ्वीचन्द्रने लिखा है । भविष्यका कथन है कि आवाहन, स्वधाकार, पिण्ड, अग्नौकरण आदि ब्रह्मचर्य आदि नियम, विश्वेदेवा, दाता और भोक्ता इन सबका नियम नित्यश्राद्धमें नहीं होता यह सब दिनमें न बन सके तो रात्रिमें भी करने चाहिये,कारण कि बृहन्नारदीयका वचन है कि दिनमें कहे कर्म प्रमादसे न किये हों तो रात्रिके पहले प्रहरमें करने चाहिये। पृथ्वीचन्द्रोदयमें संग्रहका वाक्य है कि ब्रह्मयज्ञ और सूर्यके कर्म (सौरसूक्त)को छोड़कर दिनके कर्म रात्रिमें प्रहरपर्यन्त कर ले, यदि कोई शंका करे कि वार्षिक और अमावास्या आदिके श्राद्धभी रात्रिमें हो जायँगे वह उचित नहीं,कारण कि, वे रात्रिमें इष्ट हैं,बुद्धिमानोंको संध्या और रात्रिमें श्राद्ध करना उचित नहीं,

क्षणैः ।' इति विष्ण्वाद्यै रात्रौ निषेधात् । अत एवाल्पद्वादश्याम्–'उषःकाले द्वयं कुर्यात् प्रातर्माध्याह्निकं तदा ।' इत्याद्यैर्वाक्यैस्त्रयोदशीश्राद्धं नापकृष्यते । भिन्न-विषयत्वादित्युक्तं मदनरत्ने । नित्यं त्वपकृष्यते । अन्वहमित्युक्तेस्तिथिसर्वाधिकाभावात् । यथा च सुदर्शनभाष्ये–'परपक्षे पित्र्याणीति नियमेऽपि नित्यश्राद्धत्वे संवत्सरमित्यन्तसंयोगे द्वितीया । बलाच्छुक्लपक्षेऽपीत्युक्तम् ।' तथा रात्रावपि । तथा च माधवेन प्रतिपत्प्रकरणे स्पष्टमुक्तम् । वयं चाग्रे वक्ष्यामः । अस्य दिनेऽकरणे लोप एव । 'रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत' इति निषेधादिति पृथ्वीचन्द्रोदयः । पात्राभावे कौर्मे–'उद्धृत्य वा यथाशक्ति किंचिदन्नं प्रकल्पयेत् ।' तत्प्रतिपत्तिमाह विष्णुः–'भिक्षुकाभावे अन्नं गोभ्यो दद्यादग्नौ वा प्रक्षिपेत्' इति । हेमाद्रौ नागरखण्डे–"नित्यश्राद्धं न कुर्वीत प्रसङ्गाद्यत्र सिद्ध्यति । श्राद्धान्तरे कृतेऽन्यत्र नित्यत्वात्तन्न हापयेत् ॥" षड्दैवते पृथङ्नेत्यर्थः । मात्स्ये–"ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः । भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥" सर्वं पर्वनिषिद्धं मांसमाषाद्यपीत्यर्थः । एवं कृष्णैकादश्यादौ गृहिणोऽपि भोजनम् अस्य वैधत्वेन निषेधाप्रवृत्तेः । एवं ग्रहणवेधेऽपि । यत्त्वनाहिताग्नेरमाषमांसं

ऐसा विष्णुआदिमें रात्रिका निषेध है इस कारण थोड़ी द्वादशीमें उषःकालमें प्रातः और मध्याह्नके दोनों कार्य करे, इन वाक्योंसे त्रयोदशीश्राद्ध अपकृष्ट नहीं होता भिन्न विषय होनेसे यह मदनरत्नमें कहा है नित्य तो खींचता है 'अन्वहम्' कहनेसे तिथिके सर्वाधिकका अभाव है । जैसा सुदर्शनभाष्यमें कहा है । परपक्षमें पितरोंको नियमपूर्व नित्यश्राद्ध होनेसे संवत्सरमें अत्यन्तके संयोगमें द्वितीया है । बलसे यह शुक्लपक्षमें भी कहा है और रात्रिमें भी वही माधवने प्रतिपत्प्रकरणमें स्पष्ट कहा है और हम भी आगे कहेंगे, इसको दिनमें न करे तो लोप ही हो जायगा । कारण कि रात्रिमें श्राद्धका निषेध है यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है कि, पात्रके न मिलनेसे कूर्ममें कहा है यथाशक्ति लेकर कुछ अन्न कल्पना करे विष्णुने इसकी प्रतिपत्ति कही है कि भिक्षुक न हो तो वह अन्न गौओंको दे, वा अग्निमें फेंक दे, हेमाद्रिमें तथा नागरखण्डमें कहा है कि जहां प्रसंगसे हो सके वहां नित्यश्राद्ध करे, जहां अन्य श्राद्ध न किया हो तो नित्यश्राद्धको न त्यागे अर्थात् पार्वणमें पृथक् न करे, और अन्यत्र करे । मत्स्यपुराणका वाक्य है कि फिर विश्वेदेवाओंके अन्तमें भृत्य, पुत्र, अतिथि इनसे संयुक्त यजमान पितरोंके शेष सम्पूर्ण अन्नका भोजन करे सर्व कहनेसे पर्वमें निषिद्ध मांस, माष आदि भी लेना इसी प्रकार कृष्णपक्षकी एकादशी आदिमें गृहस्थको भी भोजन करना कारण कि इसको शास्त्रोक्त होनेसे निषेध प्रवृत्त नहीं होता इसी प्रकार ग्रहणके वेधमें भी जानना उचित

---

१ श्राद्ध करने उपरांत मदसे विह्वल हो जो परघरमें भोजन करता है उसके पितर पिण्डजलक्रियासे लुप्त हो पतित होते हैं ॥

व्रतयेदित्युक्तं तद्धेयमेव । श्रौतत्वेन तस्य बलवत्त्वात् । देवलः "श्राद्धं कृत्वा तयोर्मर्त्यो न भुंक्तेऽथ कदाचन । देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा ॥" शिवरात्र्येकादश्यादौ त्ववघ्राणमेवत्युक्तं प्राक् । यत्र तूपवासो नावश्यकस्तत्रैकभक्तमयाचितं वा कार्यमिति हेमाद्रिः । जातूकर्ण्यः-"अहन्येव तु भोक्तव्यं कृते श्राद्धे द्विजन्मभिः । अन्यथा ह्यासुरं श्राद्धं परपाके च सेविते ॥" श्राद्धशेषभोजनस्य क्वचिन्निषेधमाह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे मार्कण्डेयः-"पित्रादीनामथाऽन्येषां श्राद्धशेषान्नभोजनम् । व्रतिनां विधवानां च यतीनां च विगर्हितम् ॥" अन्ये भिन्नगोत्राः । व्रतिनो ब्रह्मचारिणः । "श्राद्धावशिष्टभोक्तारस्ते वै निरयगामिनः । सगोत्राणां सकुल्यानां ज्ञातीनां च न दोषकृत् ॥" इति तत्रैवोक्तेः । तत्रैव जाबालिः-"विप्रस्त्वन्यगृहे श्राद्धे शिष्टान्नं भोजनं चरेत् । प्राजापत्यविशुद्धिः स्याज्ज्ञातिगोत्रे न दोषकृत् ॥" यतीनां वपनं लक्षप्रणवजपश्चेति तत्रैवोक्तम् । अस्यापवादमाह स एव-"श्वशुरस्य गुरोर्वापि मातुलस्य महात्मनः । ज्येष्ठभ्रातुश्च पुत्रस्य ब्रह्मनिष्ठस्य योगिनः ॥ एतेषां श्राद्धशिष्टान्नं भुक्त्वा दोषो न विद्यते । इति केचित्प्रशंसन्ति मुनयस्तदसांप्रतम् ॥ २ ॥" विशेषान्तरं तत्रैव ज्ञेयम् ।

है । जो किसीने यह लिखा है कि अनाहिताग्नि उरद और मांसको त्याग दे, सो त्यागने योग्य है कारण कि वेदोक्त होनेसे माषादिका भक्षण ही बलवान् है । देवलका कथन है कि जो मनुष्य श्राद्ध करके भोजन नहीं करता उसके हव्यको देवता और कव्यको पितर स्वीकार नहीं करते । शिवरात्रि और एकादशी आदिमें तो सूंघ ले यह पहले लिख आये हैं। जहां व्रत अनावश्यक है, वहां एकभक्त वा अयाचित करना यह हेमाद्रि कहते हैं। जातूकर्ण्यका कथन है कि श्राद्ध किये पीछे द्विजाति दिनमें ही भोजन कर ले अन्यथा वह श्राद्ध और परपाकका श्राद्ध आसुर होते हैं, श्राद्धके शेष भोजनका कहीं निषेध कहा है, हेमाद्रिके प्रायश्चित्तकाण्डमें मार्कण्डेयका कथन है कि पिता आदि और उनके अन्यके श्राद्धका शेष भोजन व्रती, विधवा, संन्यासी इनको वर्जित है, यहां अन्यसे भिन्नगोत्री और व्रतीसे ब्रह्मचारीका स्वीकार है । वहां ही यह कहा है कि जो श्राद्धशेषको खानेवाले हैं वे नरकगामी हैं। सगोत्री, सकुल्य और ज्ञातियोंके श्राद्धमें दोष नहीं यह वहां ही कहा है । वहां ही जाबालिका कथन है कि ब्राह्मण तो अन्यके घरमें श्राद्धशेष अन्नका भोजन करे तो प्राजापत्य व्रतसे श्राद्धकी शुद्धि होती है, और अपनी जाति और गोत्रका दोष नहीं । संन्यासियोंको मुण्डन और एक लक्ष १००००० ॐकाराका जप करना यह उसी स्थलमें है इसका अपवाद उसनेही लिखा है, श्वशुर, गुरु, मामा, ज्येष्ठ भाई और पुत्र और ब्रह्मनिष्ठ योगी इनके श्राद्धमें शिष्ट अन्नका भोजन करके दोष नहीं, कोई मुनि इसकी प्रशंसा करते हैं वह अनु-

हेमाद्रौ जाबालिः-"ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम् । रत्यौषधपरान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये आचार्यः-"न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन् गृहे यत्नेन तद्दिने । श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादखिलेष्वपि ॥" इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पार्वणश्राद्धम् ॥ अथ श्राद्धानुकल्पः । तत्र विप्रालाभे-"भोजयेदथवाप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनम् । दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चात्तस्य तु निर्वपेत् ॥" इति शंखोक्तेरेको विप्रः पूर्वमुक्तः । विप्राभावे दर्भबटुः । "निधाय वा दर्भबटूनासनेषु समाहितः । प्रेषानुप्रेषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत् ॥" इति देवलोक्तेः । अशक्तावामश्राद्धम् । "आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत भार्यारजसि संक्रमे ॥" इति कात्यायनोक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदये जमदग्निः-"यावत्स्यान्नाग्निसंयुक्त उत्सन्नाग्निरथापि वा । आमश्राद्धं तदा कुर्याद्धस्तेऽग्नौकरणं भवेत् ॥" कौर्मे-"अनग्निरधनो वापि तथैव व्यसनान्वितः । आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद्वृषलस्तु सदैव हि ॥" आहिताग्नौ प्रवासस्थे तत्पत्नी गृहे दर्शे ऋत्विगादिना कारयेत् । "अमावास्यादि नियते प्रोषिते धर्मचारिणी । पत्यौ तु कारयेन्नित्यमन्येनाप्यृत्विगादिना ॥" इति लघुहारीतोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रोदयः । आदिपदमाब्दिकादिसर्वपार्वणपरमिति शूलपाणिः । सुमन्तुः-"पाका-

---

चित है, अन्य विशेष वहां ही जानना । हेमाद्रिमें जाबालिका कथन है कि ताम्बूल, दँतोन, स्नेहसे स्नान, रति, औषध, पराया अन्न, भोजनका त्याग श्राद्धका कर्ता इनको त्याग दे, पृथ्वीचन्द्रोदयमें आचार्यका कथन है कि श्राद्धके दिन यत्नसे शूद्रको न जिमावे और सब श्राद्धोंमें श्राद्धका शेष दे। इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां पार्वणश्राद्धनिर्णयः। अब अनुकल्प (गौण) कथन करते हैं । उनको ब्राह्मण न मिले तो एक भी पंक्तिपावन (पवित्र करनेवाले) ब्राह्मणको जिमा दे। देवताओंके निमित्त नैवेद्य देकर पश्चात् उस ब्राह्मणको जिमावे । इस शंखके वाक्यसे पहले एक ब्राह्मण कहा है, ब्राह्मण न मिले तो कुशाका बटु भी पहले लिखा है, कारण कि देवलने यह लिखा है कि सावधानतासे कुशाके बटु बनाकर आसनों पर बैठावे, और प्रश्न और उत्तरोंसहित श्राद्धविधिको करे । अशक्त हो तो आम श्राद्ध कहा है, आपत्ति, अग्निका अभाव, तीर्थ, परदेश, पुत्रोत्पत्ति, भार्याके रजस्वला होनेपर आमश्राद्ध करे; यह कात्यायनने लिखा है । पृथ्वीचन्द्रोदयमें जमदग्निका कथन है कि जबतक अग्निहोत्री न हो वा अग्नि नष्ट हो गयी हो तबतक आमश्राद्ध करे और हाथमें अग्नौकरण करे, कूर्मपुराणका वाक्य है कि अग्निहोत्रीसे भिन्न, धनहीन और दुःखित ब्राह्मण और शूद्र यह सदैव आमश्राद्ध करे, यदि अग्निहोत्री परदेशमें हो और उसकी पत्नी घरपर हो तो अमावस्याका श्राद्ध ऋत्विक् आदिसे कराना । कारण कि लघुहारीतका कथन है कि पति परदेशमें हो तो धर्मचारिणी स्त्री अमावस्या आदिके नियत श्राद्धको अन्य ऋत्विग् आदिसे करावे, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखा है, इस श्लोकमें आदि पद वार्षिक और सब पार्वणोंके निमित्त है। यह शूल-

भावेऽधिकारः स्याद्विप्रादीनां नराधिप । अपत्नीनां महाबाहो विदेशगमनादिभिः । सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विदुर्बुधाः ॥" प्रचेताः–"स्त्री शूद्रः स्वपचश्चैव जातकर्मणि चाप्यथ । आमश्राद्धं सदा कुर्याद्विधिना पार्वणेन तु ॥" स्वयं पचतीति स्वपचः अपत्नीकः । विष्णूशनसौ–"आत्मनो देशकालाभ्यां विप्लवे समुपस्थिते । आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पत्न्यसंभवे ॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादामं विशेषतः । न पक्कं भोजयेद्विद्वान् सच्छूद्रोऽपि कदाचन ॥ भोजयन् प्रत्यवायी स्यान्न च तस्य फलं लभेत् ॥ ३ ॥" अत्र प्रवासतीर्थग्रहणादावामहेमश्राद्धमेव पाकश्राद्धं तु न भवत्येवेति हेमाद्रिरत्नावल्यादयः । अपरार्कविज्ञानेश्वरादयस्तु–'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते ।' इति सुमन्तूक्तेः साग्निकैर्निरग्निकैश्च प्रवासादौ सर्वत्र पाकाभावे आमादि कार्यम् । पाकसंभवे त्वन्नेनैवेत्याहुः । अत एव पाकश्राद्धमुक्त्वा–"एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु कर्मसु । भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रवासस्थोऽपि नित्यशः ॥" इति मात्स्ये निरग्नेरपि पाकेनोक्तमिति शूलपाणिकल्पतरू । एतच्छब्दः श्राद्धमात्रपर इत्यन्ये । 'एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम् ।' इति लघुहारीतीयमपि साग्नेरेव । निरग्नेर्महैकोद्दिष्टमप्या-

---

पाणि कहते हैं, सुमन्तुने कहा है कि हे महाभुज ! हे नराधिप ! पाक बनानेवाली स्त्री न हो तो ब्राह्मणोंको पाक बनानेका अधिकार है, और विदेशमें श्राद्ध करे; तो भी ब्राह्मणोंको पाक बनानेका अधिकार है बुद्धिमान् मनुष्योंने सदैव शूद्रोंको आमश्राद्ध करना कहा है । प्रचेताका कथन है कि स्त्री, शूद्र और स्वयंपाक बनानेका और जातकर्ममें पार्वणकी विधिसे सदैव आमश्राद्ध करे, विष्णु और उशनाका कथन है कि यदि देश वा कालसे अपने यहां कोई उपद्रव हो जाय तो आपत्ति, अग्निका अभाव तीर्थ वा परदेशमें हो और चंद्रमा–सूर्यके ग्रहणमें विशेष कर आमश्राद्ध करे, और श्रेष्ठ शूद्र भी ब्राह्मणोंको कदाचित् पक्वान्न न जिमावे, और जिमावे तो पापभागी होता है और श्राद्धका फल उसको नहीं मिलता, यहां परदेश, तीर्थ, ग्रहण आदिमें आम वा हेमश्राद्ध ही होता है, पाकश्राद्ध नहीं होता । यह हेमाद्रि और रत्नावली आदिका मत है । अपरार्क, विज्ञानेश्वर आदिने तो यह कहा है कि पाकके अभावमें ही द्विजातियोंको आमश्राद्ध करना लिखा है । इस सुमंतुके वाक्यसे साग्निक हो वा निरग्निक हो प्रवास आदिके विषे सब स्थानमें पाकके अभावमें ही आम आदि श्राद्ध करे, पाक हो सके तो अन्नसे ही करे, इसीसे पाकश्राद्धको कहकर इस मत्स्यपुराणके वाक्यसे निरग्निकको भी पाकसे श्राद्ध कहा है, यह शूलपाणि और कल्पतरु लिखते हैं कि, इस सम्पूर्ण श्राद्ध मात्रको यज्ञोपवीत और भार्यासहित और परदेशमें स्थित भी सब पर्वोमें सदैव करे । एकोद्दिष्ट सदैव पाकसे स्वयं करना, यह लघुहारीतका कथन भी साग्निकके निमित्त है, निरग्निकको तो उत्सवका एकोद्दिष्ट भी आम अन्नसे कहा है ।

मेन । शूद्रस्य तु दशाहपिण्डाद्यामेनेति हलायुधः । उत्सन्नाग्नीनां त्वामश्राद्धमेव पूर्वोक्तजमदग्निवाक्यात् । मरीचिः-" श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं मासंसंवत्सराद्दते ॥ " स्मृतिदर्पणे-"मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम् । आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ॥ " हेमाद्रौ व्यासः-" आमं ददत्तु कौन्तेय दद्यादामं चतुर्गुणम् । द्विगुणं त्रिगुणं वापि न त्वेकगुणमर्पयेत् ॥ सिद्धान्ने तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौ विधिः । आवाहनादि सर्वं स्यात् पिण्डदानं च भारत ॥ दद्याद्यच्च द्विजातिभ्यः शृतं वाशृतमेव वा । तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् ॥ ३ ॥ " पक्षान्तरमाह स एव-"आमं ददद्धि कौन्तेय तदामं द्विगुणं चरेत् । त्रिगुणं चतुर्गुणं वापि न त्वेकगुणमर्पयेत् ॥" स्मृत्यर्थसारे सममप्युक्तम् । विष्णुपुराणे वाराहे च-"असमर्थोऽन्नदानस्य ह्याशमामं स्वशक्तितः । प्रदद्यात्तु द्विजातिभ्यः स्वल्पामपि च दक्षिणाम् ॥" अत्र स्वशक्तितः इत्यस्मात्समलाभः । आश्यत इति आशः । षट्त्रिंशन्मते-"आमश्राद्धं यदा कुर्यात् पिण्डदानं कथं भवेत् । गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा ॥ पिण्डान् दद्याद्यथालाभं तिलैः सह विमत्सरः ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये व्यासः-"आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदः सदा । हस्तेऽग्नौकरणं कुर्याद्ब्राह्मणस्य विधानतः ॥"

शूद्रका तो दशाहके पिंड आदि आम अन्नसे करने, यह हलायुध कहते हैं । जिनकी अग्नि नष्ट हो गयी हो उनको भी पूर्वोक्त जमदग्निके वाक्यसे आमश्राद्ध ही करना चाहिये । मरीचिका कथन है कि श्राद्धमें विघ्न हो जाय तो ब्राह्मणको मासिक और वार्षिकको छोड़कर अमावस्या आदिमें आमश्राद्ध करना लिखा है । स्मृतिदर्पणमें लिखा है कि मरणदिनका श्राद्ध सपिंडी गयाश्राद्ध महालय इनकी आपत्तिमें भी आमअन्नसे कभी न करे । हेमाद्रिमें व्यासका कथन है कि हे कौन्तेय ! आमअन्न देनेवाला चौगुना, दुगुना, तिगुना आमअन्नको दे, एकगुना न दे सिद्ध अन्नमें हे राजन् ! जो आवाहन आदिका विधान है, वह सब विधि आर पिंडदान आमश्राद्धमें भी होता है, और पका और विना पका जो अन्न ब्राह्मणोंको दिया जाय उससे ही अग्नौकरण करे और उसीसे पिंड दे, उसीका कथन है कि हे कौन्तेय ! कच्चा अन्न देता हुआ मनुष्य दूना, तिगुना, चौगुना दे, एकगुना न दे । स्मृत्यर्थसारमें समान भी कहा है विष्णुपुराण और वाराहपुराणमें लिखा ह कि अन्न देनेको असमर्थ मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार भोजन मात्र आम अन्न दे, और थोड़ेसे थोड़ी भी दाक्षिणा दे । यहां शक्तिके कहनेसे समका लाभ जानना । षट्त्रिंशन्मतमें लिखा है कि जब आमश्राद्ध करे, तो पिंडदान कैसे हो, घरके पाकमेंसे अन्नको निकालकर सत्तू वा पायस जो मिल सके उससे तिलोंसहित पिंड दे और क्रोध न करे । पृथ्वीचन्द्रोयमें व्यासका कथन ह कि जब आमश्राद्ध करे, तब विधिका ज्ञाता श्राद्ध देनेवाला सदा ब्राह्मणके हाथमें विधिसे अग्नौकरण करे, यह साग्निकको भी सदैव है ।

एतत्साग्नेः निरग्नेः सदा तत्सत्त्वात् । यत्तु-" आमेन पिण्डं दद्याच्चेद्विप्रान् पाकेन भोजयेत् । पक्केन कुरुते पिण्डमामान्नं यः प्रयच्छति ॥ तावुभौ मनुजौ प्रोक्तौ नरकार्हौ न संशयः ॥" इति । तद्दर्शादिपरम् । देशाचाराद्व्यवस्थेति युक्तम् । मरीचिः-" आवाहने स्वधाकारे मन्त्रा ऊह्या विसर्जने । अन्यकर्मण्यनूह्याः स्युरामश्राद्धविधिः स्मृतः ॥ " आवाहने हविषे अत्तव इत्यत्र स्वीकर्त्तवे इत्यूहः ॥ स्वधाकारे नमो वः पितर इषे इत्यत्र इषे इति पदस्थाने आमद्रव्यायेत्यूहः । विसर्जने वाजेवाजे इत्यत्र तृप्ता इति स्थाने तप्स्यत तृप्यतेति वोहः । यद्यपि तस्माद्दचं नोहेतेति ऋच्यूहो निषिद्धः तथापि वचनाद्भवति । " तृप्तिप्रश्नोऽवगाहश्च जुषप्रश्नो यथासुखम् । आमश्राद्धे भवेन्नैतदापोशानं च पञ्चमम् ॥ " अयं चानुवादः खलेवाल्यां छेदनादीनामिवार्थाभावाल्लोपसिद्धेः । धर्मप्रदीपे तु-" आमं चतुर्गुणं दद्यादथवा द्विगुणं तथा । हेम चाष्टगुणं तद्वदामे हैमेऽप्यसौ विधिः ॥ आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च । व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत् ॥ गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा । पिण्डदानं प्रकुर्वीत आमे हैमे कृते सति ॥ आमश्राद्धे च वृद्धौ च प्रेतश्राद्धे तथैव च । विकिरं नैव कुर्वीत

कारण कि,वह मिल सकता है,जो किसीने यह कहा है कि, आमअन्नसे पिंड दे और ब्राह्मणोंको पक्कान्न जिमावे, और जो पक्कान्नसे पिंड दे और ब्राह्मणको आमान्न देवे वे दोनों मनुष्य नरकमें जाने योग्य हैं, इसमें संदेह नहीं यह अमावस्या आदिके विषयमें लिखा है और इसकी देशाचारके अनुसार व्यवस्था करनी युक्त है । मरीचिने कहा है कि, आवाहन, स्वधाकार और बिदा करनेमें, मन्त्रोंमें ऊह करना उचित है अन्य कर्ममें नहीं करना यह आमश्राद्धकी विधि वर्णन की है, आवाहनमें 'हविषे अत्तवे' यहां 'स्वीकर्तवे' यह ऊह करना, स्वधाकारमें 'नमो वः पितर इषे' यहां इष पदके स्थानमें 'आमद्रव्याय' यह ऊह करना, विसर्जनमें 'वाजे वाजे' मंत्रमें 'तृप्ताः' इस स्थानमें 'तप्स्यत तृप्यत' यह ऊह करना कहते हैं, यद्यपि, "तस्माद्दचं नोहेत" इस वाक्यसे ऋचाका ऊह करना निषिद्ध है, तथापि वाक्यसे ऊह होता है, तृप्तिका प्रश्न, स्नान, प्रीतिका प्रश्न, यथासुख भोजन, पांचवां आपोशान ये आमश्राद्धमें नहीं होते, यह अनुवाद वचन है कारण कि खलेवाली अर्थात् शस्यके मर्दन भूमिस्थित मध्यकाष्ठमें छेदनादिके तुल्य अर्थाभावसे ही इनका लोप सिद्ध है । धर्मप्रदीपमें तो यह लिखा है कि कच्चा अन्न चौगुना वा दुगुना देना, और सुवर्ण अठगुना देना यह आम और सुवर्णके श्राद्धकी विधि है आम, सुवर्ण, नित्य, नान्दीश्राद्ध,और व्यतीपात श्राद्ध इनमें नियम न करें,आम और सुवर्णके श्राद्धमें घरके पाकमेंसे अन्न निकालकर सत्तू वा खीरसे पिण्डदान करें आमश्राद्ध वृद्धिश्राद्ध प्रेतश्राद्ध इनमें विकिर न करे, यह कात्यायन मुनिने लिखा है, आमश्राद्धको

मुनिः कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ आमश्राद्धमनंगुष्ठमग्नौकरणवर्जितम् । तृप्तिप्रश्नवि-हीनं तु कर्तव्यं मानवैर्ध्रुवम् ॥ आवाहनाग्नौकरणं विकिरं पात्रपूरणम् । तृप्तिप्रश्नं न कुर्वीत आमे हैमे कदाचन ॥ ६ ॥" इत्युक्तम् । एतच्च-'आवाहनं भवेत्कार्यमर्घ्यदानं तथैव च' इति हेमाद्रौ भविष्यादि-विरोधाच्चिन्त्यम् । शाखान्तरविषयं वास्तु । विकिरोऽप्यामेनेति हेमाद्रिः । शूद्रस्य तु तत्रैवोक्तम् । 'अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते' । अग्नये कव्यवाहनाय नमः, सोमाय पितृमते नमः, इत्ययं मन्त्रः । मात्स्ये-"मन्त्रवर्ज्जं हि शूद्रस्य सर्वमेव विधीयते । एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धि-श्राद्धं च सर्वदा । नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवद्बुधः ॥" तच्च पूर्वाह्णे का-र्यम् । "आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं च मध्यतः । पार्वणं चापराह्णे तु प्रात-र्वृद्धिनिमित्तकम्" इति हारीतोक्तेः । एतत् द्विजविषयम् ॥ शूद्रकर्तृकं त्वपराह्ण एव । 'मध्याह्नात्परतो यस्तु कुतपः समुदाहृतः । आमश्राद्धं तु तत्रैव पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥" इति सुमन्तूक्तेरित्यपरार्के हेमाद्रौ चोक्तम् । तदभावे हेमश्राद्धमाह हेमाद्रौ मरीचिः-"आमान्नस्याप्यभावे तु श्राद्धं कुर्वीत बुद्धिमान् । धान्याच्चतुर्गु-णेनैव हिरण्येन सुरोचिषा ॥" धर्मः-' आमं तु द्विगुणं प्रोक्तं हेम तद्वच्चतुर्गुणम् ।

मनुष्य अंगूठेका स्पर्श, अग्नौकरण और तृप्तिका प्रश्न इनको त्यागकर निश्चय करे आम और हेम श्राद्धमें आवाहन, अग्नौकरण, विकिर पात्रपूरण, और तृप्तिप्रश्नको न करे, यह धर्मप्रदीपका कथन चिंत्य है, कारण कि, इसमें हेमाद्रिमें लिखे इस भविष्यपुराणके वचनका विरोध आता है कि, आवाहन और अर्घ प्रदान करने अथवा दूसरी शाखाओंके निमित्त यह कथन है, विकिर भी आमसे ही करना चाहिये, यह हेमाद्रिने कहा है, शूद्रके निमित्त तो वहां ही लिखा है कि, अग्नौकरणका मन्त्र शूद्रको नमस्कार ही लिखा है कि "अग्नये कव्यवाहनाय नमः" "सोमाय पितृमते नमः" । मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, मंत्रको त्यागकर शूद्र सब कर्म करे, इसी भांति बुद्धिमान् शूद्र भी सामान्यश्राद्ध वृद्धि-श्राद्ध ये नमस्कारमंत्रसे और आमान्नसे करे, वह पूर्वाह्णमें करना, कारण कि, हारीतका कथन है कि, पूर्वाह्णमें आमश्राद्ध, मध्याह्नमें एकोद्दिष्ट, अपराह्णमें पार्वण करे प्रातःकाल वृद्धिश्राद्ध करे यह ब्राह्मणविषयक है शूद्रको तो अपराह्णमें ही करना कारण कि, सुमंतुने कहा है कि मध्याह्नसे परे जो कुतप काल लिखा है, उसमें किया आमश्राद्ध पितरोंके निमित्त अक्षय है, यह अपरार्क और हेमाद्रिमें लिखा है, उसके अभावमें सुवर्णसे श्राद्ध हेमाद्रिमें मरीचिने कहा है कि, आमा-न्नके अभावमें बुद्धिमान् मनुष्य अन्नसे चौगुने कान्तिमान् सुवर्णसे श्राद्ध करे। धर्मका कथन है कि आमान्न दूना और सुवर्ण चौगुना लेना, स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, सुवर्ण अठगुना वा

स्मृत्यर्थसारे-'हिरण्यमष्टगुणं चतुर्गुणं समं वा दद्यात् ।" हेमाद्रौ भविष्ये-"अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं संग्रहे च तथा स्त्रीशूद्रयोरपि॥" षट्त्रिंशन्मते तुर्यपादे-'वर्जयित्वा क्षयेऽहनि' इति पाठः । 'यस्य भार्या रजस्वला' इति व्यासपाठः । पुत्रोत्पत्तौ तु हेमनियममाह संवर्तः-'पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान् । न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन् ॥" भविष्ये-"गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा । पिण्डदानं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धे कृते सति ॥ शूद्रस्तु गृहपाकेन तत्पिण्डान्निर्वपेत्तथा । सक्तु मूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम् ॥ २ ॥ " 'हेमश्राद्धे पिण्डदानं न' इति दिवोदासः । स्मृत्यर्थसारे तु विकल्प उक्तस्तदाशयं न विद्मः । षट्त्रिंशन्मते-"नामन्त्रणाग्नौकरणं विकिरो नैव दीयते । तृप्तिप्रश्नोऽपि नैवात्र कर्तव्यः केनचिद्भवेत् ॥" अत्र मरीचिना आमाभावे हेमविधानेन स्थानापत्त्या धर्मप्राप्तेः पूर्ववन्मन्त्रोहः पूर्वाह्णकालता च ज्ञेयेति दिक् । पूर्वोक्तधर्मप्रदीपोक्तेश्च । व्यासः-"हिरण्यमामं श्राद्धीयं लब्धं यत्क्षत्रियादितः । यथेष्टं विनियोज्यं स्याद् भुञ्जीयाद्ब्राह्मणात्स्वयम् ॥ " विप्रलब्धं भुञ्जीयात् ॥ क्षत्रियादिलब्धे तु यथेष्टविनियोगः । तेनापि श्राद्धवैश्वदेवादि न कार्यम् । देवोद्देशेन त्यक्तस्य देवतान्तराय त्यागायोगादिति देवयाज्ञिकः ।

चौगुना वा बराबर दे । हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि अन्न और ब्राह्मणका अभाव, परदेश और पुत्रजन्म इनमें स्त्री शूद्र भी सुवर्णसे श्राद्ध करे षट्त्रिंशत्के मतमें चौथे चरणमें क्षयाहके दिनको त्याग करके करे, यह पाठ है । व्यासने तो जिसकी भार्या रजस्वला हो, यह चौथा पाद लिखा है । पुत्रकी उत्पत्तिमें सुवर्णका नियम संवर्तने लिखा है कि बुद्धिमान् मनुष्य पुत्रके जन्ममें सुवर्णसे ही श्राद्ध करे, कल्याण चाहे तो पक्व और आम अन्नसे न करे । भविष्यपुराणका वाक्य है कि हेमश्राद्ध किया हो तो गृहपाकसे निकाले अन्नसे सत्तू वा पायससे पिंडदान करना चाहिये, शूद्र तो गृहपाकसे उसके पिण्ड दे और सत्तू मूल फल वा पायस उसके निमित्त लिखे हैं । हेमश्राद्धमें पिंडदान नहीं होता, यह दिवोदासका मत है, स्मृत्यर्थसारमें तो विकल्प लिखा है, उसको हम नहीं जानते । षट्त्रिंशत्के मतमें लिखा है कि, आमंत्रण, अग्नौकरण, विकिर, तृप्तिका प्रश्न इनको कोई न करे । यहां मरीचिने लिखा है कि आमके अभावमें हेमकी विधिसे उसके स्थानमें होनेसे उसको धर्मप्राप्तिसे पूर्वके तुल्य मंत्रोंका ऊह और पूर्वाह्ण कालमें करना उचित है और पूर्वोक्त धर्मप्रदीपका भी कथन है । व्यासने लिखा है कि, जो श्राद्धका सुवर्ण वा आम द्रव्य क्षत्रियआदिसे प्राप्त हुआ हो तो उसको यथेच्छ कार्यमें लगावे और ब्राह्मणसे मिला हो तो स्वयं भोजन करे और उससे श्राद्ध और बलिवैश्वदेव आदि न करे, कारण कि एक देवके निमित्त दिये अन्नका अन्य देवको दान देना अनुचित है, यह देवयाज्ञिकका कथन है । शूद्रसे जो मिले अन्नके

शूद्रलब्धे तूक्तं तत्रैव षट्त्रिंशन्मते-" आमं शूद्रस्य यत्किंचिच्छ्राद्धिकं प्रतिगृह्यते । तत्सर्वं भोजनायालं नित्यनैमित्तिके न च ॥" इति शुद्धितत्त्वेऽङ्गिराः-"शूद्रवेश्मनि विप्रेण क्षीरं वा यदि वा दधि । निवृत्तेन न भोक्तव्यं शूद्रान्नं तदपि स्मृतम् ॥ शूद्राद्विप्रगृहेष्वन्नं प्रविष्टं तु सदा शुचि ॥ " पराशरः-" तावद्भवति शूद्रान्नं यावन्न स्पृशति द्विजः । द्विजातिकरसंस्पृष्टं सर्वं तन्न विरुद्ध्यते ॥" विष्णुपुराणे-' संप्रोक्षयित्वा गृह्णीयाच्छूद्रान्नं गृहमागतम् ॥ ' अङ्गिराः-' पात्रान्तरगतं ग्राह्यं दुग्धं स्वगृहमागतम् । ' सांकल्पविधिश्राद्धम् । सपिण्डश्राद्धाशक्तावाह हेमाद्रौ संवर्तः-" समग्रं यस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्वणम् । अपि संकल्पविधिना तस्य काले विधीयते ॥ पात्रे भोज्यस्य चान्नस्य त्यागः संकल्प उच्यते ॥ " व्यासः-" सांकल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम् । नावाहनाग्नौकरणे पिण्डांश्चैव न दापयेत् ॥ " पात्रमर्घ्यस्य । समन्त्रकावाहनस्य निषेधः, तूष्णीं तु भवत्येवेति हेमाद्रिः । स्मृत्यर्थसारे-' विकिरं तु न दातव्यम् ' इति तृतीयपादे पाठः । स्मृत्यन्तरे-" त्यजेदावाहनं चार्घ्यमग्नौकरणमेव च । पिण्डांश्च विकिराक्षय्ये श्राद्धे सांकल्पसंज्ञके ॥ " हेमाद्रौ वृद्धशातातपस्तु-" पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु

निमित्त तो वहां ही षट्त्रिंशत्के मतमें लिखा है कि जो शूद्रका श्राद्धीय कच्चा अन्न किंचित् भी लिया जाय वह सब भोजन करनेके योग्य है, परन्तु नित्य नैमित्तिकमें नहीं । शुद्धितत्त्वमें अंगिराका कथन है कि निवृत्तिमार्गमें स्थित ब्राह्मण शूद्रके घरमें दूध वा दहीका भी भोजन न करे, कारण कि, वह भी शूद्र अन्न कहा है, शूद्रसे जो ब्राह्मणके घरमें अन्न गया हो वह सदा ही शुद्ध है । पराशरने लिखा है कि, तबतक ही शूद्रान्न होता है जबतक ब्राह्मण उसको स्पर्श न करे, ब्राह्मणके हाथका स्पर्श हो जाय तो उसके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है, विष्णुपुराणमें लिखा है कि घरमें आये हुए शूद्रके अन्नको जलसे भले प्रकार छिड़ककर ग्रहण करे, अंगिराका वाक्य है कि घर आये शूद्रके दूधको दूसरे पात्रमें लेकर स्वीकार कर ले । अब सांकल्पिकविधि कहते हैं यदि सपिण्ड श्राद्ध न कर सके तो हेमाद्रिमें संवर्तका यह वाक्य है कि जो सम्पूर्ण पार्वण करनेको समर्थ न हो तो वह समयपर संकल्प विधिसे करे, सुपात्रको जो भोजन देना वा अन्नका त्याग है उसको संकल्प कहते हैं । व्यासजीने कहा है कि यदि मनुष्य संकल्प करे तो पात्रपूरण, आवाहन, अग्नौकरण और पिण्डदान इनको न करे, यहां पात्र शब्दसे अर्घ्यका पात्र जानना और आवाहन मन्त्रसे न करे और मौनतासे तो कर दे, यह हेमाद्रिका कथन है । स्मृत्यर्थसारमें तो तीसरे चरणमें यह पाठ है कि, विकिर न दे । स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि आवाहन, अर्घ्य, अग्नौकरण, पिण्ड और विकिर, [1]अक्षय्यजल इनको संकल्प श्राद्धमें त्याग दे । हेमाद्रिमें वृद्धशाता-

---

1 मनुः-"शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेश्मन आगतम् । पक्वं विप्रगृहे चैवं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥१॥ शुष्क अन्न, गोरस, स्नेह यह शूद्रके घरसे आया भी भोज्य है और ब्राह्मणके यहाँ पक्वान्न भोजन कर लेना यह मनुने कहा है ।

श्राद्धं विधीयते । स्वधावाचनलोपोऽत्र विकिरस्तु न लुप्यते ॥" इत्याह । पृथ्वीचन्द्रोदये वसिष्ठः—"आवाहनं स्वधाशब्दं पिण्डाग्नौकरणं तथा । विकिरं पिण्डदानं च सांकल्पे षड्विवर्जयेत् ॥" विकिरे विकल्पः स्मृत्यन्तरे—"अङ्गानि पितृयज्ञस्य यदा कर्तुं न शक्नुयात् । स तदा वाचयेद्विप्रान् संकल्पात्सिद्धिरस्त्विति ॥" छागलेयः—"पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथंचन । सांकल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः ॥" कार्ष्णाजिनिः—"मौञ्जीबन्धाद्वत्सरार्धं वत्सरं पाणिपीडनात् । पिण्डान् सपिण्डा नो दद्युः प्रेतपिण्डं विनात्र तु ॥" अस्यापवादः पित्रोराब्दिकादौ पूर्वमुक्तः । त्यक्ताग्नेरपि सांकल्पमुक्तं षट्त्रिंशन्मते—'अनग्निको यदा विप्र उत्सन्नाग्निस्तथैव च । तथा वृद्धिषु सर्वासु संकल्पश्राद्धमाचरेत् ॥" अशक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये—"द्रव्याभावे द्विजाभावे अन्नमात्रं तु पाचयेत् । पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥" देवलः—"पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभावे द्रव्यविप्रयोः । श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते भवेन्निरशनोऽपि वा ॥" वृद्धवसिष्ठः—"किंचिद्दद्यादशक्तस्तु उदकुम्भादिकं द्विजे । तृणानि वा गवे दद्यात् पिण्डान्वाप्यथ निर्वपेत् ॥ तिलदर्भैः पितॄन्वापि तर्पयेत्स्नानपूर्वकम् ॥" हेमाद्रौ भविष्ये—"अग्निना वा दहेत् कक्षं श्राद्धकाले समागते । तस्मिन्वोपवसेदह्नि जपेद्वा श्राद्धसंहिताम् ॥" श्राद्धसंहिता समन्त्रश्राद्धसंकल्पः । विष्णुवराहपुराणयोः—"असमर्थोऽन्न-

---

तपका तो यह वाक्य है कि जो श्राद्ध पिंडदानसे रहित है उसमें स्वधावाचन न करे और विकिरको तो करे । पृथ्वीचन्द्रोदयमें वसिष्ठका वाक्य है कि आवाहन, स्वधाशब्द, पिंड, अग्नौकरण, विकिर और पिंडदान इन छःको संकल्पश्राद्धमें त्याग दे, विकिरमें विकल्प है; कारण कि स्मृत्यंतरमें लिखा है कि जब पितृयज्ञके अंगोंके करनेमें समर्थ न हो तब ब्राह्मणोंसे यह कहवावे कि संकल्पसे सिद्धि हो । छागलेयका कथन है कि जब मघाआदिमें किसी प्रकार पिण्डकी निवृत्ति हो जाय तब ब्रह्मवादी नियमसे संकल्प श्राद्ध करे । कार्ष्णाजिनिका कथन है कि यज्ञोपवीतसे छः मासतक और विवाहसे वर्षदिनतक प्रेतपिण्डको छोडकर पिंडको सब सपिंड न करें, इसका अपवाद मातापिताके वार्षिक आदिमें प्रथम कथन कर आये हैं । अग्निके त्यागीको भी संकल्पश्राद्ध षट्त्रिंशत्के मतसे लिखा है कि यदि अनग्नि वा त्यक्ताग्नि हो तो सम्पूर्ण वृद्धियोंमें संकल्पश्राद्ध करे। असमर्थतामें तो पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहन्नारदीयका कथन है कि द्रव्य और ब्राह्मणके अभावमें श्राद्धके दिन अन्नमात्रको पकावे और चतुर मनुष्य पैतृकसूक्तसे हवन करे । देवलने कहा है कि द्रव्य और विप्रके अभावमें पिंडमात्रको दे दे, वा श्राद्धके दिन उपवास करे । वृद्धवसिष्ठका कथन है कि अशक्त मनुष्य तो कुछ जलघटआदि ब्राह्मणको दे वा तृण आदि गौओंको दे वा पिंड दे वा तिल सहित कुशाओंसे स्नानपूर्वक पितरोंको तृप्त करे । हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि श्राद्धकालके आनेपर अग्निमें तृण जला दे वा उस दिन व्रत करे वा मंत्रोंसहित श्राद्धका संकल्प करे । विष्णु और वराहपुराणमें लिखा है कि अन्नदानमें असमर्थ

दानस्य धान्यं मांसं स्वशक्तितः। प्रदास्यति तिलान्वापि स्वल्पां वापि च दक्षिणाम् ॥ सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्रदर्शकः। सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति ॥ न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्नं श्राद्धोपयोगि स्वपितॄन्नतोऽस्मि। तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥ इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम्। यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति भारत ॥ ४ ॥" प्रभासखण्डे— "गत्वारण्यममानुष्यमूर्ध्वबाहुर्विरौत्यदः। निरन्नो निर्धनो देवाः पितरो मानृणं कृथाः ॥ न मेऽस्ति वित्तं न धनं न भार्या श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि। वनं प्रविश्येह तु तन्मयोच्चैर्भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥ श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं मह्यं दयध्वं पितृदेवताद्याः। आख्याय चोत्क्षिप्य भुजौ ततो वै दिवा च रात्रिं समुपोष्य तिष्ठेत् ॥ भवेत्स वै तेन कृतेन तेषामृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम् ॥ ३ ॥" इत्यनुकल्पः ॥ अथ श्राद्धभोजने प्रायश्चित्तम्। दर्शे षट् प्राणायामाः। वृद्धौ त्रयः। संस्कारेषु जातकर्मादिचूडान्तेषु सांतपनम्। आद्ये चान्द्रं वा। अन्यसंस्कारेषूपवासः। सीमन्ते चान्द्रमिति विज्ञानेश्वरः। आपादि नवश्राद्धैकादशाहेषु भोजने कार्यः। द्वादशाहे ऊनमासे च पादोनः। द्विमासे त्रिपक्षे ऊनषष्ठोनाब्दयोश्चार्द्धकृच्छ्रः। त्रिमासाद्याब्दिकान्तेषु सपिण्डने च पादकृच्छ्रः।

अपनी शक्तिसे अन्न, मांस वा तिल और थोडी दक्षिणा दे, और कुछ भी न हो तो वनमें जाकर अपनी कोखमूल सूर्य आदि लोकपालोंको दिखाकर ऊंचे स्वरसे यह पढ़े कि वित्त, धन और श्राद्धके उपयोगी और वस्तु मेरे यहां नहीं हैं, मैं पितरोंको नमस्कार करता हूं, मेरी भक्तिसे पितर तृप्त हों, इसमें मैंने अपनी दोनों भुजा पवनमार्गमें फैला दी हैं, यह पितरोंने होने और न होनेका प्रयोजन गाया है, हे राजन्! जो इस प्रकार करता है उसने श्राद्ध ही कर लिया। प्रभासखंडमें लिखा है कि निर्जन वनमें जाकर ऊपरको भुजा उठाकर इस प्रकार रोवे कि हे देवताओ! मैं अन्न और धनसे हीन हूँ। हे पितरो! क्रोध मत करना, मेरे वित्त, धन, भार्या नहीं हैं, मैं आपका श्राद्ध कैसे करूं? इससे इस वनमें प्रवेश कर मैंने दोनों बांह पवनके मार्गमें की हैं और श्राद्धरूपी ऋण मैंने आपको दिया, पितर और देवता मेरे ऊपर कृपा करो, इस प्रकार कहकर, भुजा उठाये रातदिन व्रत करके खड़ा रहे, वह इस प्रकार करनेसे पितर और देवताओंके ऋणसे छूटता है। इत्यनुकल्पः ॥ अब श्राद्धभोजनका प्रायश्चित्त लिखते हैं—अमावस्याके श्राद्धमें छः प्राणायाम, वृद्धिमें तीन, जातकर्म आदि मुण्डनपर्यन्त संस्कारोंमें सांतपन अथवा जातकर्ममें चान्द्रायण, अन्य संस्कारोंमें उपवास करे। सीमंतमें चांद्रायण करे, यह विज्ञानेश्वरका मत है। आपत्तिमें नवश्राद्ध, एकादशाहके भोजन करनेमें उपवास, द्वादशाह वा ऊनमासमें पादोन (६ दिन उपवास), द्विमास, त्रिपक्ष, ऊनषष्ठ और ऊनाब्दमें अर्धकृच्छ्र और त्रिमास आदिसे वार्षि-

उपवासो वा। गुरुद्रव्यार्थंभोजनेऽर्द्धम्। जपशीले तदर्धम्। अनापदि न्यून-मासान्तेषु चान्द्रं कार्यं वा। द्विमासादौ पादोनम्। त्रिमासादावर्द्धकायः। आब्दिके पादोनकायः पुनराब्दिके एकाहः। क्षत्रियादिश्राद्धेषु द्वित्रिचतुर्गुणानि ज्ञेयानि। चाण्डालसर्पश्वादिहतपतितक्लीबादिनवश्राद्धे चान्द्रम्। आद्यमा-सिकान्ते चान्द्रं पराकश्च। द्वादशाहादौ पराकः। द्विमासादावतिकृच्छ्रः। त्रिमासादौ कायः। आब्दिके पादः। अभ्यासे सर्वं द्विगुणम्। आमहेम-संकल्पश्राद्धेषु तत्तदर्धानि। यतिर्ब्रह्मचारी चोक्तं प्रायश्चित्तं कृत्वा त्रीनु-पवासान् प्राणायामान्घृताशनं चाधिकं कृत्वा व्रतशेषं समापयेत्। अना-पदि द्विगुणम्। दर्शादौ दशगायत्रीमन्त्रिता अपः पिबेत् षट् प्राणायामा वा। संस्कारेषु चौले कृच्छ्रः। सीमन्ते चान्द्रम्। अन्येषूपवास इति दिक्। अत्र माधवमिताक्षरादौ क्वचिद्विरोधो विषयभेदात्परिहार्यः। एकादशाहे चान्द्रं पुनः संस्कारश्चेति प्रायश्चित्तकाण्डे हेमाद्रिः। यत्तूशनाः-'दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुक् द्विजः।' इति। तदनुक्तप्रायश्चित्तश्राद्धपरमिति विज्ञानेश्वरः। अथ क्षयाहश्राद्धम्। तत्स्वरूपमाह हेमाद्रौ व्यासः-"मासपक्षति-

---

कपर्यन्त और सपिंडमें पादकृच्छ्र वा व्रत करे। गुरुके द्रव्यके निमित्त भोजन किया हो तो आधा प्रायश्चित्त, यदि जपशील हो तो उससे भी आधा, जो कोई आपत्ति न हो तो न्यून, मासांतोंमें चांद्रायण व्रत करना और द्विमासमें पादोन और त्रिमास आदिमें आधा करना, वार्षिकमें पादोन करना,पुनराब्दिकमें एकदिन व्रत करना, क्षत्रिय आदिके श्राद्धोंमें ये प्रायश्चित्त दुगुने, तिगुने, चौगुने जानने। चांडाल, सर्प, कुत्ता आदिसे जो मरे हों, पतित और नपुं-सकके श्राद्धमें चांद्रायण करना। प्रथममासिकके अन्तमें चांद्रायण और पराक लिखा है, द्वादशाहमें पराक, द्विमास त्रिमासी आदिमें अतिकृच्छ्र करे। वार्षिकमें चौथाई कृच्छ्र करे बारंबार अपराध करनेमें सब प्रायश्चित्त दुगुने होते हैं, आम, सुवर्ण और संकल्पश्राद्धोंमें उस उसके आधे करने। संन्यासी और ब्रह्मचारी इन प्रायश्चित्तोंको करके तीन व्रत, प्राणायाम, घृतका भोजन इनको अधिक करके शेष व्रतको पूर्ण करे। आपत्ति न हो तो दूना करे, अमावस्याके भोजनमें दशवार गायत्री जप कर जलपान वा छः प्राणायाम करे। संस्कारोंमें, मुण्डनमें, कृच्छ्र और सीमन्तमें चांद्रायण करे। अन्योंमें व्रत करे, यह सूक्ष्म कहा है। यहां माधव और मिताक्षरा आदिमें कहीं विरोध हो तो विषयभेदसे उसको निवारण करना चाहिये। एकादशाहमें चांद्र और फिर संस्कार करना, यह प्रायश्चित्तकाण्डमें हेमाद्रिका कथन है, और उशनाने यह लिखा है कि श्राद्धका भोक्ता ब्राह्मण दशवार गायत्री पढ़कर जलपान करे,वह उस श्राद्धके विषयमें है जिसका प्रायश्चित्त न लिखा हो,यह विज्ञानेश्वरका मत है। अब क्षयाहश्राद्धको लिखते हैं उसका स्वरूप हेमाद्रिमें व्यासके वाक्यसे कहा है कि मास,

थिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि । प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः ॥" नारदीये-'पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।' अत्र चान्द्रं मानं ज्ञेयम् । 'आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ।' इति गर्गोक्तेः । मलमासमृतस्य तु सौरं-'मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत् ।' इति हेमाद्रावुक्तेः । एतन्मृतमासस्यैवाधिक्ये ज्ञेयम् । ब्राह्मे-"प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापित्रोर्मृतेऽहनि । पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि ॥" अपुत्रस्येति भ्रात्राप्यन्वयः । ज्येष्ठस्येति कनिष्ठस्यानावश्यकत्वार्थम् । मदनरत्ने भविष्ये-'सर्वेषामेव श्राद्धानां श्रेष्ठं सांवत्सरं मतम् ।' तथा-" भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति खगाधिप । मातापितृभ्यां सततं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि । स याति नरकं घोरं तामिस्रं नाम नामतः॥" तच्च नानास्मृतिष्वेकोद्दिष्टं पार्वणं चोक्तम् । आद्यमाह यमः-"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः । मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥" व्यासः-"एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पित्रोश्चैव मृतेऽहनि । एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते नरः ॥ अकृतं तद्विजानीयाद्भवेच्च पितृघातकः ॥" अन्यमाह शातातपः-"सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा । प्रतिसंवत्सरं श्राद्धं छागलेनोदितो विधिः ॥ यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक्पिण्डे नियोजयेत् । विधिघ्नस्तेन

पक्ष, तिथिसे युक्त जिस दिन जो प्राणी मरे, प्रतिवर्ष वैसा ही वह दिन जब आवे तब क्षयाह कहाता है । नारदीयपुराणमें लिखा है कि, पारण और मनुष्योंके मरनेमें उस समय वर्तमान तिथि लिखी है, यहां मान, चांद्र जानना । कारण कि गार्ग्यका कथन है कि आब्दिक और पितृकार्यमें चांद्रमास उत्तम है । जो मलमासमें मरा हो उसे सौरमास उत्तम है कारण कि हेमाद्रिमें लिखा है कि, मलमासमें मरोंके श्राद्धमें सौरमासको स्वीकार करे, यह भी तब जानना जब मरनेका मास ही अधिक हो ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि माता, पिता, पुत्रहीन चाचा और पुत्रहीन जेठा भाई इनका वार्षिक श्राद्ध मरनेके दिन करे, यहां ज्येठे भाईका कथन इस कारण है कि कनिष्ठका श्राद्ध करना आवश्यक नहीं । मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि; सब श्राद्धोंमें वार्षिक श्राद्ध उत्तम है, वैसे ही और भी वाक्य हैं कि, हे खगाधिप ! मरनेके दिन जो मनुष्य मातापिताका श्राद्ध वर्ष २ में नहीं करता वह तामिस्रनाम घोर नरकमें जाता है वहां अनेक स्मृतियोंमें एकोद्दिष्ट और पार्वण लिखा है, उन दोनोंमें पहला यमने लिखा है । सपिंडीकरणके पीछे प्रतिवर्षमें मरनेके दिन पुत्र माता पिताका एकोद्दिष्ट श्राद्ध पृथक् २ करे । व्यासका कथन है कि मातापिताके मरण दिनमें एकोद्दिष्ट करना चाहिये, जो एकोद्दिष्टको त्यागकर पार्वण करता है वह न करनेके समान है, और वह मनुष्य पितरोंका घातक (हत्यारा) होता है । दूसरा (पार्वण) शातातपने लिखा है कि सपिंडी किये उपरान्त प्रतिवर्ष क्षयाह श्राद्ध पार्वणके तुल्य करे, यह छागलेयकी कही हुई विधि है । जो मनुष्य सपिंडी किये प्रेतको पृथक् पिण्डमें मिलाता

भवति पितृहा चोपजायते ॥ २ ॥" अत्रौरसक्षेत्रजयोः पार्वणं दत्तकादीनामे-कोद्दिष्टमित्येकः पक्षः । साग्नेः पार्वणं निरग्नेरेकोद्दिष्टमित्यपरः । तद्दूषणं मिताक्षरादौ ज्ञेयम् । कल्पतरुस्तु—"साग्न्योरौरसक्षेत्रजयोः पार्वणम् । निरग्निकयो-स्त्वेकोद्दिष्टमित्याह ॥" अपरार्केऽप्येवम् । दत्तकादयो दश पुत्रास्तु साग्नयो निर-ग्नयश्चैकोद्दिष्टमेव कुर्युः । "प्रत्यब्दं पार्वणेनैव विधिना क्षेत्रजौरसौ । कुर्यातामितरे कुर्युरेकोद्दिष्टं सुता दश ॥" इति जातूकर्ण्योक्तेः । यदा तु दत्तकस्य पिता दर्शे महालये वा मृतस्तत्र पार्वणैकोद्दिष्टयोर्विकल्पः । वस्तुतस्तु सर्वेषां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्व्रीहियववद्विकल्पः । स च देशाचाराद्व्यवस्थित इति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः । अत एव पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—'मातापित्रोः पृथक् कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ।' इत्युक्त्वाह—"देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथा परे । सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयाहृचपि ॥" इति । तत्र केवलपितॄ-णाम् । न सपत्नीकानामिति हेमाद्रिः । अत्र मातामहा न कार्याः—"कर्षूसम-न्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ॥" इति कात्यायनोक्तेः । कर्षूसमन्वितं सपिण्डनं यैरेकोद्दिष्टं क्रियते

है वह विधिका नाशक और पितरोंका हत्यारा होता है । यहां औरस, क्षेत्रज पुत्रोंको पार्वण करना, दत्तक आदि पुत्रोंको एकोद्दिष्ट करना, यह एक पक्ष है, साग्निकको पार्वण और निरग्निकको एकोद्दिष्ट करना, यह दूसरा पक्ष है, इनके दूषण मिताक्षरा आदिमें लिखे हैं । कल्पतरुमें तो यह लिखा है कि साग्नि औरस, क्षेत्रज पुत्रोंको पार्वण और निरग्नियोंको एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना । अपरार्कमें भी ऐसा ही लिखा है, दत्तक आदि दश पुत्र तो साग्नि हो चाहे निरग्नि हो एकोद्दिष्ट ही करे । कारण कि जातूकर्ण्यका कथन है कि क्षेत्रज और औरस पुत्र वार्षिक श्राद्ध पार्वणकी विधिसे करे, और इतर दश पुत्र एकोद्दिष्ट ही करें, जब दत्तकका पिता अमावस्या वा महालयमें मृत्युको प्राप्त हुआ हो वहां पार्वण और एकोद्दिष्टका विकल्प जानना, सिद्धान्तसे तो सब पुत्रोंको व्रीहि और यवके समान पार्वण और एकोद्दिष्टका विकल्प लिखा है और उसकी देशाचारसे व्यवस्था जाननी उचित है, यह सब ग्रन्थोंका सिद्धान्त है । इसीसे पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहत्पराशरने मातापिताका एकोद्दिष्ट मृत्युके दिन पृथक् करना लिखकर कहा है कि देशधर्म वा वंशधर्मका आश्रय लेकर और शूरवीर जन क्षयाहके दिन पार्वणश्राद्धकी अभिलाषा करते हैं, वह भी केवल पितरोंका करना, सपत्नीकोंका नहीं करना, यह हेमाद्रि कहते हैं। और इसमें मातामहका न करना कारण कि कात्यायनने लिखा है, 'कर्षूसमन्वितम्' (सपिंडी) और आद्य षोड़श श्राद्ध और वार्षिक श्राद्धको त्यागकर शेष श्राद्धोंमें छः पिण्ड होते हैं, यही मर्यादा है और जो कर्षूसमन्वित सपिंडन एकोद्दिष्ट करते हैं उनको भी कहीं २ पार्वण ही करना पड़ता है यह शंखका कथन है इसी प्रकार संन्यासियों-

तेषामपि क्वचित् पार्वणमेवेति शङ्खोक्तेः । एवं संन्यासिनोऽपि–"एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह । सपिण्डीकरणाभावात् पार्वणं तस्य सर्वदा ॥" इति प्रचेतसोक्तेः । वायवीये–"संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं हि तत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः–"संग्रामे संस्थितानां च प्रेतपक्षे शशिक्षये । तेषां पार्वणमेवोक्तं क्षयाहेऽपि च सत्तमैः ॥ चन्द्रक्षयानाशकसंयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतवान् सपिण्डः । सपिण्डितानामपि चाब्दिकानि भवन्ति तेषामिह पार्वणानि ॥ २ ॥" तथा–भ्रातुर्ज्येष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो भ्रातानुजस्य च । दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदब्रवीत् ॥" दैवहीनमेकोद्दिष्टम् । ज्येष्ठो भ्राता नाद्यगर्भजः । तथा च तत्रैव शातातपः–"अनाद्यगर्भज्येष्ठोऽपि भ्राता सद्भिर्निगद्यते । ऋते सपिण्डनात्तस्य नैव पार्वणमाचरेत् ॥" आद्यगर्भे तु पार्वणमेकोद्दिष्टं वेत्यर्थः । मातुस्तु हेमाद्रौ कात्यायनः–"प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात् पुत्रः पित्रे सदा द्विजः । तथैव मातुः कर्तव्यं पार्वणं चान्यदेव वा ॥" यत्तु तेनैवोक्तम्–"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुरेव हि पार्वणम् । पितृव्यभ्रातृमातॄणामेकोद्दिष्टं सदैव तु ॥" इति तत्सापत्नमातृपरम् । यत्तु वृद्धपराशरः–"अपु-

---

का भी जानना । यतिका त्रिदण्डग्रहणके कारण एकोद्दिष्ट नहीं होता, सपिण्डीकरण न होनेसे पार्वण ही होता है, यह प्रचेताका कथन है । वायवीयमें लिखा है कि संन्यासीका भी वार्षिक आदि श्राद्ध विधिसे पुत्र करे, महालयमें जो संन्यासीका श्राद्ध है वह द्वादशीको पार्वण करे । पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्ध पराशरका कथन है कि संग्राममें, प्रेतपक्ष वा अमावास्याको जो मृत्युको प्राप्त हुए हों उनको क्षयाहके दिन भी सज्जनोंने पार्वण ही लिखा है । अमावास्या, अनशन दिन, व्रत, प्रेतपक्ष इनमें जो सपिंड मरा हो, सपिंडी किये पीछे भी उसके पार्वणश्राद्ध क्षयाहके दिन होते हैं, इसी प्रकारसे वाक्य है कि ज्येष्ठ भाईका वार्षिक श्राद्ध भ्राता करे और छोटे भाईका ज्येष्ठ भ्राता करे । परन्तु वह विश्वेदेवाओंसे हीन (एकोदिष्ट) करे यह धर्मके ज्ञाता वर्णन करते हैं ज्येष्ठ भ्राता वही न लेना जो प्रथम गर्भसे उत्पन्न हुआ हो । वहीं वहां ही शातातपने लिखा है कि आदि गर्भसे भिन्न भी भ्राता सज्जनोंने ज्येष्ठ कहा है; सपिंडीके विना उसका पार्वण न करे, आद्य गर्भमें तो पार्वण वा एकोद्दिष्ट करना । माताका श्राद्ध तो हेमाद्रिमें कात्यायनने लिखा है कि जो ब्राह्मण प्रतिवर्ष जैसे २ अपने पिताका श्राद्ध सदा करता है, उसी प्रकार माताको भी पार्वण वा एकोद्दिष्ट करना चाहिये और जो उसने ही कहा है कि सपिंडीसे पीछे पिताका ही पार्वण करे चाचा, भ्राता और माता इनका सदैव एकोद्दिष्ट करना, सो सपत्नमाताके विषयमें है । वृद्धपरा-

त्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रो भ्रातृजो भवेत्। स एवास्य तु कुर्वीत पिण्डदानादिकां क्रियाम् ॥ पार्वणं तेन कार्यं स्यात्पुत्रवद्भ्रातृजेन तु। पितृस्थाने तु तं कृत्वा शेषं पूर्ववदुच्चरेत् ॥ २ ॥" इति। तत्पितृवद्देशाचारवद्व्यवस्थितमिति पृथ्वीचन्द्रः। श्राद्धदीपकलिकायां चतुर्विंशतिमते तु—"पितृव्यभ्रातृमातॄणां ज्येष्ठानां पार्वणं भवेत्। एकोद्दिष्टं कनिष्ठानां दंपत्योः पार्वणं मिथः ॥ अपुत्रस्य पितृव्यस्य भ्रातुश्चैवाग्रजन्मनः। मातामहस्य तत्पत्न्याः श्राद्धं पार्वणवद्भवेत् ॥ २ ॥" इत्युक्तम्। तत्पत्न्याः कर्तृत्वेऽपि पार्वणमेव। "सर्वाभावे स्वयं पत्न्याः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्। सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च ॥" इति लौगाक्षिस्मृतेः। 'ततः पत्न्यपि कुर्वीत सापिण्ड्यं पार्वणं तथा।' इति सुमन्तूक्तेश्चेति निर्णयामृते उक्तम्। अन्ये त्वेतत्पाक्षिकपार्वणपरमाहुः। अत एव—"भर्तुः श्राद्धं तु या नारी मोहात्पार्वणमाचरेत्। न तेन तृप्यते भर्ता कृत्वा तु नरकं व्रजेत्।" इति वचनं क्षयाहे पाक्षिकैकोद्दिष्टप्रशंसार्थं न पार्वणनिषेधार्थमित्युक्तं त्रिस्थलीसेतौ भट्टचरणैः। 'स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः' इत्यनेन विरोधाच्च। अपुत्राणां चाह हेमाद्रावापस्तम्बः—"अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषाश्च ये। तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥ मित्रबन्धुसापिण्डेभ्यः स्त्रीकुमारीभ्य एव च। दद्याद्वै मासिकं

शरने लिखा है कि जो चाचा अपुत्र हो तो उसके भाईको पुत्र पिण्डदान आदि क्रियाको करे और वह भ्रातृज पुत्रके तुल्य पार्वण करे और पिताके स्थानमें चाचाको कहकर शेष कर्मको पूर्ववत् करे, यह सब देशाचारकी व्यवस्थासे जानना उचित है, यह पृथ्वीचन्द्रोदयका मत है। श्राद्धदीपकलिकामें चतुर्विंशतिके मतमें तो यह लिखा है कि चाचा, भाई, भ्राता इनमें ज्येष्ठोंका पार्वण और कनिष्ठोंका एकोद्दिष्ट करना और स्त्री और पति ये परस्पर पार्वण श्राद्ध करें, पुत्रहीन पितृव्य और बड़ा भाई तथा नाना और उसकी स्त्री इनका श्राद्ध पार्वण होता है पत्नी भी पार्वण करे; कारण कि, लौगाक्षिकी स्मृति है कि, सबके न होनेमें पत्नी स्वयं अपने स्वामीका विना मन्त्र सपिण्डीकरण और पार्वण करे। सुमन्तुका भी कथन है कि, पत्नी भी सपिंडी और पार्वण करे, यही निर्णयामृतमें लिखा है और तो इस वाक्यको पाक्षिक पार्वणके विषयमें लिखते हैं, इससे त्रिस्थलीसेतुमें भट्टने लिखा है कि जो स्त्री अज्ञानसे पतिका पार्वण श्राद्ध करती है उसका पति तृप्त नहीं होता और स्वयं नरकको जाती है, यह वचन क्षयीके दिन पाक्षिक एकोद्दिष्टकी प्रशंसाके विषयमें है, पार्वणके निषेधार्थ नहीं, यह त्रिस्थलीसेतुमें भट्टचरणोंने कहा है; अपने पति आदि तीनको प्रदान करे; इस वचनके संग विरोध भी है। अपुत्रोंका श्राद्ध तो हेमाद्रिमें आपस्तम्बने लिखा है, कि स्त्री वा पुरुष जो अपुत्र मृतक हुए हैं उनको भी एकोद्दिष्ट देना, पार्वण नहीं, मित्र, बन्धु, सपिण्ड, स्त्री कुमारी इनको मासिक श्राद्ध देना और इसके अन्यथा वार्षिक श्राद्ध दे। पादि-

श्राद्धं सांवत्सरमतोऽन्यथा ॥ २ ॥" पारिजाते तु अन्यथा पार्वणमित्युक्त्वा सर्वत्र पार्वणमित्युक्तम् । एकोद्दिष्टवाक्यानि तु तीर्थमहालयपराणीत्युक्तम् । पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धगार्ग्यः–"मातुः सहोदरा या च पितुः सहभवा च या । तयोश्च नैव कुर्वीत पार्वणं पिण्डनादृते ॥" प्रचेताः–"सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ॥" अपत्नीनां ब्रह्मचार्यादीनाम् । मार्कण्डेयपुराणे–"प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः । मृताहनि यथान्यायं नृणां तद्वदिहोदितम् ॥" नृणामिति दृष्टान्ताद्गोविप्रहतपाषण्ड्यादीनां सपिण्डनाभावेऽपि सांवत्सरमेकोद्दिष्टं कार्यमेवेति शूलपाणिः । अत्रिवृद्धवसिष्ठौ–"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते । भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ॥ पितृव्यगुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥" यत्तु जातूकर्ण्यः–"पितृव्यभ्रातृमातॄणामपुत्राणां तथैव च । मातामहस्यासुतस्य श्राद्धादि पितृवद्भवेत् ॥" इति तदावश्यकत्वार्थं, न तु पार्वणार्थमिति हेमाद्रिः । युक्तं त्वेवम् । "मातुः पितरमारभ्य त्रयो मातामहाः स्मृताः । तेषां तु पितृवच्छ्राद्धं कुर्युर्दुहितृसूनवः ॥" इति पुलस्त्योक्तेर्मातामहस्य पार्वणमेव । तत्साहचर्यात् पितृव्यादौ तथा । 'पितृव्यभ्रातृमातॄणामेकोद्दिष्टं च पार्वणम् ।' इति क्षयाहोक्तोपक्रमे पुलस्त्योक्तेश्च विकल्पः । केचित्त्वापस्तम्बादिवाक्यानि–' व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव

जातमें तो 'अन्यथा पार्वण करे' यह कहकर सर्वत्र पार्वण करना कहा है, एकोद्दिष्टके वाक्य तो तीर्थके महालयमें कहे हैं । पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्ध गार्ग्यका कथन है कि माता और पिताकी जो सहोदर बहन है, उनका सपिण्डीके विना पार्वण न करे । प्रचेताने लिखा है कि सम्पूर्ण पुत्रहीनोंका और ब्रह्मचारियोंका सपिंडीकरणके बाद एकोद्दिष्ट करना चाहिये । मार्कण्डेयपुराणमें कहा है कि स्त्रीका प्रतिवार्षिक एकोद्दिष्ट मनुष्योंके तुल्य करे, यहां मनुष्योंके तुल्य यह दृष्टांत होनेसे गौ ब्राह्मणसे हत और पाखण्डी आदिकोंका सपिण्डीके न होनेमें भी वार्षिक एकोद्दिष्ट करना, यह शूलपाणिका मत है । अत्रि और वृद्धवसिष्ठने कहा है कि सपिंडीकरणके पीछे जहां कहीं भाई, बहन, पुत्र, स्वामी, मामा, चाचा और गुरुका एकोद्दिष्ट ही होता है, पार्वण नहीं । जो जातूकर्ण्य कहते हैं कि पिता, भाई, माता, अपुत्रोंका और अपुत्र मातामहका श्राद्ध आदि कर्म पितावत् होते हैं, यह आवश्यकताके निमित्त है पार्वणके निमित्त नहीं, यह हेमाद्रिका मत है । युक्त तो ऐसा है कि, माताके पितासे लेकर तीन मातामह कहे हैं, उनका श्राद्ध पुत्रीका पुत्र पिताके समान करे, इस पुलस्त्यके वाक्यसे मातामहका श्राद्ध और उसके सम्बन्धसे पितृव्य आदिका पार्वण ही होता है । चाचा, भाई तथा माताका एकोद्दिष्ट और पार्वण श्राद्ध करे, यह क्षयाहके प्रकरणमें पुलस्त्यके वाक्यसे विकल्प लिखा है । कोई तो यह कहते हैं कि, आपस्तम्ब आदिके

कार्या सपिण्डता ।' इत्यस्य पितृव्यादिपरत्वादकृतसपिण्डनपितृव्यादिपराणी-त्याहुः । माता सपत्नमाता । एकोद्दिष्टं तु कनिष्ठपरमिति । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । विशेषस्त्वधिकारिनिर्णये प्रागुक्तः । केचित् पुत्रान्तराभावेऽपि पितामहवार्षिकमप्यावश्यकम् । "पुत्राभावे च तत्पुत्राः पत्नी माता तथा पिता । वित्ताभावेऽपि सच्छिष्यः कुर्यात्तस्यौर्ध्वदैहिकम् ॥" इति मार्कण्डेयपुराणादित्याहु-स्तन्न । 'पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ।' इति कातीये विशेषोक्तेः ॥ अथ क्षयाहद्वैधे निर्णयः । तत्रैकोद्दिष्टं मध्याह्ने कार्यम् । मध्याह्नश्च पञ्चधाविभक्त-दिनतृतीयभाग इति माधवः । "आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं तु मध्यमे । पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥" इति हारीतोक्तौ प्रातःशब्दसाहचर्यात् । तत्रापि कुतपादिषु[1] मुहूर्तद्वितये ज्ञेयम् । "प्रारभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादा-रौहिणं बुधः । विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लंघयेत् ॥" इति गौतमोक्ते-रेतत्परत्वात् । रौहिणो नवमो मुहूर्तः । मैथिलाः श्राद्धकौमुदी चैवम् । अन्यथा-"ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् । मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभवनमिष्य-

---

वाक्य उन पितृव्य आदिके विषयमें है जिनकी सपिंडी न हुई हो; कारण कि जो क्रमसे नहीं मरें उनकी सपिंडी न करनी चाहिये; यह वाक्य पितृव्य आदिके विषयमें है, मातासे माताकी सपत्नी लेनी, एकोद्दिष्ट तो कनिष्ठके निमित्त है । पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसी प्रकार लिखा है, विशेष तो अधिकारियोंके निर्णयमें लिख आये हैं । कोई तो यह कहते हैं कि और पुत्र न हो तो पितामहका भी वार्षिक श्राद्ध आवश्यक है; कारण कि मार्कण्डेयपुराणमें वचन है कि पुत्रके अभावमें पौत्र, पत्नी, माता, पिता और शिष्य ये धनके अभावमें भी उसका और्ध्वदैहिक श्राद्ध करें, सो उचित नहीं; कारण कि कातीयमें यह विशेष लिखा है कि पौत्र एकादशाह आदि षोडश १६ श्राद्ध करे । अब क्षयाहके दो होनेपर निर्णय करते हैं उनमें एकोद्दिष्ट तो मध्याह्न[2] कालमें करना और मध्याह्न तो माधवने पांच भागमें बटे दिनमें तीसरा भाग कहा है । आमश्राद्ध पूर्वाह्णमें करना, एकोद्दिष्ट मध्याह्नमें, पार्वण अपराह्णमें और वृद्धिश्राद्ध प्रातःकाल करना, इस हारीतके कथनमें प्रातःशब्दके सम्बन्धसे तीसरे भागको मध्याह्न कहते हैं, वह भी कुतप आदि दो मुहूर्तोंमें स्वीकार करना, कारण कि इस गौतमके वाक्यसे यही संगत है कि कुतपमें श्राद्धका प्रारम्भ करके रौहिण पर्यंत करे और रौहिणका उल्लंघन न करे, नवम मुहूर्तको रौहिण कहते हैं, मैथिल श्राद्धकौमुदीमें भी ऐसे ही लिखा है, अन्यथा इत्यादि वाक्योंका विरोध होगा कि कुतप मुहूर्तसे पीछे जो चार मुहूर्त हैं, ये पांच मुहूर्त स्वधाके

---

१ 'मध्याह्नात्पूर्वोत्तरदण्डद्वयात्मको मुहूर्तरूपः कालः कुतपः' मध्याह्नके पहिले और पीछे दो दण्डको 'कुतप' कहते हैं ।

२ जिसमें सूर्य उदय हो वह तिथि देवकार्यमें जाननी, जिसमें सूर्यास्त हो वह पितृकार्यमें श्रेष्ठ है, एकोद्दिष्टमें मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये ।

ते ।" इत्यादिविरोधात् । दीपिकापि-'एकोद्दिष्टमुपक्रमेत कुतपे' इति । माधवीये व्यासोऽपि-"कुतपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् । आवर्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । तेन कुतपादिरौहिणान्तो मुख्यः कालः । दिनद्वये तद्व्याप्तौ समव्याप्तौ च पूर्वा । विषमव्याप्तावाधिक्येन निर्णयः ।अव्याप्तौ पूर्वैव, परविद्धाया निषेधात् । सा च पूर्वदिने रौहिणलंघनापत्तेः परैवेति गौडाः । शुक्लकृष्णवशात्खर्वदर्पाद्यैर्वा व्यवस्थेत्यन्ये । तन्न । परविद्धानिषेधप्राबल्यात् । अत्र मूलं कालमाधवीये ज्ञेयम् । पार्वणं त्वपराह्णे कार्यं पूर्वोक्तवचनात् । "मध्याह्नव्यापिनी या स्यात्सैकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत् । अपराह्णव्यापिनी या पार्वणे सा तिथिर्भवेत् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धगौतमोक्तेश्च । पूर्वेद्युरेव परेद्युरेव वाऽपराह्णव्याप्तौ सैव ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदस्पर्शेंऽशतः समव्याप्तौ वा पूर्वैव । विषमव्याप्तौ त्वधिका ग्राह्या । "द्व्यपराह्णव्यापिनी स्यादाब्दिकस्य यदा तिथिः । महती यत्र तद्विद्धां प्रशंसन्ति महर्षयः ॥" इति मरीचिस्मृतेः । "दर्शं च पूर्णमासं च पितुः सांवत्सरं दिनम् । पूर्वविद्धामकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥" इत्यपरार्के नारदोक्तेः । "द्व्यहेऽप्यव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य

भवन स्वीकार किये हैं । दीपिकामें भी एकोद्दिष्टके प्रकरणमें कहा है कि एकोद्दिष्ट कुतपमें होता है। माधवीयमें व्यासका कथन है कि निश्चलमन मनुष्य आवर्तनके समीप कुतपके प्रथम भागमें एकोद्दिष्टका आरम्भ करे, इससे कुतप आदि रौहिणपर्यन्त मुख्य समय है, पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसी प्रकार कथन किया है। दोनों दिन तिथि तुल्य हो वा समव्याप्ति हो तो पहली तिथि लेनी और न्यूनाधिक हो तो जिस दिन अधिक हो उसी दिन लेनी और दोनों दिन कुतपमें न हो तो प्रथम लेनी; कारण कि परविद्धाका निषेध है, वह यदि पूर्वदिनमें ग्रहण होगा तो रौहिण कालका लंघन होगा इससे अगली लेनी, यह गौडोंका मत है। शुक्ल और कृष्णके वशसे खर्व दर्प आदिसे व्यवस्था जाननी चाहिये; यह अन्य कहते हैं, सो ठीक नहीं; कारण कि परविद्धाका निषेध बड़ा प्रबल है । इसका मूल कालमाधवीयमें लिखा है । पार्वण तो पूर्वोक्त वाक्यसे अपराह्णमें करना चाहिये और पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धगौतमका वाक्य है, एकोद्दिष्टमें वह तिथि होती है जो मध्याह्नव्यापिनी हो और पार्वणमें वह होती है जो अपराह्णव्यापिनी हो, जो पहले दिन हो वा परले दिन अपराह्णव्यापिनी हो तो वही लेनी, दोनों दिन अपराह्णमें हो और एक दिन किसी अंशमें तिथिका स्पर्श न होता हो वा समान व्याप्ति हो तो प्रथम लेनी और न्यूनाधिक व्याप्ति हो तो जिस दिन अधिक हो उसी दिन लेनी, कारण कि मरीचिका कथन है कि वार्षिक श्राद्धकी अपराह्णव्यापिनी तिथि जिस दिन अधिक हो उस अधिक विद्धातिथिकी ही महर्षि प्रशंसा करते हैं । अपरार्कमें नारदका कथन है कि, अमा-

यदा तिथिः । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या त्रिमुहूर्ता भवेद्यदि ॥" इति सुमन्तूक्तेः । 'पूर्वस्यां निर्वपेत्पिण्डान् ' इत्याङ्गिरसभाषितम्, इति हेमाद्रौ पाठः । तत्रैव वृद्धमनुः-"न द्व्यहव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य च या तिथिः । पूर्वविद्धैव कर्तव्या त्रिमुहूर्ता च या भवेत् ॥" मदनरत्नेऽप्येवम् । यत्तु कार्ष्णाजिनिव्यासौ-"अह्नोऽस्तमयवेलायां कलामात्रा यदा तिथिः । सैव प्रत्याब्दिके ज्ञेया नापरा पुत्रहानिदा ॥" इति त्रिमुहूर्तस्तुतिः । पूर्वेद्युः सायं त्रिमुहूर्ताभावे तु परैव-'त्रिमुहूर्ता न चेद् ग्राह्या परैव कुतपे हि सा' इति कालादर्शे गोभिलोक्तेः । कालादर्शेऽपि-"प्रत्याब्दिकेऽप्येवमेव तिथिर्ग्राह्यापराह्णिकी । उभयत्र तथात्वे तु महत्त्वेन विनिर्णयः ॥ समत्वे पूर्वविद्धैव ह्यतथात्वेऽपि सा यदि । त्रिमुहूर्ता भवेत्सायं सर्वेष्टोऽयं विनिर्णयः ॥ २ ॥" अन्यत्रापि-"सायंतन्यपरत्र चेन्मृततिथिः सैवाब्दिके मासिके ग्राह्या सा द्व्यपराह्णयोर्यदि तदा यत्राधिका सा मता । तुल्या चेदुभयापराह्णसमये पूर्वा न चेत्तु द्वये पूर्वैव त्रिमुहूर्तगास्तसमये नो चेत्परैवोचिता ॥" माधवपृथ्वीचन्द्रौ तु-दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्तौ अंशतः समव्याप्तौ च क्षये पूर्वा वृद्धौ परा ।

वस्या पूर्णमासी पिताका वार्षिक दिन इनको जो पूर्वविद्धामें नहीं करता वह नरकको जाता है, दोनों दिन् क्षयाहकी तिथि मध्याह्नव्यापिनी न हो तो यदि तीन मुहूर्त भी हो तो पूर्वविद्धामें ही करनी चाहिये, यह सुमन्तुने लिखा है । हेमाद्रिका तो यह पाठ है कि पहली तिथिमें पिंड देना, यह आंगिरसने लिखा है । वहां ही वृद्धमनुका वाक्य है कि दोनों दिन भी क्षयाहकी तिथि न हो तो पूर्वविद्धा करनी चाहिये । मदनरत्नमें भी ऐसा ही लिखा है कि जो कार्ष्णाजिनि और व्यासने कहा है कि सूर्य अस्त होनेके समय जो तिथि कलामात्र भी हो वही वार्षिकमें लेनी चाहिये; पुत्रहानिकी दाता प्रथम न लेनी, यह तीन मुहूर्तकी स्तुति की है । पहले दिन सायंकालको तीन मुहूर्त न हो तो दूसरी ही लेनी, कारण कि कालादर्शमें गोभिलने कहा है कि तीन मुहूर्त न हों तो अगले दिन कुतपमें ही वह तिथि लेनी । कालादर्शमें भी कहा है कि वार्षिकमें भी इसी प्रकार अपराह्णकी तिथि लेनी चाहिये; दोनों दिन अपराह्णमें हो तो जो अधिक हो वही ग्राह्य है और समान हो तो पूर्वविद्धा करे, और तुल्य न हो तो उसी दिन करे, जिस दिन वह सायंकालको तीन मुहूर्तमें हो । और स्थानमें लिखा है कि जो परदिनमें सायंकाल मृतककी तिथि हो तो वही वार्षिक और मासिकमें ग्रहण करनी । यदि वह दोनों दिन अपराह्णमें हो तो जिस दिन अधिक हो तो वही ग्रहण करे, यदि अपराह्णके समय दोनों दिन समान हो तो पहली लेनी । दोनों दिन अपराह्णमें न हो तो वही पहली लेनी जो सूर्यास्तके समय तीन मुहूर्त हो । वह भी न हो तो अगली ही लेनी उचित है । माधव पृथ्वीचन्द्रोदय तो यह लिखते हैं कि दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी हो अथवा समान-व्यापिनी हो तो क्षयाहमें पहली और वृद्धिमें पिछली लेनी । क्योंकि क्षय तथा वृद्धिमें क्रमसे

'खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ' इत्युक्तेः । "अपराह्णद्वयव्यापिन्यतीतस्य च या तिथिः । क्षये पूर्वा च कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ।" इति बौधायनोक्तेः । "क्षयाहस्य तिथिर्या तु अपराह्णद्वये यदि । पूर्वा क्षये तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥" इति बृहन्नारदीयाच्चेत्याहतुः । वृद्धिक्षयौ चात्र परतिथेः । न तु ग्राह्यतिथेः । तस्याः क्षयेऽपराह्णद्वयव्याप्तेरसंभवात् । तदाह माधवः—'न ग्राह्यतिथिगौ वृद्धिक्षयावूर्ध्वं तिथेस्तु तौ ।" इति । यत्तु पृथ्वीचन्द्रः—'पूर्वोक्तवचनेषु यत्र सायाह्नास्तमययोगिनी तिथिरुक्ता तत्रापराह्णव्यापिनी ज्ञेया' । 'सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यात्तत्र श्राद्धं न कारयेत् ।' इति मात्स्यादौ सायाह्ननिषेधात् । यच्च—'त्रिमुहूर्तादिग्रहणं तच्छ्राद्धार्हापराह्णरूपत्रिमुहूर्तपरम्' इत्याह । तद्धेमाद्रिमदनरत्नकालादर्शादिग्रन्थविरोधाल्लक्षणापत्तेश्च चिन्त्यम् । तस्मात् पूर्वोक्तमेव साधु । यदा विघ्नवशाद्दिने सांवत्सरश्राद्धं न कृतं तदा रात्रावपि कार्यम् । 'मृताहं समतिक्रम्य चण्डालेष्वभिजायते ।' इति मरीचिना मृताहातिक्रमे दोषोक्तेः । 'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे वा भोजनसमापनम्' इत्यापस्तम्बेन गौणकालोक्तेश्चेति माधवः । आरब्धे श्राद्धे विघ्नवशाद्रात्रिभागे पाते भोजनसमाप्त्यन्ते रात्रौ कार्यम् । शेषसमाप्तिः परदिन एवेति हरदत्तः । ग्रहणदिने वार्षिकप्राप्तौ तद्दिन एवान्नेनामेन हेम्ना वा कुर्यात् । नोत्तरदिने इत्युक्तं प्राक्

पहली और पिछली तिथि लेनी ऐसा कहा है । बौधायन और बृहन्नारदीयका भी यह सिद्धान्त है कि यदि क्षयाहकी तिथि दोनों अपराह्णमें हो तो क्षयमें पहली और वृद्धिमें अगली लेनी, और यहां तिथिके वृद्धि और क्षय परतिथिके लेने, ग्राह्य तिथिके नहीं । कारण कि उसके क्षयमें दोनोंका अपराह्णमें होना नहीं हो सकता है । यही माधवने लिखा है कि ग्राह्यतिथिके वृद्धि, क्षय नहीं लेने, ऊर्ध्वतिथिके ग्रहण करने । और जो पृथ्वीचन्द्रोदयने यह लिखा है कि पूर्वोक्त वचनोंमें जहां सूर्यास्तके समयकी तिथि लिखी है वहां अपराह्णव्यापिनी जाननी चाहिये । कारण कि सायाह्न तीन मुहूर्तका होता है, उसमें श्राद्ध न करे, ऐसा मत्स्यादिकोंके वाक्यसे सायाह्नमें श्राद्धका निषेध है और जो तीन मुहूर्तका ग्रहण कहा है वह श्राद्धके योग्य अपराह्णरूप तीन मुहूर्तका कथन करता है, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखा है वह हेमाद्रि मदनरत्न कालादर्श आदि ग्रन्थोंके विरोधसे और लक्षणा माननेसे विचारणीय है । इससे पूर्वोक्त ही श्रेष्ठ है । जब कोई विघ्नसे दिनमें श्राद्ध न किया हो तब तो रात्रिमें भी करलेना । कारण कि, मरीचिने उसके अवलंबनमें दोष लिखा है कि मरणका दिन उल्लंघन करके चाण्डालोंमें उत्पन्न होता है और आपस्तम्बने यह गौणकाल लिखा है कि रात्रिमें श्राद्ध न करे, और प्रारम्भ कर दिया हो तो भोजनकी समाप्तितक करे यह माधवका मत है । यदि प्रारम्भ किये श्राद्धमें विघ्नवश रात्रि आ जाय तो भोजनकी समाप्तितक करे, शेषकी समाप्ति परदिनमें करनी, यह हरदत्तका मत है । ग्रहणके दिन वार्षिक आ जाय तो उस दिन आम अन्नसे वा सुवर्णसे श्राद्ध करना, परदिनमें

ग्रहणनिर्णये। तच्च प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे कार्यम् । अन्यथा न । "प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैः। क्वचित् त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम् ॥" इति लघुहारीतोक्तेः। इदमन्त्याधिकमासपरम्। द्वादशे त्रयोदशे वातीत इत्यर्थः। तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेऽधिके एवाब्दिकं कार्यम्। यत्राधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धे एव प्रथमाब्दिकमिति माधवीये। हेमाद्रौ चैवम्। द्वितीयाब्दिकं तु शुद्धमासे एव नाधिके, नाप्युभयोः। मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यमन्यथा शुद्ध एवेति प्रागुक्तम्। दर्शे वार्षिकं चेत्तदा पूर्वं वार्षिकं कृत्वा ततः पिण्डपितृयज्ञो दर्शश्राद्धं चेति निर्णयदीपे क्रम उक्तः। स्मृतिसारेऽपि-"दर्शे क्षयाहे संप्राप्ते कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः। आदौ क्षयाहं निर्वर्त्य पश्चाद्दर्शो विधीयते॥" इति। युक्तं त्वेवम्। तद्वचने मूलाभावात् 'पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः।' इति दर्शश्राद्धे पिण्डपितृयज्ञानन्तर्यात्तस्याब्दिकेऽप्यतिदेशात् प्राप्तेः। पितृयज्ञानन्तरं वार्षिकं ततो दर्शश्राद्धम् इति व्यतिषङ्गस्तु न भवत्येव। तस्यार्थिकत्वात्।

न करे, यह पहले कह आये हैं, वह प्रथम वार्षिक श्राद्ध त्रयोदश मलमासमें करना और प्रकारसे नहीं; कारण कि लघुहारीतका कथन है कि प्रतिवर्ष वार्षिक श्राद्धमें पुत्र द्वादश मासमें पिंडदान करे और प्रथम वार्षिकको छोड़कर कहीं त्रयोदश मासमें भी करे। यह भी तब है जब अन्तका अधिक मास हो, अर्थात् बारहवां वा तेरहवां महीना बीत जाय, इससे जहां बारह महीनेका श्राद्ध शुद्ध मासमें हो वहां अधिक त्रयोदश महीनेमें ही दो आदि वर्षोंका श्राद्ध करे, जहां अधिकके मध्यमें वार्षिक हो वहां उसकी द्विरावृत्ति करके शुद्ध चौदहवें मासमें ही प्रथम वार्षिक करे, यह माधवीयमें लिखा है और हेमाद्रिमें भी ऐसे ही लिखा है। दूसरे वार्षिक आदि तो शुद्ध महीनेमें ही होते हैं अधिकमें नहीं और न दोनोंका। मलमासमें जो मरे हैं उनका जो वही अधिकमास हो तब उसमें करना, अन्यथा शुद्धमें; यह पहले कथन कर आये हैं। अमावस्यामें वार्षिक हो तो पहला वार्षिक करके फिर पिंडपितृयज्ञ और अमावसको श्राद्ध करे, यह निर्णयदीपमें क्रम लिखा है। स्मृतिसारमें भी यही लिखा है कि अमावस्यामें क्षयाह आ पडे तो याज्ञिक कैसे करते हैं ? पहले क्षयाह करके पीछेसे अमावस्या श्राद्ध करना लिखा है। युक्त तो यह है कि उस वाक्यमें मूलके अभावसे फिर पिण्डयज्ञ करना, फिर बुद्धिमान् मनुष्य अन्वाहार्यक करे; इस वाक्यसे दर्शके श्राद्धमें पिंडपितृयज्ञके आनन्तर्यसे वार्षिकमें भी अतिदेश प्राप्त होगा, पितृयज्ञके उपरान्त वार्षिक फिर दर्शश्राद्ध यह व्यतिषंग तो नहीं होता; कारण कि वह कर्मसिद्ध

कालादर्शेऽपि–' निमित्तानियतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ।' इति । सर्वान्न प्रत्यैकरूप्याभावात् क्षयाहनिमित्तस्यानियतत्वम् । देवजानीयेऽप्येवम् । एवं मासिकादिष्वपि ज्ञेयम् । ' प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ।' इति सर्वातिदेशात् । मृताहे वृषोत्सर्ग उक्तो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे– "अयनद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च । उत्सृजेन्नीलवृषभं कौमुद्याः समुपागमे॥" कौमुदी कार्त्तिकी । अथ शुद्धिश्राद्धम् । दिवोदासीये–" सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यावदब्दत्रयं भवेत् । तावदेव न भोक्तव्यं क्षयेऽहनि कदाचन ॥" वर्षान्तसपिण्डनेऽप्येतत्तुल्यम् ।" मृताहनि तु सम्प्राप्ते यावदब्दचतुष्टयम् । बहिः श्राद्धं प्रकुर्वीत न कुर्याच्छ्राद्धभोजनम् ॥ प्रथमेऽस्थीनि मज्जा च द्वितीये मांसभक्षणम् । तृतीये रुधिरं प्रोक्तं श्राद्धं शुद्धं चतुर्थके ॥ २ ॥ " इति श्राद्धकारिकोक्तेः । शुद्धं किंचिदिति ज्ञेयम् । स्मृत्यन्तरे–" सप्तत्रिंशच्च यो मासान् श्राद्धे भुङ्क्ते तमोहतः । स पंक्तिदूषितः पापः प्रेताशी च भवेत्तु सः ॥" तत्र प्रथमेऽब्दे वर्षान्तसपिण्डनपक्षे मृताहात्पूर्वेऽह्नि सपिण्डनमब्दपूर्तिश्राद्धं च कृत्वा परेद्युर्वार्षिकं कुर्यात् । इति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् । हेमाद्रिस्तु मृताहे सपिण्डीकरणेनैव वार्षिकसिद्धिः । " पूर्णे संवत्सरे पिण्डः षोडशः परिकीर्तितः । तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दि-

---

है । कालादर्शमें भी लिखा है कि इसमें निमित्तका नियम नहीं है पूर्वकर्मका करना ही कारण है, सबके निमित्त एकरूपताके अभावसे क्षयाहनिमित्तक श्राद्ध नियत नहीं, देवजानीयमें भी ऐसे ही लिखा है । इसी प्रकार मासिक आदिमें भी जानना; कारण कि ये सबके निमित्त अतिदेश है कि मनुष्य जैसे प्रतिवर्ष वार्षिक करे वैसे ही महीनोंको भी करे । मरण दिनमें हेमाद्रिके विष्णुधर्ममें वृषोत्सर्ग लिखा है कि दोनों अयन और बान्धवका मरणदिन इनमें और कार्त्तिककी पूर्णिमाको नीलवृष त्यागे । अब शुद्धिश्राद्ध लिखते हैं–दिवोदासीयमें भी लिखा है कि सपिंडीके पीछे जबतक तीन वर्ष पूर्ण न हों तबतक क्षयाहमें कभी भोजन न करे, वर्षके अन्तमें सपिंडी हो तो भी यह तुल्य है । मरणके दिनमें जबतक चार वर्ष हों तबतक बहिःश्राद्ध (जंगलमें) करे, श्राद्धभोजन न करे, क्योंकि प्रथमवर्षमें अस्थि और चरबी, दूसरेमें मांस, तीसरेमें रुधिरका भोजन लिखा है, चौथा वार्षिक कुछ शुद्ध होता है; यह श्राद्धकारिकामें लिखा है । स्मृत्यन्तरमें कहा है, सैंतीस मास पर्यन्त जो अज्ञानी मनुष्य वार्षिक श्राद्धका भोजन करता है वह पापी, पंक्तिदूषक और प्रेतान्न खानेवाला होता है । वहां जब पहले वर्षमें वर्षके अन्तमें सपिंडी करे यह पक्ष है तब मरणदिनसे पहले दिन सपिंडीकरण और वर्षपूर्त्तिका श्राद्ध करके अगले दिन वार्षिक करे, यह स्मृत्यर्थसारमें लिखा है । हेमाद्रिने तो यह लिखा है कि मरनेके दिन सपिंडी करनेसे ही वार्षिककी सिद्धि है; कारण कि यह वाक्य है कि पूरे वर्षमें सोलहवां पिण्ड लिखा है उसीसे सपिण्डी और वार्षिक दोनों इष्ट हैं और

कमिष्यते ॥" इति वचनादित्याह । इदमेव युक्तम् । अथ क्षयाहाज्ञाने निर्णयः । मरीचिः-"श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेऽहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥" इत्युक्तेः शुक्लैकादश्यामपि । बृहस्पतिः-" न ज्ञायते मृताहश्चेत्प्रमीते प्रोषिते सति । मासश्चेत्प्रतिविज्ञातस्तद्दर्शे स्यादथाब्दिकम् ॥ दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः । प्रस्थानमासदिवसौ ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा ॥२॥" मदनरत्ने भविष्ये-"मृताहं यो न जानाति मानवो विनतात्मज । तेन कार्यममायां तु श्राद्धं सांवत्सरं सदा ॥ दिनमेव तु जानाति मासं नैव तु यो नरः । मार्गशीर्षे तथा भाद्रे माघे वा तद्दिनं भवेत् ॥ २ ॥" निर्णयामृते तु-" यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव तु । तदा चाषाढके मासि माघे वा तद्दिनं भवेत् ॥" इति बृहस्पतिस्मृतेराषाढोऽप्युक्तः । कालादर्शेऽपि-'मासाज्ञाने दिनज्ञाने कार्यमाषाढमाघयोः ।' इत्युक्तम् । हेमाद्रौ प्रभासखण्डे-" मृताहं यो न जानाति मासं वापि कथंचन । तेन कार्यममायां वै श्राद्धं माघेऽथ मार्गके ॥" भविष्ये-'मृतवार्ताश्रुतेर्ग्राह्यौ तौ पूर्वोक्तक्रमेण तु ।' पूर्वोक्तेति प्रस्थानदिनाज्ञाने मासज्ञाने च तद्दर्शे मासाज्ञाने दिनज्ञाने च मार्गादावितिवच्छ्रवणदिनेऽपि ज्ञेयमित्यर्थः । श्रवणदिनमासाज्ञाने माघमार्गदर्शे कार्यं पूर्वोक्तप्रभासखण्डात् । अतोऽत्र लोप इति

यही उचित है । अब क्षयाहके अज्ञानमें निर्णय लिखते हैं-मरीचिका कथन है कि श्राद्धमें विघ्न हो जाय और मरणदिनका ज्ञान न रहे तो विशेषकर कृष्णपक्षकी एकादशीको करे, 'विशेषकर' यह कहनेसे शुक्लपक्षमें भी करे । बृहस्पतिका कथन है कि यदि परदेशमें मरा हो इससे मरणदिनका ज्ञान न हो और मासका ज्ञान हो तो उस महीनेकी अमावस्याको वार्षिक होता है, यदि मरनेके दिन और महीना इन दोनोंका ज्ञान न हो तो गमनका महीना और दिन ये दोनों पूर्वोक्त दिशासे लेने । मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि हे गरुड ! जो मनुष्य मरणदिनको न जाने वह सदा अमावस्याको वार्षिक श्राद्ध करे और यदि केवल दिन जानता हो महीना न जानता हो तो मार्गशिर, भाद्रपद वा माघमें उसी दिन करे । निर्णयामृतमें तो जो महीनेको न जाने और दिनको जाने तब आषाढ और माघमें वह दिन होता है इस बृहस्पतिकी स्मृतिसे आषाढ भी लिखा है । कालादर्शमें भी महीनेके अज्ञानमें और दिनके ज्ञानमें आषाढ और माघमें कहा है । हेमाद्रिके प्रभासखण्डमें लिखा है कि जो मरणदिनको वा महीनेको कथंचित् न जाने वह माघ वा मार्गशिरकी अमावस्याको करे । भविष्यपुराणमें लिखा है कि, पूर्वोक्त क्रमसे दिन और महीनेके मरनेकी बात सुननेसे लेने । पूर्वोक्त कहनेसे यह आशय है कि, प्रस्थान दिनका ज्ञान न हो तो मार्गशिर आदिमें करे, यह सब श्रवणदिनमें भी जानना चाहिये । सुननेका दिन और महीनेका ज्ञान न हो तो माघ और मार्गशिरकी अमावस्याको पूर्वोक्त प्रभासखण्डके वाक्यसे करना उचित है

शूलपाण्युक्तं हेयम् । तिथितत्त्वे यमः—"गतस्य न भवेद्वार्ता यावद्द्वादशवार्षिकी । प्रेतावधारणं तस्य कर्तव्यं सुतबान्धवैः ॥ यन्मासि यदहर्यातस्तन्मासि तदहः-क्रिया । दिनाज्ञाने कुहूस्तस्य आषाढस्याथवा कुहूः ॥ २ ॥" अथ श्राद्धविघ्ने निर्णयः । तत्र विप्रस्य निमन्त्रणोत्तरं सूतके मृतके चाशौचाभावः । "निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि । निमन्त्रणाद्धि विप्रस्य स्वाध्यायादिरतस्य च ॥ देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥" इति ब्राह्मोक्तेः । कर्तुस्तु विष्णुराह—"व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥" श्राद्धे प्रारम्भस्तेनैवोक्तः ॥ "प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥" इति । माधवीये ब्राह्मेऽपि—"श्राद्धादौ पितृयज्ञे च कन्यादाने च नो भवेत् ॥" मिताक्षरायाम् स्मृत्यन्तरे—सद्यः शौचं प्रकृत्य—'यज्ञे सम्भृतसम्भारे विवाहे श्राद्धकर्मणि ।' इति । तिथितत्त्वादिगौडग्रन्थास्तु निमन्त्रणोत्तरं कर्तुर्भोक्तुश्च नाशौचम् । 'निमन्त्रणोत्तरं श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति स्मृतिः ।' इति विष्णूक्तेः । यत्तु—'श्राद्धे पाकपरिक्रिया' इति । तद्दर्श-

---

इससे ऐसे विषयमें जो श्राद्धका लोप (न करना) शूलपाणिने लिखा है वह त्यागने योग्य है । तिथितत्त्वमें यमका वाक्य है कि जब गये हुएकी बारह वर्षतक बात न सुनी जाय तो पुत्र और बांधव उसके मरनेका निश्चय कर ले, जिस महीने और जिस दिनमें वह गया हो उस दिन और उसी महीनेमें उसकी क्रिया करनी, दिनका ज्ञान न हो तो अमावस्या वा आषाढकी अमावस्याको करे । अब श्राद्धके विघ्नमें निर्णय कथन करते हैं उसमें ब्राह्मणके निमंत्रणके पीछे जन्म वा मरणके अशौचका अभाव कहा है; कारण कि ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि निमंत्रित ब्राह्मणोंके पीछे श्राद्धकर्मका प्रारम्भ हो गया हो और ब्राह्मणोंके देहमें पितर स्थित हों तो उस ब्राह्मणको निमंत्रणसे अशौच नहीं होता, जो वेदपाठ और गायत्री आदिमें तत्पर हो । श्राद्धकर्ताके निमित्त तो विष्णुने यह कहा है कि व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, जप इनका प्रारम्भ हो गया तो सूतक नहीं लगता और प्रारम्भ न हुआ हो तो सूतक लगता है, प्रारम्भमें विष्णुने ही यह लिखा है कि यज्ञका प्रारम्भ ब्राह्मणोंका वरण, व्रत और सत्रका संकल्प, विवाह आदिका नान्दीमुख और श्राद्धका प्रारम्भ पाकका करना है । माधवीयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि श्राद्ध आदि, पितृयज्ञ और कन्यादानमें सूतक नहीं होता । मिताक्षरामें तत्काल शौचके प्रकरणमें स्मृत्यंतरका वाक्य है कि सामग्री इकट्ठी होनेपर यज्ञमें, विवाह और श्राद्धकर्ममें उसी समय शुद्धि होती है । तिथितत्त्व आदि गौडग्रन्थोंमें तो यह लिखा है कि निमन्त्रणके पीछे कर्त्ता और भोक्ता दोनोंको अशौच नहीं होता; कारण कि विष्णुका वाक्य है कि निमन्त्रणके पीछे श्राद्धका प्रारम्भ होता है यह स्मृति है और जो श्राद्धमें पाकक्रियाका प्रारम्भ लिखा है वह अमावस्याके श्राद्धमें है, ऐसा कोई कहते हैं । यदि

श्राद्धविषयमित्याहुः । दातृगृहे मरणादौ ब्राह्मे उक्तम्–'भोजनार्द्धे तु संभुक्ते विप्रैर्दातुर्विपद्यते । ' गृहे इति शेषः । " यदा कश्चित्तदोच्छिष्टं शेषं त्यक्त्वा समाहितः । आचम्य परकीयेन जलेन शुचयो द्विजाः ॥" इति । अस्य श्राद्धविषयत्वं हेमाद्रिणोक्तम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । मम तु प्रतिभातीदं विवाहादिविषयं न तु श्राद्धविषयं तत्पदाभावात् । ' विवाहोत्सवयज्ञेषु ' इत्युपक्रम्य–" भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके। अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः ॥" इति षट्त्रिंशन्मतैकवाक्यत्वात् ।" निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि ।" इति पूर्वोक्तविरोधाच्च । श्राद्धे तु यद्यपि विष्णुना पाकोत्तरमाशौचाभाव उक्तः, तथापि कर्तुरेव सः, भोक्तुर्दोषोऽस्त्येव । "अपि दातृग्रहीत्रोश्च सूतके मृतके तथा । अविज्ञाने न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथंचन । विज्ञाने भोक्तुरेव स्यात् प्रायश्चित्तादिकं क्रमात् ॥" इति माधवीयब्राह्मोक्तेः । आदिशब्देनाशौचमुच्यते । तत्राह विष्णुः– 'ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचम् ।' यावत्तेषामाशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात् ।' इति । यत्तु 'देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित् ।' इति ब्राह्मं, तत् श्राद्धकालीनस्य निषेधकम् । न तदुत्तरकालीनस्य ।

दाताके घरमें मृत्यु आदि हो जाय तो ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि यदि ब्राह्मणने आधा भोजन कर लिया हो और दाताके घरमें कोई मृत्युको प्राप्त हो तो शेष उच्छिष्टको त्यागकर किसी औरके जलसे आचमन करके पवित्र होते हैं, हेमाद्रिने इस वाक्यको श्राद्धके विषयमें लिखा है और पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी ऐसा ही लिखा है, मुझे तो यह विदित होता है कि यह वाक्य विवाहके विषयमें है,श्राद्धविषयका नहीं है कारण कि इसमें श्राद्धपद नहीं है और इस षट्त्रिंशत्के मतके साथ इसकी एकवाक्यता (संगति) भी है कि विवाह, उत्सव, यज्ञ इनमें ब्राह्मण भोजन करते हों और मध्यमें मृत्यु वा सूतक हो जाय तो औरके घरके जलसे आचमन करके वे सब ब्राह्मण पवित्र होते हैं । और इस पूर्वोक्त वाक्यके संग विरोध भी है कि जब निमन्त्रण हुएके पीछे श्राद्धकर्ममें अशौच हो जाय तो दोष नहीं है । श्राद्धमें तो पाकके अनन्तर यद्यपि विष्णु अशौचका अभाव लिखते हैं तथापि वह कर्ताके निमित्त है, भोक्ताको तो दोष ही है; कारण कि माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि दाता और ग्रहीताके सूतक और मरण हो जायँ तो उनके अज्ञानमें श्राद्धमें किसी प्रकार दोष नहीं और ज्ञान हो तो भोजन करनेवालोंको ही प्रायश्चित्त आदि अशौच लेना । और विष्णुने लिखा है कि ब्राह्मण आदिके अशौचमें जो एकबार भी भोजन करता है, उसको तबतक अशौच होता है जबतक उन ब्राह्मणोंका अशौचके बीतनेपर प्रायश्चित्त किया जाय । जो यह ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि देहमें पितरोंके रहते अशौच नहीं वह श्राद्धसमयका निषेधक है; उत्तरसमयका नहीं । शुद्धिदीपने तो यह लिखा है कि " निमंत्रितेषु० "

शुद्धिदीपस्तु निमन्त्रितेष्वित्यामश्राद्धपरम्, भोजनार्थेष्वित्यादि त्वन्नश्राद्धपरमित्याह । प्रायश्चित्तं त्वाह मार्कण्डेयः—'भुक्त्वा तु ब्राह्मणाशौचं चरेत्सांतपनं द्विजः।' एतत्कामतः। अभ्यासे शंखः 'ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत् ।' इति । अज्ञानात्तु छागलेयः—"एकाहं च त्र्यहं पञ्च सप्तरात्रमभोजनम् । ततः शुचिर्भवेद्विप्रः पञ्चगव्यं पिबेन्नरः ॥" इति वर्णक्रमेणेदम् । अभ्यासे तु द्वैगुण्यमित्यादि मिताक्षरामाधवीयादौ ज्ञेयम् । मिताक्षरामाधवादौ तु श्राद्धे कर्तुर्भोक्तुश्च सर्वथा दोषाभाव उक्तः । आशौचमध्ये श्राद्धदिनप्राप्तौ तु माधवीये कालादर्शे च ऋष्यशृङ्गः—"देये पितॄणां श्राद्धे तु आशौचं जायते यदा । आशौचे तु व्यतिक्रान्ते तेभ्यः श्राद्धं प्रदीयते ॥ " इति । श्राद्धचिन्तामणौ ज्योतिषे—"प्रतिसांवत्सरं श्राद्धमाशौचात्पतितं च यत् । मलमासेऽपि तत्कार्यमिति भागुरिभाषितम् ॥" आशौचान्त्यदिनत्वेन निमित्तत्वादित्यर्थः । एतन्मासिकादिपरं, न दार्शिकादौ । अत एव सुदर्शनभाष्ये अपरपक्षे पित्र्याणीति नियमात् कृष्णपक्षश्राद्धलोपे प्रायश्चित्तमेव । न तु गौणकाले करणम् । तच्चोपवासः—'वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे । स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभो-

---

यह वाक्य आमश्राद्धके विषयमें है और "भोजनार्थे०" यह वाक्य अन्नश्राद्धके विषयमें है। अब प्रायश्चित्त मार्कण्डेयने लिखा है कि ब्राह्मणके अशौचमें भोजन करके ब्राह्मण सांतपन व्रत करे, यह जानकर करनेमें है। अभ्यासमें शंख कहते हैं कि ब्राह्मणके यहां भोजन कर एक महीनेतक व्रती रहे। अज्ञानसे करनेमें तो छागलेयका कथन है कि एक, तीन, पांच, सात रात्रितक भोजन न करे और पंचगव्य पान करे, तब ब्राह्मण शुद्ध होता है। यह वर्णके क्रमसे है और अभ्यासमें दूना आदि मिताक्षरा, माधवीय आदिमें लिखा है। मिताक्षरा और माधवीयने तो श्राद्धमें कर्त्ता और भोक्ताको सर्व प्रकार दोषका अभाव लिखा है, अशौचके मध्यमें श्राद्धका दिन आ पड़े तो माधवीय और कालादर्शमें ऋष्यशृंगका यह वाक्य है कि पितरोंको श्राद्ध देना हो और अशौच आ पड़े तो अशौचके बीतनेपर श्राद्ध करे। श्राद्धचिन्तामणिमें ज्योतिषका कथन है कि यदि वार्षिक श्राद्ध अशौचसे न किया हो तो भागुरिने यह लिखा है कि वह मलमासमें करना चाहिये। अशौचान्त दिनको निमित्त होनेसे उसमें करे; यह मासिक और वार्षिक श्राद्धके विषयमें लिखा है, दर्श आदिके विषयमें नहीं। इसीसे सुदर्शन भाष्यमें कहा है कि पितृकर्म कृष्णपक्षमें होते हैं, इस नियमसे श्राद्धकर्मका लोप हो जाय तो प्रायश्चित्त ही है। गौणकालमें उसको न करना, यह प्रायश्चित्त भी व्रत है; कारण कि मनुका कथन है कि वेदमें कहे नित्यकर्मोंका उल्लंघन और ब्रह्मचारीके व्रतका लोप हो जाय तो भोजनका अभाव ही उसका प्रायश्चित्त है, अशौचमें तो

जनम् ॥" इति मनूक्तेरित्युक्तम् । आशौचे तु प्रायश्चित्तमपि न । मुख्यकाले अनधिकारात् । आशौचान्ते सम्भवे तु व्यासः-"श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने त्वन्तरामृतसूतके । अमायां च प्रकुर्याद्वै शुद्धाविके मनीषिणः ॥" हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतेऽपि-"मासिके चाब्दिके त्वाह्नि संप्राप्ते मृतसूतके । वदन्ति शुद्धौ तत्कार्यं दर्शे चापि विचक्षणाः॥"गोभिलः-"देये प्रत्याब्दिके श्राद्धे अन्तरा मृतसूतके । आशौचानन्तरं कुर्यात्तन्मासेन्दुक्षये तथा ॥" मरीचिः-"श्राद्धविघ्ने समुत्पन्नेऽप्यविज्ञाते मृतेऽहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥" विशेषतः इत्युक्तेः शुक्लैकादश्यामपि । आशौचेतरविघ्ने एतदिति माधवपृथ्वीचन्द्रौ । यत्त्वत्रिः-" तदहश्चेत्प्रदुष्येत केनचित्सूतकादिना । सूतकानन्तरं कुर्यात्पुनस्तदहरेव च॥" इति । तत् पूर्वकालाभावे ज्ञेयम् । एतदाब्दिकेतरश्राद्धपरम् ॥ यच्च देवलः-"एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते । मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्मिञ्छ्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः ॥" इति । तदपि मासिकपरमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च । इदमपि पूर्वकालासंभवे व्याध्यादौ विस्मरणे चैवं ज्ञेयम् । अथ भार्यारजोदर्शने । तत्र दार्शिकमामेन कार्यम् । "श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्या-

---

प्रायश्चित्त नहीं लगता, कारण कि मुख्य समयमें अधिकार नहीं अशौचके अन्तमें हुआ हो तो व्यासने लिखा है कि श्राद्धमें विघ्न हो जाय वा मरण और सूतक बीचमें हो जाय तो अमावस्याको करना, कोई पण्डित कहते हैं कि शुद्धि होनेपर करना । हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्के मतमें लिखा है कि मासिक और वार्षिक श्राद्धके दिन मरण और सूतक हो जाय तो विद्वान् यह कहते हैं कि शुद्धिमें वा अमावस्याको श्राद्ध करना । गोभिलका कथन है कि वार्षिक श्राद्ध देनेके बीचमें यदि मरण और सूतक हो जाय तो अशौचके अन्तमें वा उस महीनेकी अमावस्याको करे । मरीचिका कथन है कि श्राद्धमें विघ्न हो वा मरणतिथिका ज्ञान न हो तो कृष्णपक्षकी एकादशीको विशेषकर करना चाहिये, विशेषकर यह कहनेसे शुक्लपक्षकी एकादशीमें भी करना । माधव, पृथ्वीचन्द्रोदय तो यह लिखते हैं कि अशौचसे इतरमें यदि विघ्न हो तो यह कथन है । जो अत्रिने यह लिखा है कि सूतक आदिसे जो श्राद्धका दिन दूषित हो जाय तो सूतकके अनन्तर उसी ही तिथिमें श्राद्धको करे, यह पूर्वकाल न प्राप्त हो तब जानना । यह वार्षिक श्राद्धसे अन्यके विषयमें लेख है, जो देवलने कहा है कि एकोद्दिष्टके समय यदि विघ्न हो जाय तो और मासमें उसी तिथिमें जिसमें एकोद्दिष्ट हो प्रयत्नसे करे । वह भी मासिक श्राद्धके विषयमें है, यह मदनरत्न और हेमाद्रिने कहा है, यह भी पूर्वकालके न मिलनेपर रोग आदि और विस्मृतिमें जानना । अब स्त्रीके रजोदर्शन हो तो उसमें श्राद्धका निर्णय कहते है-इसमें दर्शका श्राद्ध आमान्नसे करना; कारण कि हेमाद्रिमें हारीतका कथन है कि श्राद्धके विघ्नमें

दिनियतं मासंवत्सराहते ॥" इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः । व्याघ्रपादोऽपि-"आर्तवे देशकालानां विप्लवे समुपस्थिते । आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रः कुर्यात्सदैव हि ॥" इति । दीपिकापि-'दर्शे तु भार्यार्तवेऽप्यामश्राद्धविधिं प्रवासिविधुराद्याश्चाचरेयुर्द्विजाः ।' वस्तुतस्तु-'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते ।' इति सुमन्तूक्तेः पाककर्त्रन्तरसत्त्वेऽन्नेनान्यथामेनेत्युक्तम् । " मासिकानि सपिण्डानि अमावास्या तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ॥" इति कलिकायां वचनाच्च । कालादर्शे तु स्त्रिया रजोदर्शने दर्शश्राद्धं पञ्चमेऽहनीति पक्षान्तरमुक्तम् । पारिजातेऽप्येवम् । एवं महालययुगादावपि । आब्दिकं तु रजोदर्शनेऽपि तद्दिने एव कार्यम् । " पुष्पवत्स्वपि दारेषु विदेशस्थोऽप्यनग्निकः । अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना वामेन न क्वचित् ॥" इति माधवीये लौगाक्षिस्मृतेः । मरीचिरपि-"अनग्निकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत न तत् कुर्यान्मृतेऽहनि ॥" कार्ष्णाजिनिः-" आपन्नोऽप्याब्दिकं नैव कुर्यादामेन कुत्रचित् । अन्नेन तदमायां वा कृष्णे वा हरिवासरे ॥ " प्रयोगपारिजाते-" रजस्वलायां भार्यायां क्षयाहं यः परित्यजेत् । स वै नरकमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥

द्विजातियोंको आमश्राद्ध, मासिक और वार्षिकके विना अमावस्यामें करना लिखा है । व्याघ्रपादका भी कथन है कि रजोदर्शन, देश और कालका उपद्रव ये उपस्थित हों तो द्विजोंको आमश्राद्ध करना, और शूद्र तो निरन्तर आमश्राद्ध करे । दीपिकामें भी कहा है कि अमावस्या हो तो स्त्रीके रजोदर्शनमें भी प्रवासी (परदेशी) विधुर (स्त्रीहीन) आदि द्विज आमश्राद्धकी विधिको करे । सिद्धान्त तो यह है कि यदि पाक न हो तो द्विजातियोंको आमश्राद्ध करना लिखा है, इस सुमंतुके लेखसे पाककर्ता अन्नसे करे, और कोई हो तो आमान्नसे ही करे, यह युक्त है । कारण कि कलिकामें भी लिखा है कि मासिक, सपिंडी, अमावस्याका श्राद्ध और वार्षिक श्राद्ध ये जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह अन्नसे ही करे । कालादर्शमें तो यह और पक्ष कहा है कि स्त्रीके रजोदर्शनमें अमावस्याका श्राद्ध पांचवें दिन करना चाहिये । पारिजातमें भी इसी प्रकार लिखा है, इसी प्रकार महालय और युगादि श्राद्धमें भी जानना चाहिये । वार्षिक श्राद्ध तो रजोदर्शनमें भी उसी दिन करना चाहिये; कारण कि माधवीयमें लौगाक्षिस्मृतिका कथन है कि यदि स्त्री रजस्वला हो तो परदेशमें स्थित भी अनग्नि ब्राह्मण अन्नसे ही वार्षिक श्राद्ध करे, कभी सुवर्ण वा आमान्नसे न करे । मरीचिका भी कथन है कि जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह अनग्नि और परदेशमें स्थित ब्राह्मण क्षयाहको त्यागकर आमश्राद्ध करे, कार्ष्णाजिनिका कथन है कि आपत्तिमें प्राप्त हुआ भी मनुष्य वार्षिक श्राद्धको कभी भी आमान्नसे न करे, अमावस्या, कृष्णपक्षकी एकादशी इनमें उसे अन्नसे करना । प्रयोगपारिजातमें कहा है कि भार्याके रजस्वला होनेपर जो क्षयाहको त्याग करता है

मासिकानि सपिण्डं च अमावास्या तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ॥ २ ॥' देवयाज्ञिकनिबन्धेऽपि-"भर्तुः श्राद्धं पञ्चमेऽह्नि कुर्याद्भार्या रजस्वला । पुत्रः पित्रोः प्रकुर्वीत मृताहानि शुचिर्यतः ॥" कालादर्शेऽपि-"रजस्वलाङ्गनाऽनग्निर्विदेशस्थोऽथ वाब्दिके । दर्शादाविव नामेन त्वन्नेन श्राद्धमाचरेत् ॥" अन्यत्रापि-"विदेशको वा विगताग्निको वा रजस्वलायामपि धर्मपत्न्याम् । श्राद्धं मृताहे विदधीत पाकैर्नामेन हेम्ना न तु पञ्चमेऽह्नि ॥" एवं मासिकेऽपि । यत्तु मरीचिः-" आब्दिके समनुप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । पञ्चमेऽहनि तच्छ्राद्धं न तत् कुर्यान्मृतेऽहनि ॥" माधवीये-'श्राद्धं तदा न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेऽहनि ।' इत्युत्तरार्द्धं तदपुत्रकर्तृकश्राद्धविषयम् । " अपुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते भर्तुराब्दिके । रजस्वला भवेत्सा तु कुर्यात्तत्पञ्चमेऽहनि " इति श्लोकगौतमोक्तेः । 'दैवे कर्मणि पित्र्ये वा पञ्चमेऽहानि शुद्धयति ।' इति प्रभासखण्डाच्च । नन्वशुचित्वादेव तत्र पञ्चमेऽहन्यर्थात् श्राद्धं प्राप्तमिति वचनं व्यर्थम् । मैवम्-"गर्भिणीसूतिकादिश्च कुमारी वाप्यरोगिणी । यदाशुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम् ॥" इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः । अनुपनीतस्त्रीशूद्राश्च

वह प्रलयपर्यंत नरकमें निवास करता है, जिसकी स्त्री रजस्वला हो उसे मासिक, सपिंडीकरण, आमश्राद्ध और वार्षिक ये अन्नसे ही करने । देवयाज्ञिकनिबंधमें भी कहा है कि रजस्वला स्त्री पांचवें दिन पतिका श्राद्ध करे और पुत्र भी मातापिताका श्राद्ध क्षयाहदिनमें करे । कालादर्शमें भी कहा है कि जिसकी स्त्री रजस्वला हो वा जो अग्निहोत्री न हो वा जो विदेशमें हो वह वार्षिक श्राद्ध अमावस्याके तुल्य आम अन्नसे न करे, किन्तु पकान्नसे ही करे, और स्थानमें भी लिखा है कि परदेशमें हो वा अनग्नि हो वा जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह क्षयाह श्राद्ध पाकसे करे, आमान्नसे तथा सुवर्णसे न करे और न पांचवें दिन करे और जो मरीचिने यह लिखा है कि वार्षिक श्राद्धके आनेपर जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह पांचवें दिन श्राद्ध करे, मरणदिनमें न करे । और जो माधवीयमें पिछला आधा श्लोक यह है कि तब श्राद्ध न करे किन्तु पांचवें दिन करे वह पुत्रहीन स्त्री जिसे करे उस श्राद्धके विषयमें है; कारण कि श्लोकगौतमने यह लिखा है कि जब पुत्रहीन स्त्रीके स्वामीका वार्षिक आ पड़े और रजस्वला हो तो पांचवें दिन करे और प्रभासखण्डमें भी यही लिखा है कि, दैव और पितृकर्ममें पांचवें दिन शुद्धि है । यदि कहो कि अशुद्ध होनेसे ही पांचवें दिन श्राद्ध होना प्राप्त है इससे वाक्य व्यर्थ है, ऐसा मत कहो; कारण कि हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि गर्भवती, सूतिका आदि और कुमारी, रोगिणी ये जब अपवित्र हों तब औरसे प्रयत्नपूर्वक श्राद्धको करा दे । जिनका यज्ञोपवीत न हुआ हो, स्त्री वा शूद्र हो तो वे ऋत्विजसे श्राद्ध करावें, वा मंत्रोंको त्यागकर स्वयं करें, यह स्मृत्यर्थसारमें

श्राद्धमृत्विजा वा कारयेयुः । 'स्वयं वाऽमन्त्रकं कुर्युः' इति स्मृत्यर्थसारा-द्यान्यद्वारा करणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्य त्वदुक्तदिशा आशौचानन्तरं श्राद्धकर्तव्यता-ऽऽवेदकवाक्यवैयर्थ्याच्च । अतः प्रागुक्तमरीच्युक्तेः पत्नी पञ्चमेऽह्नीति युक्तम् । यत्तु–'सप्ताहात् पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने । ' इति तद्रजोनिवृत्तिपरमिति हेमाद्रिभिन्नसर्वनिबन्धसिद्धान्तः । हेमाद्रिस्तु श्राद्धादौ स्त्रिया सहैवाधिकारा-त्तस्यां रजोदुष्टायां तन्निवृत्तेरेकभार्येण पञ्चमेऽहनि कार्यं प्रागुक्तमरीच्युक्तेः, भार्या-न्तरसत्त्वे तु पुष्पवत्स्वपीतिवचनात्तद्दिने एवेत्याह । दीपिकापि–'भार्यर्तौ सति पञ्चमे च दिवसे स्याद्वार्षिकं मासिकं पक्वान्नैर्बहुभार्यकस्त्वधिकृते पत्न्यन्तरे तिष्ठ-ति । कुर्यात्तद्द्वितयं स्वमुख्यदिवसे' इति तच्चिन्त्यम् । सहाधिकारः सहत्वश्रुत्या वा एकफलभाक्त्वेन वा पाककर्तृत्वेन वा । नाद्यः । तदभावात् । 'पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु' इत्यस्याग्निसाध्यकर्मविषयत्वात् । आब्दिकस्य च निरग्नेरपि पाके-नैवोक्तेः । स्मार्ताग्निसाध्यत्वानियमात् ' तामपरुध्य ' इति पूर्वोक्तवचनसत्त्वाच्च । कथं च भार्यान्तरसत्त्वेऽधिकारः । ज्येष्ठया न विनेतरा, इति नियमात् । ज्येष्ठाप-रत्वे च तेनैव सिद्धेर्वचनवैयर्थ्यात् । न द्वितीयः अविभक्तभ्रातृष्वेकस्याऽशुचि-

---

कहा है, वह औरसे करवानेकी निवृत्तिके निमित्त है, वह उक्त प्रकारसे अशौचके उप-रान्त श्राद्ध करनेके समान वाक्य व्यर्थ हो जायगा इससे पूर्वोक्त मरीचिके कथनसे पत्नी पांचवें दिन करे; यह युक्त है । जो यह कहा है कि सात दिनमें पितर, देवता इनके व्रत और पूजाके योग्य होती है वह रजकी निवृत्तिके विषयमें है, यह हेमाद्रिसे भिन्न सभीका सिद्धान्त है । हेमाद्रिने तो यह लिखा है कि श्राद्ध आदिमें स्त्रीके संग ही अधिकार है और वह जब रजसे दुष्ट है उसकी निवृत्ति होनेपर एक स्त्रीवाला मनुष्य पांचवें दिन श्राद्ध करे; कारण कि पूर्वोक्त मरीचिका कथन है कि यदि और भार्या हो तो स्त्री पुष्पवाली होनेपर भी इस वाक्यसे उसी दिन करे । दीपिकाका भी कथन है कि यदि भार्याको ऋतु प्राप्त हो तो पांचवें दिन पक्वान्नसे वार्षिक वा मासिक होते हैं, जिसके बहुत स्त्री हों वह तो और स्त्रीको बैठाकर उन दोनोंको मुख्य दिनमें ही कर ले, सो उचित नहीं; कारण कि संग अधिकार संग सुननेसे है वा एकफलभागिनी होनेसे, वा पाक बनानेसे है, प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं; कारण कि उस सहका अभाव कहा है । विवाहसे सहत्व कर्मोंमें कहेंगे यह वाक्य उन कर्मोंमें लिखा है जो अग्निसे सिद्ध हों और वार्षिक श्राद्ध निरग्निको भी पाकसे ही लिखा है, यह नियम नहीं कि वह स्मार्त अग्निसे साध्य है और उसको रोककर यह पूर्वोक्त कथन भी है । और दूसरी भार्याके होनेपर कैसे अधिकार है ? कारण कि ज्येष्ठा पत्नीके विना अन्य स्त्री अधिकारिणी नहीं है, इस नियमसे ज्येष्ठाके विषयमें मानोगे तो उससे ही सिद्ध था यह कथन व्यर्थ हो जायगा और दूसरा पक्ष भी नहीं है; कारण कि इकट्ठे

त्वेऽन्यस्यानधिकारापत्तेः । न तृतीयः । प्रवासनिर्देशसूतिकारोगिण्यादिष्वप्यक-रणापत्तेः । ' आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः ।' इति देवलोक्तावात्मने-पदात्स्वस्य बान्धवानां च पाककर्तृत्वोक्त्या विरोधाच्च । 'ततस्तानि पपाचाशु सीता जनकनन्दिनी ।' इति पाद्मादिलिङ्गात् प्राशस्त्यं भार्यापाकस्योच्यते । न तत् कस्याप्यनिष्टम् । तेनैतद्वचनं युक्त्याद्यभावात् पूर्वोक्तवचोविरोधाच्च यत्किंचिदेव । यदपि–" श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । श्राद्धं तत्र न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेऽहनि ॥" इति श्लोकगौतमपाठोऽन्यथा दर्शितः । माधवीये च तद्बलात् पक्षा-न्तरमुक्तं तेनापि नाभिप्रेतार्थसिद्धिः । यस्य प्रेतस्येत्यर्थात् । तेनात्र हेमाद्रि-र्भ्रामेति बहु वक्तव्येऽपि नोच्यते ॥ अथान्वारोहणे निर्णयः । लौगाक्षिः–" मृता-हनि समासेन पिण्डनिर्वपणं पृथक् । नवश्राद्धं च दम्पत्योरन्वारोहण एव तु ॥" समासेन तु तन्त्रेण द्विपितृकश्राद्धवद्द्वयोरेकः पिण्डो विप्रश्च । पिण्डशब्दः श्राद्धपरः । नवश्राद्धं पृथगिति हेमाद्रिपृथ्वीचन्द्रौ । अत्र मृताहनीत्येक-त्वात् दिनभेदे दिनैक्ये वा मृततिथेरेकत्वे कालैक्यं कर्त्रैक्यं पाकैक्यं

भाइयोंमें एकके अशुद्ध होनेपर औरका अधिकार न होगा और तीसरा पक्ष भी उचित नहीं; कारण कि प्रवास, विदेश, सूतिका, रोगिणी आदि होनेपर भी न करना होगा । और अपने बान्धवोंद्वारा नवीन पात्रोंसे अन्नका प्रारम्भ करे, इस देवलके कथनमें ' आरभेत ' यह आत्मनेपदका प्रयोग है, इसीसे अपनेको और अपने बान्धवोंको पाक करना लिखा है, उसका विरोध आवेगा । यदि कोई कहे कि फिर उन्हें जनकनन्दिनी सीताने शीघ्र पकाया, इस पद्मपुराणके वाक्यसे स्त्रीका किया पाक ही श्रेष्ठ है, सो कुछ नहीं; कारण कि वह किसीको भी अनिष्ट नहीं, इससे यह वचन युक्ति आदिके अभावसे और पूर्वोक्त कथनके विरोधसे यथार्थ नहीं है और जो श्राद्धका दिन आनेपर जिसकी स्त्री रजस्वला हो वहां श्राद्ध न करना, किंतु पांचवें दिन करना, इस श्लोकगौतमका पाठ अन्यथा कर दिखलाया है । और माधवीयमें उसके बलसे दूसरा पक्ष लिखा है, उसमें भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता; कारण कि यह उसका अर्थ है कि जिस मृतकका, इससे यहां हेमाद्रिको भ्रम हो गया, यहां बहुत भी कहना था पर नहीं कथन करते । अब अन्वारोहणके निर्णयका कथन करते हैं–लौगाक्षिका कथन है कि क्षयाहके दिन एकतन्त्रसे स्त्री और पुरुषके निमित्त पृथक् २ पिण्डदान नवश्राद्ध करे; इसको अन्वारोहण कहते हैं, दो पितरोंके श्राद्धके तुल्य दोनोंका एक पिंड और एक ही ब्राह्मण हो, यहां पिण्डपदसे श्राद्धका ग्रहण करना । नवश्राद्ध पृथक् करना, यह हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्र कहते हैं । यहां ' मृताहनि ' इस एक वाक्यसे दिनभेद और दिनके एक होनेपर मरणकी तिथि एक हो, समय एक हो, कर्ता एक हो, पाक भी एक होता है । जब स्त्री पुरुष एक ही

च । " एकचित्यधिरोहे तु तिथिरेकैव जायते । एकपाकेन पिण्डैक्ये द्वयोर्गृह्णीत नामनी ॥ " इति स्मृत्यन्तराच्च । अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टैरप्युदाहृतम्- "अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रिया । पिण्डदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा ॥ नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् । एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥ २ ॥ " इति । तिथिभेदे तु वार्षिकं पृथगेव । तथा वार्षिके समासविधानादन्यत्र सर्वत्र पृथक्त्वे प्राप्ते नवश्राद्धमेव पृथगिति परिसंख्ययान्यत्र पृथगुक्तेष्वपि वार्षिकषोडशश्राद्धतीर्थसापिण्डान्वष्टक्यादिषु समास एवेति मदनपारिजातनिर्णयामृतादयः । अतः समासविधिबलात् ज्येष्ठपुत्रस्य कर्तृत्वे सपत्नमातुरन्वारोहणे तत्पुत्रे सत्यपि तद्वार्षिकादिकमविभक्तः सापत्नपुत्र एव ज्येष्ठः कुर्यात्, न औरसः । वक्ष्यमाणपृथ्वीचन्द्रादिमते तु औरस एव मातुः पृथक्कुर्यात् । एवं बह्वीष्वपि मातृषु ज्ञेयम् । त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणैरप्येवमुक्तम् । यत्तु गार्ग्यः-" एकचित्यां समारूढौ दंपती निधनं गतौ । पृथक्श्राद्धं तयोः कुर्यादोदनं च पृथक् पृथक् ॥" ओदनं पिण्डः । तन्नवश्राद्धविषयम् । यत्तु भृगुः-" या समारोहणं कुर्याद्भर्तुश्चित्यां पतिव्रता । तां मृताहनि संप्राप्ते पृथक्पिंडे नियोजयेत् ॥ प्रत्यब्दं च नवश्राद्धं युगपत्तु समा-

---

चितामें चढ़ें तब एक ही तिथि होती है, एक पाक और एक पिंडमें दोनोंके नाम ले ले; यह किसी और स्मृतिका भी कथन है । अन्त्येष्टिपद्धतिमें भट्टोंने भी लिखा है कि स्त्रियोंके अन्वारोहमें पतिको जलदान, पिंडदान और प्रतिवार्षिक श्राद्ध, नवश्राद्ध आदि सब एकतंत्रसे होते हैं और सपिंडी भिन्न भिन्न होती है और एक ही वृषोत्सर्ग और एक ही गोदान होता है, इस वाक्यसे तिथिभेदमें वार्षिक पृथक् ही होता है, वैसे ही वार्षिकमें समास (तन्त्र) के विधानसे और सब स्थानमें पृथक् पाया, नवश्राद्ध ही पृथक् करे, इस (गिनती) से और श्राद्धोंमें पृथक् होनेपर भी वार्षिक, षोडश श्राद्ध, तीर्थ, सपिंडी, अन्वष्टकाआदिमें इकट्ठा यह मदनपारिजात, निर्णयामृत आदिका मत है, इसीसे तन्त्रविधिके बलसे जहां ज्येष्ठ पुत्र कर्ता है वहां सपत्नी माताके अन्वारोहणमें उसका पुत्र हो तो भी उस सपत्नी माताके वार्षिक आदिको जो पृथक् न हो तो वह सपत्नीका पुत्र ही करे, औरस न करे । आगे कहने योग्य पृथ्वीचन्द्र आदिके मतमें तो औरस ही माताका वार्षिक पृथक् करे, इसी प्रकार बहुत माताओंमें भी जानना उचित है । त्रिस्थलीसेतुमें हमारे पितामहजीने भी ऐसे ही लिखा है । जो गार्ग्यने यह लिखा है कि मरे हुए स्त्री पुरुष एक चितामें दग्ध हुए हों तो उनका श्राद्ध और ओदन (पिंड) भी पृथक् पृथक् करे, वह नवश्राद्धके विषयमें कहा है । जो भृगुका यह कथन है कि जो पतिव्रता स्त्री पतिकी चितामें आरोहण करे उसको मरनेके दिन आनेपर पृथक् पिंड दे और वार्षिक वा नवश्रा-

चरेत् ॥" तद्येषां वार्षिकमेकोद्दिष्टमुक्तं तद्विषयम्। 'प्रत्यब्दं च मृताहनि' इत्यन्वयः। नवश्राद्धं युगपदिति दर्शे वर्गद्वयवदेकतन्त्रेण पृथगित्यर्थमाह हेमाद्रिः। 'एतन्मृततिथेर्भेदविषयम्' इति पृथ्वीचन्द्रनिर्णयामृताद्याः। देवयाज्ञिकोऽप्येवम्। पराशरमाधवस्तु-'गार्ग्यभृग्वादिवचनाल्लौगाक्षिवाक्ये समासेन पाकादि तंत्रैक्येन दर्शे वर्गद्वयवत् पृथक्श्राद्धं कुर्यात् नवश्राद्धं च तथा' इत्याह। पृथ्वीचन्द्रचन्द्रिकादयस्तु-' द्वयोरेकपिण्डदानं लौगाक्षिक्वनं चापद्विषयम्। पृथक्पिण्डदानं तु मुख्यः कल्पः।' तदाह वृद्धपराशरः-"आरुह्य भर्तुश्चितिमङ्गना या प्राप्नोति मृत्युं खलु सत्त्वयुक्ता। एकादशाहे तु तयोर्विधेयं श्राद्धं पृथक् स्वर्गमपेक्ष्य सद्भिः॥ एकत्वमिच्छन्ति मतिप्रहीणा एकादशाहादिषु ये नृनार्योः। ते स्वर्गमार्गं विनिहत्य कुर्युः स्त्रीसत्त्वघातान्नरकाधिवासम्॥ भर्त्रा सह मृता या तु नाकलोकमभीप्सती। साहेच्छ्राद्धं पृथक् पिण्डान् नैकत्वं तु स्मृतं तयोः॥ पृथगेव हि कर्तव्यं श्राद्धमेकादशाहिकम्। यानि श्राद्धानि सर्वाणि तान्युक्तानि पृथक्पृथक्॥ ४॥" विश्वादर्शेऽपि-"मातुर्गयाष्टकावृद्धिमृताहेषु महालये। श्राद्धं कुर्यात् पृथग्दैवं तन्त्रं वानुगतावपि॥ एकचित्यां समारुह्य मृतयोरेकबर्हिषि। पित्रोः पिण्डान् पृथग्दद्यात्

द्धको एकवार ही पूर्ण करे, वह उनके विषयमें है जिनका वार्षिक एकोद्दिष्ट कहा है, यहां प्रतिवर्ष क्षयदिनमें नवश्राद्ध करे ऐसा अर्थ है। अमावस्यामें दो वर्गके समान संवत्की पृथक् श्राद्ध और नवश्राद्ध भी ऐसे ही होते हैं, यह अर्थ हेमाद्रिने लिखा है। यह मरनेकी तिथिके भेदमें है, यह पृथ्वीचन्द्रोदय, निर्णयामृत आदिका कथन है। देवयाज्ञिक भी ऐसा ही कहते हैं। पराशर माधव तो यह लिखते हैं कि गार्ग्य, भृगु आदिके वाक्यसे लौगाक्षिके वाक्यमें संक्षेपसे पाक आदि तन्त्रकी एकतासे अमावास्यामें दो वर्गके समान पृथक् ही श्राद्ध नवश्राद्ध होते हैं, पृथ्वीचन्द्र, चन्द्रिका आदि तो यह कहते हैं कि दोनोंको एक पिण्डदान होता है यह लौगाक्षिका वाक्य आपत्तिके विषयमें है, पृथक् पिण्ड देना तो मुख्य पक्ष है। वही बृहत्पराशरने लिखा है कि जो सत्त्वयुक्त स्त्री पतिकी चितामें आरूढ़ होकर मृत्युको प्राप्त होती है, एकादशाहके दिन उसके श्राद्ध पृथक् करे। जो मतिहीन पुरुष एकादशाहके दिन पुरुषस्त्रीकी एकता चाहते हैं वे स्वर्गमार्गको नष्ट करके स्त्रीके सत्त्वका नाश करके नरकमें वास करते हैं। जो स्त्री स्वर्गकी इच्छा करती हुई पतिके संग मरी हो वह श्राद्ध और पिंड पृथक् चाहती है, उनकी एकता नहीं कही है। एकादशाह आदि श्राद्ध पृथक् ही करने और सब श्राद्ध जो हैं वे पृथक् २ ही वर्णन किये हैं। विश्वादर्शमें भी कहा है कि माताके अन्वारोहणमें भी गया, अष्टका, वृद्धि, क्षयाह, महालय यह श्राद्ध भिन्न भिन्न करे और देवश्राद्ध तन्त्रसे करे। एक चितामें आरूढ़ होकर जो पिता-माता मृत्युको प्राप्त हुए हों उनको पिण्ड पृथक् २ दे, पिण्ड तो आपत्तिमें पुत्र दे। यह अत्रिकी स्मृतिमें लिखा है,

पिण्डं त्वापत्सु तत्सुतः ॥ २ ॥" इत्यग्निस्मृतेरित्याहुः । यत्तु षट्त्रिंशन्मते- "एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके। न पृथक् पिण्डदानं तु तस्मात्पत्नीषु विद्यते ॥" इति, तद्दर्शादिपरम् । चन्द्रप्रकाशेऽपि-"एकचित्यां समारूढौ दंपती प्रमितौ यदि । पृथक्श्राद्धं प्रकुर्वीत पत्युरेव क्षयेऽहनि ॥ मृतानामपि भृत्यानां भार्याणां पतिना सह। पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः ॥ तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं स्वामिक्षयेऽहनि। तृतीयस्य ततः कुर्यात्संनिपातेष्वयं क्रमः ॥ ३ ॥" इति। सहगमने सर्वत्र श्राद्धार्थमेकपाक इत्याह मदनरत्ने प्रचेताः-"एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दंपती यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक्पिण्डं समावपेत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् ॥ अत्र भर्तुराशौचमध्येऽन्यदिने स्त्रीमरणे पतिमरणादिनगणनयाशौचपिण्डदानैकादशाहादि कार्यम्, नात्र पक्षिणीवृद्धिः-"मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता। न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥ पुत्रोऽन्यो वाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः । नवश्राद्धं सपिण्डं च युगपत्तु समापयेत् ॥ २ ॥" इति षडशीतिमतात् । "यदा नारी विशेदग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया । तदाशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेण हि ॥" इति लघुहारीतोक्तेश्च । भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे तु त्र्यहमा-

---

और जो षट्त्रिंशन्मतमें लिखा है कि सती स्त्री पतिके संग पिण्ड, गोत्र, सूतकमें एक हो गयी, इससे पत्नियोंको पृथक् पिण्डदान नहीं है वह अमावस्याके श्राद्धमें जानना। चन्द्रप्रकाशमें भी लिखा है कि यदि मरे हुए स्त्रीपुरुष एकचितामें आरुढ़ हुए हों तो पतिका मृत्युदिनमें पृथक् श्राद्ध करे और मरे हुए भृत्यों तथा भार्याओंका भी श्राद्ध पतिके साथ स्वामिकी मरणतिथिमें एकस्थानमें पाक बनाकर करे, पहले प्रथम मरेको, फिर द्वितीयको फिर तृतीयको पिंड दे। यही इकट्ठोंमें क्रम कहा है। संग मरणमें सर्वत्र श्राद्धके निमित्त एक पाक होता है, मदनरत्नमें प्रचेताका कथन है कि यदि स्त्रीपुरुष एक चितामें स्थित होकर मर जायँ तो एकस्थानमें पाक करे और पिंड पृथक् २ दे। पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी ऐसा ही लिखा है। यहां पतिके अशौच दिनोंके मध्यमें और दिनमें अनुगमनसे स्त्री मरे तो पतिके मरणदिनकी गिनतीसे आशौच, पिंडदान, एकादशाह आदिको करना। यहां पक्षिणी (दो दिन एकरात) की वृद्धि नहीं होती कारण कि षडशीतिका यह कथन है कि मरे हुए पतिके अनुगमनसे जो पत्नी अग्निमें सती हुई हो वहां पक्षिणी न करे, पिताके अशौच बीतनेपर ही शुद्धि होती है, पुत्र वा और जो उसको अग्निका देनेवाला है वह भी तबतक ही अपवित्र है, उनके नवश्राद्ध, सपिंडी साथ ही करे। और लघुहारीतने भी लिखा है कि अपने पतिके प्यारकी इच्छासे यदि नारी अग्निमें प्रवेश करे, तो पतिके अशौचक्रमसे ही उसका अशौच करे। यदि पतिके अशौचके अनन्तर अन्वारोहण करे तो तीन दिन अशौच

शौचम् । "ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते श्राद्धं प्राप्नोति शाश्वतः ॥" इति ब्राह्मोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रापरार्कौ । एतदन्वारोहणे एव, न त्वेकचितौ । ऋग्वेदवादः-'इमा नारीरविधवा' इत्यादि । एतत्सवर्णापरमित्यन्ये । स्मार्तगौडास्तु-'देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् ।' इत्युपक्रम्य, ब्राह्मे-'त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते' इत्युक्तेः भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे त्र्यहः सहगमने तु पूर्णं दशाहादि । पिण्डास्तु दशापि सहैव । तथा च जनकशूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासः-"संस्थितं पतिमालिङ्ग्य प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः पिण्डादिकं ज्ञेयं क्रमशः पतिपिण्डवत् ॥" "अन्विता पिण्डदानं तु यथा भर्तुर्दिनेदिने । तदर्थारोहिणी यस्मात्तस्मात्सा नात्मघातिनी ॥" इति विष्णूक्तेश्च । पृथक्चितौ तु भर्त्राशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा सत्यां त्र्यहेण दशपिण्डाः । "अन्वितायाः प्रदातव्या दशपिण्डास्त्र्यहेण तु । स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते ॥" इति तत्रैव पैठीनसिस्मृतेः । भर्त्राशौचोत्तरं मृतौ तु चतुर्थेऽह्नि श्राद्धम् । शूलपाणिना त्विदमग्निपुराणीयत्वेनोक्तम्-'युद्धहतस्य सद्यः शौचे त्वन्वारोहणे त्रिरात्रम् ।' 'एकचितौ तु संस्थितप-

---

लगता है । यह ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि ऋग्वेदके विवादसे साध्वी स्त्री आत्मघात न करे, तीन दिनके अशौचकी निवृत्ति होनेपर शास्त्रोक्त श्राद्धको प्राप्त होती है, यह पृथ्वीचन्द्रोदय और अपरार्क कहते हैं, यह भी अन्वारोहणमें ही जानना, एकचितामें ऋग्वेद वाद नहीं कि यह नारी अविधवा है इत्यादि । कोई यह कहते हैं कि यह असवर्ण स्त्रीके विषयमें है । स्मार्त गौड तो यह लिखते हैं कि देशान्तरमें पति मर जाय तो साध्वी स्त्री उसकी दोनों खड़ाऊं लेकर भस्म हो जाय । इस प्रकरणमें अशौचके तीन दिन बीतनेपर इस ब्रह्मपुराणके वाक्यसे पतिके अशौचके पीछे अन्वारोहण हो तो तीन दिन और साथ गमनमें पूरे दश दिनका अशौच होता है और दश पिण्ड तो संग ही होते हैं । यही जनक, शूलपाणि तथा शुद्धितत्त्वमें व्यासने कहा है कि मरे हुए पतिका स्पर्श करके जो स्त्री अग्निमें प्रवेश करती है, उसके सब पिंड आदि पतिके पिंडके समान देने । विष्णुका भी वाक्य है कि अनुगमन करनेवाली स्त्री दिन २ पतिके समान पिंडदानको प्राप्त होती है, उसीके निमित्त ही वह अन्वारोहिणी है, आत्महत्यारी नहीं । यदि एक चिता न हो तो स्वामीके अशौचके मध्यमें अथवा उसके उपरान्त सती हो तो तीन दिनमें दश पिण्ड देने, कारण कि वहां ही पैठीनसिस्मृतिमें लिखा है कि पीछे गयी स्त्रीको तीन दिनमें दश पिण्ड देने और स्वामीके अशौच बीतनेपर उसको श्राद्ध देना । स्वामीके अशौच उपरान्त मरी हो तो चौथे दिन श्राद्ध करे । शूलपाणिने जो यह वाक्य अग्निपुराणका लिखा है कि युद्धमें मरे स्वामीका जब सद्यःशौच है तब अन्वारो-

तिम्' इति प्रागुक्तव्यासोक्तेः सद्यः शौचमित्याहुः । अन्यसपिण्डाशौचमध्ये विदेशमृतान्वारोहणं त्वनाशंक्यमेव । शुचितायाः अङ्गत्वात् । अन्ये तु रजोवत्याः सूतिकायाश्च गमननिषेधादितराशौचस्यानिषेधः । अन्यथा प्रत्यक्षभर्तृमरणे का गतिरित्याहुः । तन्मूलवचनं विना चिन्त्यमेव । स्मृत्यर्थसारेऽपि-'सहगमने सर्वत्र श्राद्धपिण्डादौ पाकैक्यं कालैक्यं कर्त्रैक्यं च' इति । या तु पतिमुद्दिश्यान्यकालेऽन्यतिथावन्वारूढा, तस्याः श्राद्धं तत्क्षयतिथौ कार्यम्, न भर्तृतिथौ । 'पारणे मरणे नणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।' इति स्कान्दात् । 'तिथिरेकैव जायते' इत्यादिवचनाच्चेति मदनरत्नपारिजातपृथ्वीचन्द्रादयः । अन्ये तु तस्याः पतिमरणेन मृतप्रायत्वात् । "सहाग्रतः पृष्ठतो वा तद्भक्त्या म्रियते यदि । तस्याः श्राद्धं प्रदातव्यं पृथक् पत्युः क्षयेऽहनि ॥" इति स्मृत्यन्तरात् । "अग्रतः पृष्ठतो वापि तद्भक्त्या म्रियते यदि । तस्याः श्राद्धं सुतैः कार्यं पत्युरेव क्षयेऽहनि ॥" इति पुराणसमुच्चयाच्च भर्तृतिथावेवेत्याहुः । अत्र मूलं चिन्त्यम् । अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे-"माता मङ्गलसूत्रेण म्रियते यदि तद्दिने । उद्दिश्य विप्रपङ्क्तौ तां भोजयेच्च सुवासिनीम् ॥" अथ श्राद्धसंपाते निर्णयः । अत्र पित्रो-

---

हणमें तीन रात्रिका अशौच होता है । कारण कि पूर्वोक्त व्यासका कथन है कि एक चितामें मृतक हुए पतिके साथ जो सती हो तो सद्यःशौच लगता है । विदेशमें मरे हुए अन्य सपिंडोंके अशौचके बीचमें तो अन्वारोहणकी शंका ही नहीं हो सकती; कारण कि अशौच वहां अंगमात्र है । और तो यह कहते हैं कि रजस्वला और सूतिका हुई स्त्रीको सती होनेका निषेध है, इससे इतरके अशौचका निषेध नहीं, अन्यथा तो प्रत्यक्ष स्वामीके मरणमें क्या गति होगी, सो मूलवाक्यके विना विचारणीय है; अर्थात् उचित नहीं । स्मृत्यर्थसारमें भी लिखा है कि सती होनेमें सर्वत्र श्राद्ध पिंड आदिमें एक पाक, एक काल, एक कर्ता होता है । जो पतिके निमित्तसे अन्य काल और अन्य तिथिमें अन्वारूढ हुई है उसका श्राद्ध उसके ही मरणतिथिमें करना, पतिकी मरणतिथिमें न करना; कारण कि पारण और मरणमें मनुष्योंकी वही तिथि लेनी, जो उस समय वर्तमान हो तिथि एक ही होती है, इत्यादि स्कन्दपुराणका कथन है । यह मदनरत्न, पारिजात, पृथ्वीचन्द्र आदि लिखते हैं । और तो कहते ह कि वह पतिके मरनेसे मृतकक ही समान है, संगसे पहिले वा पीछे पतिकी प्रीतिसे यदि मृतक हो जाय तो उसका पृथक् श्राद्ध पतिकी मृत्युके दिन करना, यह स्मृत्यन्तरमें कहा है । पुराणसमुच्चयका भी कथन है कि आगे वा पीछे पतिकी प्रीतिसे मर जाय तो पुत्र उसका श्राद्ध पतिके क्षयाहके दिन करे । इससे स्वामीकी तिथिमें ही होता है, इसमें मूल नहीं है । यहां विशेष हेमाद्रि और स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि माता मंगलसूत्रको धारण करके पिताके दिन मृतक हो जाय तो पिताके दिन ब्राह्मणपंक्तिमें एक सौभाग्यवती स्त्रीको भोजन करा दे । अब श्राद्धके संपातमें निर्णय लिखते हैं, वहां जो माता

मृततिथ्येकत्वे मरणक्रमेण दर्शे वर्गद्वयवत्तन्त्रेण श्राद्धं कुर्यात् । पौर्वापर्याज्ञाने तु पितृपूर्वकं कुर्यादिति हेमाद्रिः । माधवादयस्तु-" पित्रोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे पर्युषितेऽपि वा । पितृपूर्वं सुतः कुर्यादन्यत्रासति योगतः ॥ " इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः सर्वत्र पितृपूर्वं भिन्नप्रयोगमाहुः । पार्वणैकोद्दिष्टयोः संप्राप्ते माधवीये जाबालिः-" यद्येकत्र भवेयातामेकोद्दिष्टं च पार्वणम् । पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥" अथ युगपन्मरणे निर्णयः । गृहदाहादिना युगपन्मरणे भृगुः-" एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् ॥ पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः । तृतीयस्य ततः कुर्यात्सन्निपातेष्वयं क्रमः ॥ २ ॥ " ऋष्यशृंगः-"भवेद्यदि सपिण्डानां युगपन्मरणं तदा ॥ सम्बंधासत्तिमालोच्य तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ " गारुडे-" एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुतेऽत्र हि । विकिरं त्वेकतः कुर्यात्पिण्डान् दद्यात्पृथक् पृथक् ॥ " अत्रानुगमने च दाहसपिण्डनादौ विशेषं वक्ष्यामः । अत्रिः-" बहूनामथवा द्वाभ्यां श्राद्धं चेत्स्यात्समेऽहनि । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा पृथक् श्राद्धानि कारयेत् ॥ " पुलस्त्यः-" महालये गयाश्राद्धे गतासूनां क्षयेऽहनि । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक् पृथक् ॥" इदं च पृथक्पाकेन

पिताके मरनेकी तिथि एक हो तो मरणके क्रमसे अमावस्याको वर्गद्वयके समान तन्त्रसे श्राद्ध करे और जो पूर्वापर विदित न हो तो पितृक्रमसे करे । हेमाद्रिमाधवआदि तो यह लिखते हैं कि पिताका श्राद्ध नया वा पुराना प्राप्त हुआ हो तो पुत्रको पितृक्रमसे करना चाहिये और अन्यत्र पृथक् पृथक् करे, इस कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिसे सर्वत्र पितृक्रमसे भिन्न भिन्न प्रयोग पाया जाता है । पार्वण एकोद्दिष्टका संपात हो तो माधवीयमें जाबालिका कथन है कि यदि एकवार एकोद्दिष्ट और पार्वण प्राप्त हों तो पार्वण करके ही एकोद्दिष्ट करे । गृहदाह आदिसे एकवार मरनेमें तो भृगुका कथन है कि एककालमें बहुत अथवा दो मृत्युको प्राप्त हो जायँ तो तन्त्रसे पाक करके पृथक् पृथक् श्राद्ध करे; पहले मरेको प्रथम, फिर दूसरेको, फिर तीसरेको पिंड दे, यही सन्निपातमें क्रम है । ऋष्यशृंगने कहा है कि यदि सपिंडोंका एकवार ही मरण हो जाय तो सम्बन्धकी निकटताके अनुसार क्रमसे श्राद्ध करना चाहिये । गरुडपुराणमें लिखा है कि एक ही पाकसे ऐसे विषयमें श्राद्ध करते हैं, उस स्थलमें विकिर एक करे, और पिंड पृथक् पृथक् प्रदान करे, यहां अनुगमनमें और दाह, सपिंडन आदिमें विशेष लिखेंगे । अत्रिका कथन है कि दोका या बहुतका श्राद्ध एक दिनमें प्राप्त हो तो तंत्रोंसे पाक करके भिन्न श्राद्ध करे । पुलस्त्यने लिखा है कि महालय और गयाश्राद्धमें मरे हुओंके क्षयाहमें तंत्रसे पाक करके पृथक् पृथक् श्राद्ध करे । यह भी तब है जब पृथक् पाकसे भिन्न करनेकी शक्ति न हो पृथक् पाकसे श्राद्धका भेद

भिन्नश्राद्धाशक्तौ । पृथक्पाकेन सम्बन्धासत्त्या श्राद्धभेदस्तु मुख्यः पक्षः । "एकत्रैव दिने श्राद्धं द्वयं प्राप्तं यदा तदा । चरेदेव पुरा वर्षात्पितुर्मातुश्च यत्सुतः ॥ एकस्मिन् यः करोत्यह्नि द्वयोः श्राद्धं यदा द्विजः । तदा पूर्वमृतस्यादौ कृत्वा स्नात्वा यथाविधि ॥ पश्चात् पश्चान्मृतस्यैव पृथक्पाकैः समाचरेत् । नैकस्मिन् दिवसे श्राद्धं त्रयाणां कुत्रचित् द्विजः ॥ एकः कुर्यात्तथा प्राप्ते त्वन्यो भ्राता समाचरेत् । भ्रातर्यविद्यमाने तु तत्परेऽह्नि समाचरेत् ॥ अन्यथा श्राद्धहन्ता स्याच्छ्राद्धसंकरकृद्भवेत् ॥ ९ ॥" इत्याश्वलायनोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः । कात्यायनः—"द्वे बहूनि निमित्तानि जायेरन्नेकवासरे । नैमित्तिकानि कार्याणि निमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात् ॥" जाबालिः—"श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने । नैमित्तिकं तु कर्तव्यं निमित्तानुक्रमोदयम् ॥" कालादर्शे—"नित्यदार्शिकयोश्चोदकुम्भं मासिकयोरपि । दार्शिकस्य युगादेश्च दार्शिकालभ्ययोगयोः ॥ दार्शिकस्य च मन्वादेः संपाते श्राद्धकर्मणः । प्रसंगादितरस्यापि सिद्धेरुत्तरमाचरेत् ॥ २ ॥" अस्य देवताभेदेऽपवादमाह स एव—"नित्यस्य चोदकुम्भस्य नित्यमासिकयोरपि । दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि ॥ नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शिकाब्दिकयोरपि । युगाद्याब्दिकयोश्चैव मन्वाद्या-

---

जानना तो मुख्य पक्ष है; कारण कि आश्वलायनने लिखा है कि जब एक ही दिन दो श्राद्ध आ जायँ तो पुत्र प्रथम पिता माताका श्राद्ध करे, जब द्विज एक दिन दो श्राद्ध करता है, तब प्रथम मृतकका श्राद्ध प्रथम करके यथाविधि स्नान करके फिर पीछे मृतकका श्राद्ध पृथक् पाक बनाकर करना चाहिये और एक दिन एक ही मनुष्य तीन मृतकोंका श्राद्ध न करे, यदि ऐसा आ पड़े तो दूसरा भ्राता कर ले, भ्राता न हो तो उस श्राद्धको दूसरे दिन करना चाहिये और ऐसा न करनेसे श्राद्धका नाशक और श्राद्धके संकरका कर्ता होता है, यह आश्वलायनका कथन है; ऐसा पृथ्वीचन्द्रका मत है । कात्यायनने लिखा है कि दो वा बहुतसे निमित्त एक दिन आ पड़ें तो नैमित्तिक कार्य उसी क्रमसे करे; जिस क्रमसे निमित्त उत्पन्न हुए हों । जाबालिका कथन है कि एक मनुष्यका श्राद्ध करके उस दिन फिर श्राद्ध न करना चाहिये, निमित्तके क्रमसे नैमित्तिक श्राद्धको तो कर लेना चाहिये । कालादर्शमें कहा है कि नित्य श्राद्ध और अमावस्याका श्राद्ध, उदकुंभ (जलका घडा) और मासिक श्राद्ध, अमावस्या और युगादि श्राद्ध, अमावस्या और अलभ्ययोग श्राद्ध, अमावस्या और मन्वादि श्राद्ध ये श्राद्ध एक साथ आ पड़ें तो प्रसंगसे एकको करके दूसरा श्राद्ध करे । देवताके भेदसे इसकी सिद्धिसे उत्तर श्राद्धका अपवाद कालादर्शमें ही लिखा है कि नित्य और जलघट, नित्य और मासिक, दर्श और उदकुंभ, दर्श और मासिक, नित्य और आब्दिक, अमावस्या और वार्षिक, युगादि और वार्षिक, मन्वादि और वार्षिक, प्रतिवार्षिक

ब्दिकयोस्तथा ॥ प्रत्याब्दिकस्य चालभ्ययोगेषु विहितस्य च। संपाते दैवता-भेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् ॥ निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम्। पित्रो-स्तु पितृपूर्वत्वं सर्वत्र श्राद्धकर्मणि ॥ ४ ॥" माधवीये स्मृतिसंग्रहे–'काम्यतन्त्रेण नित्यस्य तन्त्रं श्राद्धस्य सिद्ध्यति।' अथ श्राद्धाङ्गतर्पणम्। पारिजाते पृथ्वी-चन्द्रोदये च गर्गः–" पूर्वं तिलोदकं कृत्वा ह्यामश्राद्धं तु कारयेत्। प्रत्याब्दे न भवेत् पूर्वं परेऽहनि तिलोदकम् ॥ पक्षश्राद्धं हिरण्येन अनुव्रज्य तिलोदकम्।" न च नित्यतर्पणस्यायं परेऽह्युत्कर्षः। न तु श्राद्धाङ्गतर्पणमस्तीति वाच्यम्। "यस्तर्पयति तान् विप्रः श्राद्धं कृत्वा परेऽहनि। पितरस्तेन तृप्यन्ति न चेत्कु-प्यन्ति वै भृशम् ॥" इति गार्ग्येण फलनिन्दार्थवादाभ्यामङ्गत्वेनोक्तेः। श्राद्ध-प्रक्रमाद्वार्षिकम्। बृहन्नारदीयेऽप्याब्दिकं प्रक्रम्य–"परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितॄन्। तस्य ते पितरः क्रुद्धाः शापं दत्त्वा व्रजन्ति हि ॥" पितृश-ब्दश्च श्राद्धेज्यवर्गपरः। तेन तर्पणस्य पशुपुरोडाशयागवत् प्रस्तरप्रहरणवच्चेष्ट-देवतासंस्कारकता। तेनाब्दिके दिने नित्यं स्वपित्रादितर्पणं कार्यमेव। श्राद्धा-ङ्गभूतस्यैव परेद्युरुक्तेः। तदुक्तम्–" प्रत्यब्दाङ्गं तिलं दद्यान्निषिद्धेऽपि परेऽहनि। वर्गैकस्य वचो येषामन्येषां तु विवर्जयेत् ॥" क्वचिद्विशेषमाह गर्गः–"कृष्णे

और अलभ्य योग ये एक साथ आ पड़ें तो देवताके भेदसे दो श्राद्धोंको करना चाहिये, इसमें यही निमित्तका नियम है, पहले श्राद्धका करना कारण है। माता-पिताके श्राद्धमें तो सब श्राद्धोंमें पिताका श्राद्ध प्रथम होता है। माधवीयमें स्मृतिसंग्रहका कथन है कि कामश्राद्धके तन्त्रसे नित्यश्राद्धका तन्त्र सिद्ध होता है। अब श्राद्धके अंग तर्पणको लिखते हैं, पारिजात और पृथ्वीचन्द्रोदयमें गर्गका कथन है कि पहले तिल, जलदान करके आमश्राद्ध करे। वार्षिकश्राद्धमें पहले दिन नहीं दे, दूसरे दिन तिलांजलि देनी चाहिये। यदि कोई कहे कि नित्यतर्पणका ही प्रथम दिन यह उत्कर्ष लिखा है श्राद्धांगतर्पणका नहीं है, सो यथार्थ नहीं है। कारण कि इस गर्गके कथनसे फलकी निन्दा और अर्थवादसे अंग लिखा है कि जो ब्राह्मण श्राद्धसे पितरों-को दूसरे दिन तृप्त करता है उसके पितर तृप्ति पाते हैं, और कभी क्रोधित नहीं होते। श्राद्धके प्रकरणसे वार्षिक लेनी चाहिये। बृहन्नारदीयमें भी वार्षिकके प्रकरणमें यह कहा है कि श्राद्धका करनेवाला जो मनुष्य दूसरे दिन पितरोंको तर्पण नहीं करता, वे पितर उसको क्रोधसे शाप देकर चले जाते हैं इस वाक्यमें पितृशब्द श्राद्धमें पूजने योग्योंके वर्गका बोधक है, इससे तर्पण, पशु, पुरोडाश, यज्ञके समान है और प्रस्तर प्रहरणके तुल्य इष्ट देवताओंका संस्कार है। इससे वार्षिकके दिन अपने पिता आदिका तर्पण सदा करना, श्राद्धका अंग ही तर्पण दूसरे दिन लिखा है। वही कहा है कि प्रतिवर्ष निषिद्ध तिथिमें परदिन श्राद्धके अंग तिल उनको दे, जो एक कुलमें हों, औरोंको त्याग देना। किसी स्थलमें तो गर्गने

भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पितॄणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् ॥" तर्पणं तिलतर्पणम् । निषिद्धाहेऽपीत्युक्तेः । 'सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ।' अत्र सप्तमीनिर्देशात् अङ्गता स्फुटैव तत्र जयान् जुहुयात् । मन्द्रं प्रायणीयायां मन्द्रं प्रातःसवने इत्यादिवत् । अस्यापवादो बृहन्नारदीये–"वृद्धिश्राद्धे सापिण्ड्यां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके । संवत्सरविमोके च कुर्यात्तु तिलतर्पणम् ॥" तदयमर्थः–दर्शे विप्रनिमन्त्रणोत्तरं पाकारम्भोत्तरं वा श्राद्धप्रयोगस्यारब्धत्वात् ब्रह्मयज्ञोत्तरं नित्यतर्पणम् । नवश्राद्धाङ्गतर्पणस्य तन्त्रेण प्रसङ्गेन वा सिद्धिः । ततः पूर्वं वैश्वदेवोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे श्राद्धाङ्गतर्पणं पृथक्कार्यम् । पित्रोर्वार्षिके नित्यतर्पणं तिलवर्ज्यं कार्यम् । "नैव श्राद्धदिने कुर्यात्तिलैस्तु पितृतर्पणम् । श्राद्धं कृत्वापराह्णे च तर्पणं तु तिलैः सह ॥ " इति वचनात् । "सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोर्मृतेऽहनि । तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत् पितृघातकः ॥" इति स्मृतिरत्नावल्यां वृद्धमनूक्तेश्च । अत्र नित्यतिलतर्पणे तिलमात्रनिषेधो न तु तर्पणस्य तिलैरित्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः । यत्तु कातीयम्–"उपरागे पितुः श्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे । निषिद्धेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥" इति । तत् परेद्युः श्राद्धाङ्गतर्पणविषयमिति केचित् ।

विशेष लिखा है कि भाद्रपदमासके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना होता है, उसमें प्रतिदिन पितरोंका तर्पण निषिद्ध दिनमें भी करना चाहिये । यहाँ निषिद्ध दिनमें भी कहनेसे तर्पण तिलोंसे लेना चाहिये; महालयमें तर्पण एकबार अगले दिन और अष्टकाओंमें पिछले दिनमें होता है । यहां सप्तमीके निर्देशसे अंगता प्रत्यक्ष है । वहां जयोंका होम प्रातःसवन में करना; इसके ही समान तर्पण करे । इसका अपवाद बृहन्नारदीयमें कहा है कि वृद्धिश्राद्ध, सपिंडी, प्रेतश्राद्ध, मासिक, वर्षका अंत इनमें तिलसे तर्पण करे, इस कारण यह अर्थ है कि अमावस्याको ब्राह्मणोंके निमंत्रण वा पाकके प्रारम्भके उपरान्त श्राद्धका आरम्भ होता है, इससे ब्रह्मयज्ञके उपरान्त नित्यके तर्पणसे ही नवश्राद्धका अंग तर्पण भी तंत्रसे वा प्रसंगसे सिद्ध हो सकता है । इससे प्रथम और विश्वेदेवाओंके उपरान्त ब्रह्मयज्ञ करनेमें तो श्राद्धका अंग तर्पण पृथक् करना चाहिये । मातापिताके वार्षिकमें तो नित्यतर्पण तिलोंके विना उचित है, कारण कि यह कथन है कि श्राद्धके दिन तिलोंसे पितृतर्पण न करना चाहिये, श्राद्ध करनेके उपरान्त अपराह्णमें तिलोंसे तर्पण करे । स्मृतिरत्नावलीमें वृद्धमनुका भी कथन है कि सप्तमी, रविवार, मातापिताके मरणदिनमें जो तिलोंसे पितृतर्पण करता है वह पितृघातक कहाता है, यहां नित्यतर्पणमें तिलोंका निषेध लिखा है, तर्पणका नहीं; नहीं तो ' तिलैः ' यह पद व्यर्थ हो जायगा । जो कातीयने लिखा है कि ग्रहण, पिताका श्राद्ध, व्यतीपात, अमावस्या, संक्रांति इनमें निषिद्ध समय हो तो भी तिलोंसे ही तर्पण करे, वह पहले दिन श्राद्धके

श्राद्धाशक्तस्य तत्स्थानापन्नतर्पणविषयमिति युक्तम् । सकृन्महालये परेद्युस्तर्पणम् । अष्टकासु तु सप्तम्यष्टमीश्राद्धयोरन्ते तदैव वर्गद्वयस्य । अन्वष्टक्ये तु मातृवर्गस्यापि तीर्थश्राद्धे दर्शवत् । माघाद्यादिष्वष्टकावदन्ते अनेकश्राद्धसंपाते तु यदि तत्प्रसङ्गसिद्धिस्तदा तदीयमेव तर्पणम् । तन्त्रत्वे तु श्राद्धसमसंख्यत्वे आदावन्ते वा विषमसंख्यायां बह्वनुरोध इति । तस्माच्छ्राद्धाङ्गतर्पणं सिद्धम् । तद्विधिः संग्रहे-"स्नात्वा तीरं समागत्य उपविश्य कुशासने । संतर्पयेत्पितॄन्सर्वान् स्नात्वा वस्त्रं च धारयेत् ॥" तर्पणोत्तरं नित्यस्नानं कृत्वेत्यर्थः । "अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले । नामगोत्रस्वधाकारैर्द्वितीयान्तेन तर्पयेत् ॥" अत्र वस्वादिरूपतोक्ता स्मृत्यर्थसारे-'वसुरुद्रादितिसुतान् श्राद्धार्थे तर्पयेत्पितॄन् ।' तत्र बह्वृचानां दक्षिणेनैव । 'अनादेशे दक्षिणं प्रतीयात्' इति सूत्रात् । अत्र प्रत्यञ्जलि मन्त्रावृत्तिः । निर्वापवत्तत्संध्यार्घ्यदानवच्च द्रव्यभेदात् । अवघातवेदिप्रोक्षणादौ तु द्रव्यैकत्वान्न मन्त्रावृत्तिः । केचित्तु परिव्याणमन्त्रवत्क्रियमाणानुवादित्वेन करणत्वाभावात्सकृदिच्छन्ति । तन्न । तत्रापूपद्रव्यैक्यात् परवी-

---

अंगतर्पणके विषयमें है, यह कोई कहते हैं । यह तो युक्त है कि जो श्राद्ध करनेमें सामर्थ्य न हो तो उसके स्थानमें तर्पण करे यह कहा है । महालयमें एकवार अगले दिन तर्पण करे, अष्टका, सप्तमी और अष्टमीके श्राद्धमें श्राद्ध किये उपरान्त दोनों वर्गोंका तर्पण करे । अन्वष्टकामें तो मातृवर्गका भी तर्पण तीर्थश्राद्धमें दर्शके समान करना चाहिये । माघकी पूर्णिमा वर्षाआदिमें तो अष्टकाके समान अन्तमें करे, जहां अनेक श्राद्ध एकसाथ आपडें वहां यदि प्रसंगसे सिद्धि हो तो उसी श्राद्धका तर्पण करे, तंत्र हो और श्राद्धोंकी संख्या तुल्य हो तो आदिमें वा अन्तमें करे, संख्या विषम हो तो बहुतोंके अनुरोधसे करे । इससे श्राद्धका अंग तर्पण सिद्ध हुआ । उसकी विधि संग्रहमें इस प्रकार है कि, स्नान करके किनारेपर आकर और कुशासनपर बैठकर सब पितरोंको तृप्त करे, और तर्पणके उपरान्त नित्यस्नान करके वस्त्रोंको पहरे, फिर अपसव्य होकर और बायें घुटनेको भूमिपर नवाकर नामगोत्र, स्वधाकार कहकर द्वितीयांत (पितर) उच्चारण कर तर्पण करे । वहां वसु आदि रूपता स्मृत्यर्थसारमें लिखी है, वसुरूप, रुद्ररूप, आदित्यरूप पितरोंको श्राद्धके अर्थ तृप्त करे । वहां तर्पण बह्वृचोंको दक्षिणसे करे, कारण कि जहां कहीं आज्ञा न हो वहां दक्षिण ओरसे करे, यह सूत्र है । यहां प्रतिअंजली मंत्र पढ़े, निर्वाप और संध्याके अर्घ्यदानके समान द्रव्योंसे भेद होता है, अवघात (कूटना) वेदीप्रोक्षण आदिमें एक द्रव्य होनेसे मन्त्रोंकी आवृत्ति नहीं होती, कोई तो 'परिव्याण' मंत्रके सदृश क्रियमाण कर्मका अनुवाद होनेसे करणत्वका अभाव कहते हैं और एक ही मंत्र पढ़ना चाहते हैं, सो उचित नहीं कारण

रसीतिकरणीभूतमन्त्रान्तरसत्त्वादन्यतरेण व्यवधानापत्त्योभयोः कारणत्वायोगात् कर्तृभेदेन विकल्पायोगाच्च क्रियमाणानुवादित्वम्। न त्वत्र तथेति बौधायनादि-वचनात् करणत्वमेव। तेनावृत्तिरेव युक्ता। एवं नित्येऽपि। यत्तु संग्रहनाम्ना पठन्ति–"पित्रोः क्षयाहे संप्राप्ते यः कुर्यान्नित्यतर्पणम्। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं तत्तोयं रुधिरं भवेत्॥ सर्वदा तर्पणं कुर्याद्ब्रह्मयज्ञपुरःसरम्। मृताहे नैव कर्तव्यं कृतं चेन्निष्फलं भवेत्॥ २॥" तत्समूलत्वे सति फलविषयम्। यच्च पठन्ति–कपिलः–"मन्वादिषु युगाद्यासु दर्शसंक्रमणेषु च। पौर्णमास्यां व्यतीपाते दद्यात्पूर्वं तिलोदकम्॥ अर्धोदये गजच्छाये षष्ठीषु च महालये। भरण्यां च मघाश्राद्धे तदन्ते तर्पणं विदुः॥ २॥" शौनकः–"मातापित्रोर्मृताहे च परेऽहनि तिलोदकम्। कारुण्यश्राद्धविषये सद्यो दद्यात्तिलोदकम्॥" एतन्निर्मूलम्। अथ तिलतर्पणनिषेधः। गार्ग्यः–"भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दा-भृगुमघासु च। पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥" स्मृत्यर्थसारे–'विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम्।' अर्धं तदेव। 'वृद्धौ सत्यां च तन्मासि नेत्याहुस्तिलतर्पणम्।' हेमाद्रौ मरीचिः–"सप्तम्यां रविवारे च ग्रहे जन्मदिने तथा। निशासंध्यासु पुत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥" यत्तु

कि वहां अपूपद्रव्यकी एकतासे 'परवीरसि' इस कारणभूत (रूप) मन्त्रान्तरके होनेसे किसीसे व्यवधानकी आपत्तिसे दोनोंकी कारणताका अयोग है, और कर्ताके भेदसे विकल्प-का भी अयोग है, इससे होनेवाले कर्मका अपवाद है। यहां वैसा नहीं जानना इससे बौधायन आदिके कथनसे करणत्व ही है, इससे आवृत्ति ही करनी युक्त है। इसी प्रकार नित्यमें भी जानना। और जो संग्रहके नामसे पढ़ते हैं कि माता पिताके मरणदिनमें जो नित्य तर्पण करता है वह श्राद्ध आसुर और वह जल रुधिररूप होता है। ब्रह्मयज्ञके उपरांत सदा तर्पण करे, क्षयाहके दिन न करे, यदि करे तो फलहीन होता है। यह प्रमाण सहित हो तो फलविषयक जानना और जो पढ़ते हैं कि कपिलका कथन है, मन्वादि, युगादि, अमावस्या, संक्रांति, पूर्णिमा, व्यतीपात इनमें पहले तिल, जल दे। अर्धोदय, गजच्छाया, षष्ठी, महालय, भरणी, मघाश्राद्ध इनमें श्राद्धके पीछे तर्पणको कहते हैं, शौनकने कहा है कि मातापिताके मरणदिनमें अगले दिन तिलाञ्जली दे, करुणाके श्राद्धमें तो उसी समय तिल, जल देना, यह वाक्य निर्मूल है। अब तिलतर्पणका निषेध लिखते हैं, गार्ग्यने कहा है कि आदित्यवार, मंगलवार, त्रयोदशी, भृगुवार, नन्दा और मघामें पिंडदान, मट्टीसे स्नान, तिलतर्पण न करना चाहिये। स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि विवाह, व्रत, चूडाकर्म, वर्ष आधा-वर्ष, चौथाई वर्ष और वृद्धि तथा मासिक इनमें तिलतर्पण न करे। हेमाद्रिमें मरीचिने लिखा है कि आदित्यवार, सप्तमी, ग्रहण, जन्मका दिन, रात्रि, संध्या इनमें पुत्रकी इच्छावाले मनुष्यको तिलोंसे तर्पण न करना चाहिये। और संग्रहमें लिखा है

संग्रहे–"नंदायां भार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च । भरण्यां भानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा ॥ अयनद्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु ॥ पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ २ ॥" इति तच्चिन्त्यम् । '[1]पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।' इत्यादिविरोधात् । अत्रापवादः पृथ्वीचन्द्रोदये–"तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥ " स्मृत्यर्थसारेऽपि–'तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा ।' इति । गोभिलः–"तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्वितम् । तदभावे निषिंचेत्तु दर्भमन्त्रेण वा पुनः ॥ पतितस्य तिलोदकं वक्ष्यामः । अथ वृद्धिश्राद्धम् । तन्निमित्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे–"जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च । पितॄन्नान्दीमुखान्नाम तर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥ देवव्रतेषु चाधानयज्ञपुंसवनेषु च । नवान्नभोजने स्नाने ऊढायाः प्रथमार्तवे ॥ देवारामतडागादिप्रतिष्ठासूत्सवेषु च । राजाभिषेके बालान्नभोजने वृद्धिसंज्ञकान् ॥ वनस्थाद्याश्रमं गच्छन्पूर्वेद्युः सद्य एव वा । पितॄन् पूर्वोक्तविधिना तर्पयेत् कर्मसिद्धये ॥ ४ ॥" विष्णुपुराणे–"यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः ॥ पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥ " तत्रैव–'नाम-

---

कि, शुक्रवार, नन्दा तिथि, कृत्तिका, मघा, भरणी, रविवार, गजच्छाया, इसी प्रकार दोनों अयन, मन्वादि, युगादि इनमें पिंडदान, मिट्टीसे स्नान, तिलतर्पण न करना चाहिये यह चिन्त्य है कारण कि सावधान होकर जो मनुष्य श्राद्धमें तिल मिला जल भी देता है, इत्यादि वचनोंसे विरोध है । इसका अपवाद पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है कि तीर्थ, विशेष तिथि, गया, प्रेतपक्ष इनमें निषिद्ध दिनमें भी तिलतर्पण करना । स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि उत्तम तिथि और प्रेत कर्ममें सदा तर्पण करे । गोभिलका कथन है कि तिल न हो तो निषिद्ध दिनमें भी सुवर्ण चांदीसे, वे न हों तो कुशा वा मन्त्रोंसे तर्पण करना चाहिये । पतितका तिलोदक वर्णन करेंगे ॥ अब वृद्धिश्राद्ध वर्णन करते हैं–उसका निमित्त पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि जन्म, यज्ञोपवीत, पुत्रका विवाह इनमें नान्दीमुख नामक पितरोंको विधिसे तृप्त करे और देवके व्रत, आधान, यज्ञ, पुंसवन, नवान्न भोजन, स्नान, विवाहिता स्त्रीकी प्रथम ऋतु, देव, बाग, सरोवरकी प्रतिष्ठा, उत्सव, राजाका अभिषेक, बालकका अन्नप्राशन, वानप्रस्थ और संन्यासके निमित्त गमन इनमें वृद्धि संज्ञक पितरोंको प्रथम दिन वा शीघ्र उसी दिन कर्मकी सिद्धिके निमित्त पूर्वोक्त विधिसे तर्पण करना चाहिये । विष्णुपुराणमें यह कहा है कि यज्ञ, विवाह, प्रतिष्ठा, मेखलाका बंधन और त्याग, पुत्रजन्म तथा वृषोत्सर्गमें वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये । इसमें

---

१ जो शीघ्र जलमें स्नान करके पितरोंका तिलकुशासे तर्पण करता है उसकी परम गति होती है, मन्वादि युगादिमें जो तिलाञ्जलि देते हैं उनके पितरोंकी सहस्रवार्षिक तृप्ति होती है ।

कर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ।' इत्युक्तेर्निष्क्रमान्नप्राशनयोर्न श्राद्धमिति मैथिलाः । तन्न पूर्वोक्तविरोधात् । ' नानिष्ट्वा' इति निषेधात् । 'सुतोत्पत्तौ तथा श्राद्धे अन्नप्राशनिके तथा ।' इति राजमार्तण्डाच्च ।यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे-'सूर्येन्द्वोः कर्मणी ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते ।' इति, तत्तेषामेवेति कल्पतरुः ॥ बह्वृचकारिकायाम्-"स्यादाभ्युदयिकं श्राद्धं वृद्धिपूर्तेषु कर्मसु । पुंसः सवनसीमन्तचौलोपनयनेष्विह ॥ विवाहे चानलाधेयप्रभृतिश्रौतकर्मणि ॥ इदं श्राद्धं प्रकुर्वन्ति द्विजा वृद्धिनिमित्तकम् ॥ अन्यैः षोडशसंस्कारश्रावण्यादिष्वपीष्यते । वाप्याद्युद्यापनादौ तु कुर्युः पूर्तनिमित्तकम् ॥ ३ ॥" बोपदेवकालादर्शौ- "सीमन्तव्रतचौलनामकरणान्नप्राशनोपायनस्नानाधानविवाहयज्ञतनयोत्पत्तिप्रतिष्ठासु च । पुंसूत्यावसथप्रवेशनसुताद्यास्यावलोकाश्रमस्वीकारक्षितिपाभिषेकदयिताद्यर्तौ च नान्दीमुखम् ॥" यत्तु कामधेनौ-" जलाशयप्रतिष्ठायां वृषोत्सर्गादिकर्मसु । वत्सराभ्यन्तरे पित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि ॥ वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समाचरेत् ।" इति । तत्र जलाशये वृद्धिश्राद्धस्य निषेधः न तु कर्माङ्गस्येति केचित् ॥ अन्ये त्वस्य निर्मूलतामाहुः ॥ श्राद्धकौमुद्यां निर्णयामृते च मात्स्ये-"अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च निषेके

मैथिल यह कहते हैं कि बालकके नामकरण और मुंडनमें करे, इस कथनसे निष्क्रमण और अन्नप्राशनमें श्राद्ध न करे, सो यथार्थ नहीं, कारण कि पूर्वोक्त वाक्योंका विरोध है और 'नानिष्ट्वा' यह निषेध है और राजमार्तण्डका भी कथन है कि पुत्रजन्म और अन्नप्राशनमें श्राद्ध होता है । जो छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि सूर्य और चन्द्रमाके जो कर्म हैं उनमें श्राद्ध नहीं होता यह उन छंदोगोंके निमित्त है,यह कल्पतरु लिखते हैं । बह्वृचकारिकामें कहा है कि वृद्धि, पूर्त्त, पुंसवन, सीमन्त, मुण्डन, यज्ञोपवीत इनमें वृद्धिश्राद्ध होता है और विवाह तथा अग्न्याधान आदि वेदोक्त कर्ममें वृद्धिनिमित्तक आभ्युदयिक श्राद्ध होते हैं और अन्य कहते हैं कि षोडश संस्कार और श्रावणी आदिमें भी इष्ट है और बावडी आदिके उद्यापन आदिमें पूर्त कर्मके निमित्त करे । बोपदेव और कालादर्शका कथन है कि सीमंतोन्नयन, यज्ञोपवीत, मुण्डन, नामकरण, अन्नप्राशन, उपायन, स्नान, अग्न्याधन, विवाह, यज्ञ, पुत्रजन्म, प्रतिष्ठा, पुंसवन, गृहप्रवेश, पुत्रमुखदर्शन, आश्रमका स्वीकार, राज्याभिषेक, स्त्रीकी प्रथम ऋतु इनमें नांदीमुख श्राद्ध किया जाता है । जो कामधेनुमें कहा है कि जलाशयकी प्रतिष्ठा, वृषोत्सर्ग आदि कर्म, वर्षके भीतर माता पिताका वृषोत्सर्ग इसमें वृद्धिश्राद्ध न करे, इसके सिवाय अन्यत्र करे, यह वाक्य जलाशयमें वृद्धिश्राद्धका निषेधक है, कर्मांगका निषेधक नहीं है, यह कोई कहते हैं और अन्य तो इस वाक्यको निर्मूल कहते हैं । श्राद्धकौमुदी और निर्णयामृतमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि अन्नप्राशन, सीमंत, पुत्रकी उत्पत्ति, पुंसवन, गर्भाधान, नये गृहके प्रवेशमें और देव, जल, वृक्ष

च नवे वेश्मप्रवेशने ॥ देववृक्षजलादीनां प्रतिष्ठायां विशेषतः । तीर्थयात्रावृषो-त्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ " इदं चावश्यकम् । " वृद्धौ न तर्पिता ये तु पितरो गृहमेधिभिः । तद्धीनमफलं ज्ञेयमासुरो विधिरेव सः ॥" इति शाता-तपोक्तेः । अत्र श्राद्धत्रयं स एवाह–" मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनन्त-रम् । ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ " तत्कालमाह पृथ्वी-चन्द्रोदये गार्ग्यः–" मातृश्राद्धं तु पूर्वेद्युः कर्माहनि तु पैतृकम् । मातामहं चोत्त-रेद्युर्वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ " अत्राप्यशक्तौ स एव–" पृथक्दिनेष्वशक्तश्चेदे-कस्मिन् पूर्ववासरे । श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम् ॥ " इति । वृद्ध-मनुरपि–"अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः । पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम् ॥ " अत्र–' महत्सु पूर्वेद्युस्तदहरल्पेषु ' इति गृह्यपरिशिष्टाद्व्यवस्था ज्ञेया । तच्च प्रातरेव । ' पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ' इति शातात-पोक्तेः । अत्र प्रातःशब्दः सार्धप्रहरपरः । ' प्रहरोऽप्यर्धसंयुक्तः प्रातरित्यभि-धीयते । ' इति गार्ग्योक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः । इदं च पुत्रजन्मातिरिक्तविषयम् । तदाहात्रिः–" पूर्वाह्णे वै भवेद्वृद्धिर्विना जन्मनिमित्तकम् । पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं तात्कालिकं बुधः ॥" इति । एतदनियतनिमित्तपरम् । " नियतेषु निमि-

---

आदिकी प्रतिष्ठामें, विशेषकर तीर्थयात्रा, वृषोत्सर्गमें वृद्धिश्राद्ध लिखा है और यह आवश्यक है, कारण कि शातातपका कथन है कि जिन गृहस्थोंने वृद्धिमें पितरोंको तृप्त नहीं किया उसका हीनफल जानना, वह विधि राक्षस रूप है वृद्धिमें तीन श्राद्ध उसने ही लिखे हैं कि पहले मातृश्राद्ध, फिर पितृश्राद्ध, फिर मातामहोंका श्राद्ध करे, उसका काल पृथ्वीचन्द्रोदयमें गार्ग्यने लिखा है कि, पूर्वदिनमें मातश्राद्ध, कर्मदिनमें पितृश्राद्ध, उत्तरदिनमें मातामहश्राद्ध होता है इसमें भी अशक्ति हो तो वृद्धशातातपने लिखा है कि पृथक् पृथक् दिनमें न कर सके तो पूर्व दिनमें ही तीन श्राद्ध करे, और विश्वेदेवा तंत्रसे करे । वृद्धमनुका भी कथन है कि पृथक् समय न मिले तो पहले दिन बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वाह्णमें मातृपूर्वक करे, यहां बहुतोंके मतमें पहले दिन और अल्पोंके मतमें उसी दिन करे, इस गृह्यपरिशिष्टके कथनसे व्यवस्था जाननी उचित है वह प्रातःकाल होता है, कारण कि शातातपने कहा है कि पार्वण अपरा-ह्णमें और वृद्धिश्राद्ध प्रातःकालमें होता है, यहां प्रातःकाल शब्दसे डेढ़पहर लेना, कारण कि गार्ग्यने कहा है कि आधेसे युक्त प्रहरको प्रातःकाल कहते हैं, यह पृथ्वीचन्द्रो-दयमें लिखा है, यह पुत्रजन्मसे पृथक्के विषयमें है । वही अत्रिने लिखा है कि जन्मनिमि-त्तकको त्यागकर वृद्धिश्राद्ध पूर्वाह्णमें होता है, पुत्रजन्ममें तो बुद्धिमान् मनुष्य उसी समय श्राद्ध करे, यह वाक्य उन निमित्तोंमें है जिनका नियम नहीं है, कारण कि लौगाक्षिकी

तेषु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् । तेषामनियतत्वे तु तदानन्तर्यमिष्यते " इति लौगाक्षिस्मृतेः । आधानाङ्गं नान्दीश्राद्धं त्वपराह्ण एव । ' आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे सिद्धान्नेन तु मध्यतः । पार्वणं वाऽपराह्णे तु वृद्धिश्राद्धं तथाग्निकम् ॥" इति निर्णयामृते गालवोक्तेः । ' नान्दीमुखाह्नयं मातराब्दिकं त्वपराह्णतः । ' इति विष्णूक्तेश्च । इदं च मातृपितृमातामहादिक्रमेण नवदैवत्यं कार्यम् । तत्र मातामहाः सपत्नीकाः । 'वृद्धप्रमातामहप्रमातामहमातामहानां सपत्नीकानाम् ' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे गद्यरूपेण पाठात् । हेमाद्रौ शंखः— नान्दीमुखे सत्यवसू संकीर्त्यौ वैश्वदेविके ॥ ' वृद्धपराशरः–" नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम् । पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः ॥ " यत्तु वृद्धवसिष्ठः— " नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् ॥ " यच्च स्मृत्यर्थसारे–' वृद्धंमुख्यास्तु पितरो वृद्धिश्राद्धेषु भुञ्जते ।' इति । यच्च गारुडे--' व्युत्क्रमप्रतिपादनं ' तच्च शाखान्तरविषयम् ॥ पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः, इति बह्वृचपरिशिष्टे कात्यायनेन चानुलोम्याम्नातात् । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । यत्तु केचिद्वृद्धिपदं पित्रादिषु प्रयुञ्जते, तन्न । "अनस्म-

---

स्मृतिमें लिखा है कि नियत निमित्तोंमें प्रातःकाल और अनियत निमित्तोंमें तत्काल वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये । आधानका अंग तो नान्दीमुख अपराह्णमें होता है, कारण कि निर्णयामृतमें गालवका कथन है कि आमान्नसे श्राद्ध पूर्वाह्णमें, सिद्धान्नसे मध्याह्नमें पार्वण अपराह्णमें और वृद्धिश्राद्ध भी साग्निकको अपराह्णमें होता है नान्दीमुख प्रभातमें और आब्दिक अपराह्णमें करे, यह विष्णुने कहा है । इस श्राद्धमें माता, पिता, मातामह आदिके क्रमसे नौ (९) देवता करने चाहिये उनमें मातामह आदि तीन सपत्नीक करने, कारण कि पृथ्वीचन्द्रोदयमें गरुडका संस्कृतरूप वाक्य लिखा है कि वृद्धिमें सपत्नीक मातामहोंको देना । हेमाद्रिमें शंखका कथन है कि नान्दीमुखमें सत्यवसु विश्वेदेवा कहने चाहिये । वृद्ध पराशरने लिखा है कि नांदीमुख श्राद्धदेवताओंको प्रदक्षिणा क्रमसे कुशासन दे, प्रधान पितरवाले देवताओंको भी इसी प्रकार प्रदक्षिण क्रमसे आसन देना, यह स्मृति है जो वृद्धवसिष्ठने लिखा है कि नान्दीमुख और विवाहमें प्रपितामहसे लेकर और दूसरे कर्मोंमें पितासे लेकर बुद्धिमान् मनुष्य नामोंका उच्चारण करे । और जो स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि वृद्धिश्राद्धमें वृद्धमुख्य पितर भोजन करते हैं । और जो गारुडमें इसके विपरीत लिखा है, वह शाखांतरके विषयमें जानना, कारण कि बह्वृचपरिशिष्टमें कात्यायनने यह अनुलोम लिखा है कि पिता, पितामह और प्रपितामहोंके निमित्त (स्वधा है) पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसी प्रकार कहा है जो कोई पिताआदिकोंमें वृद्धपद लगाते हैं सो उचित नहीं, कारण कि पृथ्वीचन्द्रोदयमें संग्रहका कथन है कि जिनमें वृद्धिशब्द नहीं और जिनका रूप, गोत्र, नाम नहीं उनका तिल आदिके

वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम् । अनाम्नामतिलाद्यैश्च नान्दीश्राद्धं तु सव्य- वत् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदये संग्रहोक्तेः । न च निषेधादेव विधिः कल्प्यत इति वाच्यम् । प्रौष्ठपदीश्राद्धे प्रपितामहात्परेषां वृद्धपित्रादीनां देवतात्वान्नान्दीश्राद्ध- त्वसाम्येनेहापि तत्प्राप्तौ निषेधात् ।· गोत्रनामादिनिषेधस्तु–'शुभार्थी प्रथमा- न्तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेत्' इत्युपक्रम्य 'अनस्मद्वृद्धशब्दानाम्' इत्युक्तेः संकल्प- श्राद्धपरः ॥ 'सपिण्डके तु सर्वं भवति' इति प्रयोगपारिजातः । 'गोत्रनामभि- रामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत्।' इति छन्दोगपरिशिष्टे तद्विधानात्। यत्तु ब्राह्मे–"पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः ॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखेधिताः । ते तु नान्दीमुखा नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते ॥ २ ॥" इति । यच्च मार्कण्डेयपुराणे–'ये स्युः पितामहादूर्ध्वं ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः।' इति तज्जीवत्पित्रादित्रिककर्तृकवृद्धिश्रा- द्धविषयम्। तेन तस्येदमावश्यकम्। यत्तु विष्णुः–'पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात्' इति, तद्दर्शादिविषयमिति कल्पतरुः। मदनपारिजातेऽप्येवम्। हेमाद्रिस्तु–"नान्दीमुखानां श्राद्धं तु कन्याराशिगते रवौ । पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा ॥" इति–प्रौष्ठपदीश्राद्धकवाक्यत्वात्तत्रैव । पूर्वेषां देवतात्व-

---

विना सव्य होकर नांदीमुख श्राद्ध करे। यदि कोई कहे कि निषेधसे ही विधिकी कल्पना करेंगे सो यथार्थ नहीं, क्योंकि प्रौष्ठपदीके श्राद्धमें प्रपितामहसे अगले वृद्धप्रपितामह आदिके देवता होनेसे नांदीश्राद्धकी समता है, इससे यहां भी उसकी प्राप्तिका निषेध कहा है। गोत्र- नामआदिका निषेध तो संकल्प श्राद्धके विषयमें है, कारण कि यह वाक्य है कि शुभार्थी प्रथमांत पदसे वृद्धिमें संकल्प करे, इस प्रकरणमें यह भी लिखा है कि जिसमें अस्मद्वृद्ध शब्द न हो। सपिंडीमें तो सब होता है, यह प्रयोगपारिजातमें कहा है; कारण कि छन्दोग- परिशिष्टमें यह विधान है कि गोत्र और नामको कहकर पितरोंको अर्घ्य देना चाहिये। जो ब्रह्मपुराणमें कहा है कि पिता, पितामह, प्रपितामह ये तीन पितर अश्रुमुख लिखे हैं और उनसे पहले जो प्रजा और सुखवाले हैं वे पितर नांदीमुख कहाते हैं; कारण कि नांदी नाम समृद्धिका है। जो मार्कण्डेय पुराणमें कहा है कि, जो पितामहसे ऊपरके हैं वे नांदीमुख कहाते हैं, ये दोनों वाक्य उस वृद्धिश्राद्धके विषयमें हैं, जिसको जीवत्पिता आदि करते हैं, इससे उसके निमित्त यह आवश्यक है और जो विष्णु कहते हैं कि पिता, पितामह, प्रपितामहके जीते हुए न करे, यह दर्शविषयक है, ऐसा कल्पतरुका मत है। और पारिजातमें भी ऐसे ही लिखा है। हेमाद्रिने तो यह लिखा है कि कन्याके सूर्यमें पूर्णिमाको नांदीमुख पितरोंका श्राद्ध वराहपुराणके कथनानुसार करे, इस कथनसे भादोंकी पूर्णिमासीके श्राद्धकी एकवाक्यतासे उसी स्थानमें पूर्वपितर देवता हैं। यहां सत्य

मित्याह । अत्र सत्यवसू विश्वेदेवावित्युक्तं प्राक् । यत्तु शातातपः–'मातुः श्राद्धं तु युग्मैः स्याद्दैवं प्राङ्मुखैः पृथक् । ' इति तद्भिन्नप्रयोगमातृश्राद्धपरम् । यच्च मार्कण्डेयपुराणे–' विश्वेदेवविहीनं तु केचिदिच्छन्ति मानवाः । इति । तद्भिन्नश्राद्धद्वये विश्वेदेवविकल्पार्थम् । प्रयोगैक्ये तु तदेव नियम इति हेमाद्रिः । एतच्च मातृपूजापूर्वकं कार्यम् । " अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत् । तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः ॥ " इति शातातपोक्ते कौर्मेऽपि–" पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गंधाद्यैर्भूषणैरपि । पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः ॥" इति । छन्दोगपरिशिष्टे–"कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः । पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥ प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु । अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥ कुड्यलग्नां वसोर्धारां सप्तधारां घृतेन तु । कारयेत् पञ्चधारां वा नातिनीचां न चोच्छ्रिताम् ॥ आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः । षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥ ४ ॥ " अत्र सर्वेष्विति ग्रहणात् ग्रह्यज्ञतद्विकारेष्वपि नित्यं श्राद्धम् । 'नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धे कर्म किंचित्समाचरेत् ' इति शातातपोक्तेश्च ।

वसु विश्वेदेवा होते हैं, यह पहले कथन कर आये जो शातातपने लिखा है कि मातृश्राद्ध विश्वेदेवाओंसे हीन पूर्वाभिमुख दो ब्राह्मणोंसे पितासे भिन्न होता है, यह उस मातृश्राद्धके विषयमें है जो पितासे भिन्न किया जाता है । जो मार्कण्डेयने लिखा है कि कोई मनुष्य विश्वेदेवाओंसे हीनश्राद्ध की इच्छा करते हैं, यह वाक्य भी पृथक् पृथक् किये मातृश्राद्ध आदि दो श्राद्धोंमें विश्वेदेवाओंके विकल्पके ही निमित्त है, एक प्रयोगमें तो विश्वेदेवाओंका नियम है; यह हेमाद्रिने कहा है । यह मातृपूजापूर्वक करना चाहिये; कारण कि शातातपका कथन है कि मातृकाओंकी अर्चा किये विना जो श्राद्धमें परोसता है, तो रोषमें भरकर मातृका उसकी हिंसा करनेकी इच्छा करती हैं । कूर्मपुराणमें भी लिखा है कि फूल, धूप, नैवेद्य, गंध, भूषण आदिसे मातृकाओंकी अर्चा करके बुद्धिमान् मनुष्यको तीनों श्राद्ध करने चाहिये । छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि सब कर्मोंमें गणेशसहित मातृकाओंको प्रयत्नसे पूजना चाहिये; कारण कि जो उनकी पूजा करता है उसकी वे करती हैं । शुद्ध प्रतिमामें वा कपड़ेपर लिखकर वा अक्षतोंके समूहोंमें भिन्न भिन्न नैवेद्योंसे पूजा करे, दीवालपर लगाकर घीसे सात वा पांच ' वसोर्धारा ' करे, वे न बहुत नीची न बहुत ऊंची करनी और आयु देनेवाले मंत्र सावधानीसे जपकर पीछेसे छः पितरोंके श्राद्धको प्रारम्भ करे । यहां ' सर्वेषु.' इस पदके ग्रहणसे ब्रह्मयज्ञ और उसके विकारोंमें भी श्राद्ध नित्य जानना; कारण कि शातातपने लिखा है कि श्राद्धमें पितरोंकी पूजा विना कुछ भी कर्म न करे ।

इयं च वसोर्धारा तच्छाखीयानां नियता । अन्येषां त्वनियता ॥ 'बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तम्' इत्युक्तेः । करणे त्वभ्युदयः । 'यन्नाम्नातं स्वशाखायाम्' इत्युक्तः । आयुष्याणि 'आनो भद्राः' इत्यादीनि । षड्भ्य इति मात्रादित्रिकोपलक्षणमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः । छन्दोगानां षड्दैवत्यमन्येषां नवदैवत्यामित्याशार्कः मम तु मते कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति मात्रा सहैव मातामहश्राद्धकरणात् तद्विषयमिदं षड्भ्य इति मातरस्तत्रैवोक्ताः-"गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥ देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥ धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह । गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्चतुर्दश ॥" मातरो लोकमातर इति सर्वविशेषणं तेन चतुर्दशत्वम् । यदा षोडशेति पाठस्तदा देवतान्तरम् ॥ चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते त्वन्या उक्ताः-"तिस्रः पूज्याः पितुः पक्षे तिस्रो मातामहे तथा । इत्येता मातरः प्रोक्ताः पितुर्मातुः स्वसाष्टमी ॥" आसां जीवने प्रत्यक्षपूजनम् । मृतानां त्वक्षतपुञ्जेषु इति हेमाद्रिः । "ब्रह्माण्याद्यास्तथा सप्त दुर्गाक्षेत्रगणाधिपान् । वृद्ध्यादौ पूजयित्वा तु पश्चान्नान्दीमुखान् पितॄन् ॥ मातृपूर्वान् पितॄन् पूज्य ततो मातामहानपि । मातामहीस्ततः केचिद्युग्मा भोज्या द्विजातयः ॥ २ ॥" इति । अत्र द्वादशदैवतस्य देशाचाराद्व्यवस्था । ब्रह्मा-

---

यह वसोर्धारा उनकी शाखावालोंको नियमसे जाननी और दूसरोंको नहीं, कारण कि यह लिखा है कि थोड़ा वा बहुत जो अपने गृह्यसूत्रमें लिखा है उसे करे, और दूसरी शाखाके करे तो अभ्युदय होता है, कारण कि जो अपनी शाखामें नहीं कहा उसको भी करे और आयुष्य मन्त्र-'आनोभद्रा०' इत्यादि जपे और 'षड्भ्यः' यह माता आदि तीनका उपलक्षण है यह पृथ्वीचन्द्र लिखते हैं । छन्दोगोंके श्राद्धमें छः देवता और दूसरेकेमें नौ देवता होते हैं, यह आशार्क लिखते हैं । मेरे मतमें तो कोकिलमतके अनुसारियोंमें माता, मातामह, प्रमातामह यह माताके संग ही मातामहोंका श्राद्ध करनेसे उनके विषे'षड्भ्यः' यह पूर्वोक्त कथन लिखा है । मातृका भी वहां ही लिखी हैं कि गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, आत्मदेवता, गणेशके सहित चौदह लोककी माता मातृका हैं । इस श्लोकमें 'मातरः लोकमातरः' ये दोनों पद सबके विशेषण हैं, इससे चौदह यथार्थ हैं । जब षोडश यह पाठ है, तब 'मातरः' और 'लोकमातरः' ये भी भिन्न देवता हैं । चन्द्रिकामें तो चतुर्व्विंशतिके कथनसे अन्य मातृका लिखी हैं कि तीन पिता पक्षमें और तीन मातामह पक्षमें इन पिता आदिकी छः स्त्रियोंको और दो पिता और माताकी भगिनियोंको मातृका लिखते हैं, जीती हुई हों तो इनका प्रत्यक्ष पूजन और मरी हुईयोंका अक्षत समूहपर पूजन करे, यह हेमाद्रिका कथन है । ब्रह्माणी आदि सात, दुर्गा, क्षेत्रपाल, गणेश इनका वृद्धि आदिमें पूजन करके पश्चात् नान्दीमुख पितरोंका और मातृपूर्वक पितरोंका और मातामहपूर्वक पितरोंका पूजन करके मातामही आदि तीनका अर्चन करे और कोई यह लिखते हैं कि इसमें युग्म ब्राह्मणभोजन करावे । यहां

ण्याद्याः-" ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः ॥" इत्यपरार्के उक्ताः । अत्र चौलादीनां यौगपद्ये तन्त्रतोक्ता छन्दोगपरिशिष्टे-"गणेशः क्रियमाणानां मातृभ्यः पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥" मातृभ्यः इति षष्ठचर्थे चतुर्थी । गणेशः एकानेकपुत्राणां संस्कारेष्वेकदिने एकदेशकालकर्त्रैक्यादित्यर्थः । तथा-"असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिभिः । प्रतिप्रयोगं नैव स्युर्मातरः सगणाधिपाः॥" कर्मावृत्तावपि कुत्र श्राद्धं कार्यं क्व च नेत्युक्तं तत्रैव-"आधानहोमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च । बलिकर्मणि दर्शे च पूर्णमासे तथैव च ॥ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः । एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक् ॥" एतेषु प्रतिप्रयोगं नावर्तते किंत्वादौ । एतद्भिन्ने सोमयागादौ प्रतिप्रयोगमावर्तते एव । श्राद्धमित्यर्थः । क्वचिदादावपि निषेधमाह स एव-"नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते । न सोष्यन्तीजातकर्मप्रोषितागतकर्मसु ॥ विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुमो यस्य चान्ते ॥ विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात् ॥" सोष्यन्त्या आसन्नप्रसवायाः 'सोष्यन्तीमभ्युक्ष्य' इत्युक्तं कर्म ।

द्वादश देवतावाले श्राद्धकी देशाचारसे व्यवस्था जाननी । ब्रह्माणी आदि सात मातृका अपरार्कमें ये लिखी हैं-ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा । यहां मुण्डन आदि एक वार आ पड़ें तो छन्दोगपरिशिष्टमें उनकी (कर्तव्यता एकवार करनी.) कही है, जो कर्म समूहसे किये जाय उनमें मातृकाओंका अर्चन और वृद्धिश्राद्ध एकवार होता है, भिन्न भिन्न नहीं इसका यह अर्थ है कि एक अनेक पुत्रवालोंके संस्कारोंमें एक दिन एक देश एक काल एक कर्ता होता है । इस प्रकार वाक्य है कि कर्मोंके कर्ता जिन कर्मोंको भिन्न भिन्न करते हैं उनमें कर्मके प्रति गणेश और मातृका नहीं होती हैं अर्थात् एकवार ही हुआ करती हैं कर्मकी आवृत्तिमें भी किस कर्ममें श्राद्ध करना चाहिये और किसमें नहीं यह भी वहां ही लिखा है, अग्न्याधान, होम, विश्वेदेवा, बलिकर्म, अमावस्या, पूर्णिमा नवयज्ञ, इनमें यज्ञके जाननेवाले बुद्धिमान् इस प्रकार लिखते हैं कि एक ही श्राद्ध होता है भिन्न भिन्न नहीं, अर्थात् इनमें प्रयोग प्रयोगके प्रति श्राद्धकी कर्तव्यता नहीं किन्तु प्रथममें होती है, यदि इनसे भिन्न सोमयाग आदि हो तो प्रत्येक प्रयोगमें श्राद्धकी आवृत्ति होती है । कहीं आदिमें भी निषेध उसीने लिखा है कि, अष्टका और श्राद्ध और प्रसव करनेवालीका जातकर्म, और परदेशसे आनेके कर्म इनमें श्राद्ध नहीं होता है, विवाह आदि कर्मोंका जो समूह लिखा है और गर्भाधान जो श्रवण किया है उसके अन्तमें और विवाहके प्रथममें एक ही श्राद्ध होता है, प्रत्येककी आदिमें नहीं, सोष्यन्ती उसे कहते हैं जिसे प्रसव होनेवाला हो, वह कर्म यह है कि, सोष्यंतीका अभ्युक्षण करके श्राद्ध

कात्यायनोक्तस्य श्राद्धस्य पाकस्य प्राधान्यात्तस्य च । 'जातश्राद्धे न दद्यात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि ।' इति निषेधान्न जातकर्मणि नान्दीश्राद्धमित्याशार्कः । आमान्नेन वा कार्यमित्यपि तेनैवोक्तम् । गौडास्तु जातकर्मण्येव निषेधः । पुत्रजन्मनिमित्तकं तु कार्यमेव । 'जन्मन्यथोपनयने' इत्युक्तेः । "नैमित्तिकमथो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकम् । पुत्रजन्मनि तत्कार्यं जातकर्म समं नरैः ॥" इति मार्कण्डेयपुराणाच्चेत्याहुः । हारलतायां श्राद्धविवेके चैवम् । एतेन जातकर्मणि कालान्तरे श्राद्धनिषेधो न पुत्रजन्मदिने इति वाचस्पतिमतं परास्तम् । अथ 'निषेककाले' इति वचनात् गर्भाधाने न निषेधः । " निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं विधिवत्कृतम् ॥" इति पारस्करः । प्रोषितेति–'प्रोष्यैत्य गृहानुपतिष्ठते पुत्रं दृष्ट्वा जपति' इति विहितं कर्म विवाहादिगर्भाधानान्तो यो गृहप्रवेशचतुर्थीकर्मादिकर्मसमूह उक्तः सूत्रकारेण । तत्रापि प्रतिकर्म नेत्यर्थः । अन्येऽपि हलाभियोगादयो अपवादविषयास्तत्रैव ज्ञेयाः । त इहाप्रचारान्नोच्यन्ते । अथात्राधिकारिणः । विष्णुपुराणे–" जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाण्डमशेषतः । पिता पुत्रस्य कुर्वीत श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम् ॥" अत्र केचित्

करना चाहिये ।" कात्यायनके कहे हुए श्राद्धमें पाक ही प्रधान है उसका इस वाक्यसे निषेध ही लिखा है कि, जातश्राद्धमें ब्राह्मणोंको पक्वान्न न देना चाहिये, इससे जातकर्ममें नान्दीश्राद्ध न करना आमान्नसे तो करना, यह आशार्कका कथन है । गौड़ तो यह मानते हैं कि जातकर्ममें ही निषेध है, सुतजन्मके निमित्तक तो अवश्य ही करना चाहिये । कारण कि जन्ममें और यज्ञोपवीतमें करे, ऐसा कहा है और मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि नैमित्तिक आभ्युदयश्राद्धको कहता हूं–पुत्रजन्ममें जातकर्मके संग उसे मनुष्योंको करना चाहिये । हारलता और श्राद्धविवेकमें भी इसी प्रकार लिखा है, इससे जातकर्ममें कालान्तरमें श्राद्धका निषेध है, पुत्रके जन्म दिनमें निषेध नहीं है, यह वाचस्पतिका मत परास्त हो गया । अब 'निषेककाले' इस वचनसे गर्भाधानमें भी निषेध नहीं है । पारस्कर कहते हैं कि निषेककाल, सोम, सीमन्तोन्नयन और पुंसवनमें विधिपूर्वक किया हुआ श्राद्ध कर्मांग होता है, 'प्रोषितागतकर्म' यह है कि परदेशसे घरमें आकर जो पितरोंकी पूजा करता है वह पितरोंके जपको पाता है, इससे जो कहा विवाह आदि गर्भाधान पर्यंत गृहप्रवेश चतुर्थीकर्म आदि कर्मसमूह जो सूत्रकारने लिखे हैं, वहां ही कर्म २ में श्राद्ध न करना, और भी हलके अभियोग आदि निषेधके विषय वहां ही जान लेने, उनका प्रचार नहीं है इस कारण नहीं लिखते । अब अधिकारियोंको लिखते हैं । विष्णुपुराणमें कहा है कि उत्पन्न हुए पुत्रके जातकर्म आदि सम्पूर्ण कर्मको

जीवत्पितुः साग्नेरेव वृद्धिश्राद्धेऽधिकारः नतु निरग्नेः । "न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः ॥ पितामहेऽप्येवमेव कुर्याज्जीवति साग्निकः । साग्निकोऽपि न कुर्वीत जीवति प्रपितामहे ॥" इति चन्द्रिकायां सुमन्तूक्तेरित्याहुः । प्रयोगपारिजातेऽप्यनाहिताग्निर्न कुर्यादिति यद्व्याख्यातम् तन्न । "अनग्निकोऽपि कुर्वीत जन्मादौ वृद्धिकर्मणि । येभ्य एव पिता दद्यात्तानेवोद्दिश्य तर्पयेत् ॥" इति हारीतोक्तेः । सौमन्तवं तु वृद्धिश्राद्धभिन्नश्राद्धपरमित्युक्तं मदनरत्ने । श्राद्धपदं पिण्डपितृयज्ञपरमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः । निर्णयामृते तु हारीतीयेऽनग्निकोऽनाहिताग्निराभिप्रेतः । पूर्ववचने तु साग्निकः श्रौताग्निः स्मार्ताग्निश्चोच्यते । तेनोभयाग्निहीनस्य नेत्युक्तम्, तन्न । पूर्वोक्तदिशा गतिसम्भवेऽनग्निपदस्य स्मार्ताग्निपरत्वे मानाभावात् । वक्ष्यमाणनित्यानित्यसंयोगविरोधात् । "पितरो जनकस्येज्या यावद्व्रतमनाहितम् । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेत पितामहान् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमवचोविरोधाच्च । अपरार्केऽपि-'समावर्तने ब्रह्मचारी स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात्'

और आभ्युदय श्राद्ध पिताको करना चाहिये । यहां कोई यह कहते हैं कि जिसका पिता जीता हो उस अग्निहोत्रीको ही अधिकार है, निरग्निको नहीं है । कारण कि चंद्रिकामें सुमंतुका कथन है कि अग्निहोत्रीसे भिन्न जीवत्पितृक द्विजको श्राद्ध न करना चाहिये, और पिता जिनको श्राद्ध देता हो साग्निक तो उनको ही दे, और पितामहके जीते हुए अग्निहोत्री इसी प्रकार करे, और प्रपितामहके जीवते साग्निकको भी न करना चाहिये । प्रयोगपारिजातमें भी लिखा है कि जो अग्निहोत्री न हो वह श्राद्ध न करे, सो उचित नहीं कारण कि हारीतने लिखा है कि अनाग्नि भी उनके ही निमित्त श्राद्ध और तर्पण करे, जिनको जन्म आदिके वृद्धिश्राद्धमें पिता देता है । सुमंतुका मत तो वृद्धिश्राद्धसे पृथक् २ श्राद्धके विषयमें है, यह मदनरत्नमें लिखा है, श्राद्धपद पिंडपितृयज्ञके विषयमें लिखा है, यह पृथ्वीचन्द्रोदय लिखते हैं। निर्णयामृतमें तो यह लिखा है कि हारीतके कथनमें अनग्निसे वह लिया है जिसने अग्न्याधान न लिया हो, और पूर्वोक्त वचनमें साग्निसे वह लिया है जो श्रौताग्नि और स्मार्त्ताग्नि हो इससे जो दोनों अग्निसे रहित हों वह न करें, वे उचित नहीं। कारण कि पूर्वोक्त रीतिसे जब गतिका संभव है तब अनग्निपदको स्मार्त्ताग्निबोधक माननेमें कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि आगे कहे हुए नित्य, अनित्यके संयोगका विरोध है।और पृथ्वीचन्द्रोदयमें इस यमवाक्यका भी विरोध लिखा है कि जहांतक पितरोंकी पिता अर्चा करता है वहांतक सावधान होकर पुत्रको ही करनी चाहिये, और पीछे अपने पितामहोंकी अर्चा करे। अपरार्कमें भी लिखा है कि समावर्तनमें ब्रह्मचारी स्वयं

इत्याह । अतः पूर्वमेव साधु । बोपदेवोऽप्येवमाह । यत्तु–मतं जीवत्पितुः पुत्रनामकर्मादौ न वृद्धिश्राद्धम् । हारीतीये जन्मादावित्यादिशब्देन तत्प्राप्तावपि–" उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः " इति मैत्रपरिशिष्टे–' उद्वाह एव तस्योपसंहारात् । एवं यत्र तु संस्कारादिपदं तदप्युद्वाहादिपरमेव ' इति तन्न । उद्वाहपदस्य स्वविवाहपरत्वस्यापि संभवात् । पुत्रविवाहपरत्वे मानाभावात् । ' नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ।' इत्यादिभिर्नित्यश्राद्धस्य चौलाद्यङ्गत्वावगतौ नित्यानित्यसंयोगविरोधाच्च अतो जन्मादाविति सर्वसंस्कारसंग्रहः । तथा कात्यायनः–" स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु । पिण्डानोद्वाहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात् ॥ " ' सुतानां चौलादिसंस्कारेषु पिता स्वपितृभ्यः पिण्डान् श्राद्धं पिण्डदोंऽशहरश्चैषाम् ' इति दर्शनादौद्वाहनाद्विवाहपर्यन्तं दद्यात् । विवाहश्च प्रथमः । "नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे बुधः । अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम् ॥ " इति स्मृतेः । तस्य पितुरभावे तत् क्रमात्–' असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः ' इति यः कर्तृक्रमस्तेन क्रमेण ज्येष्ठभ्रात्रादि-

---

नान्दीमुख श्राद्ध करे ऐसा कहा है । इससे पूर्वोक्त ही अच्छा है । बोपदेवने भी ऐसा ही लिखा है जो यह मत है कि जीवत्पिताको पुत्रके नामकर्मसे प्रथम वृद्धिश्राद्ध न करना चाहिये । हारीतके ' जन्मादौ ' इस आदि पदसे उसकी प्राप्ति भी थी तो भी विवाह, पुत्रजन्म, पितरोंका पूजन, सोमयज्ञ, तीर्थमें, ब्राह्मणका आगमन ये छः जीवत्पिताके श्राद्धकालीन हैं इस मैत्रपरिशिष्टमें विवाहमें उसकी पूर्णता लिखी है इसी भाँति जहां संस्कार आदि वाक्य हैं वे भी विवाह आदि परत्व हैं, सो उचित नहीं विवाह पदको अपने विवाहके भी बोधककी सम्भावनासे पुत्रविवाहके बोधकमें मानका अभाव है और बालोंके नामकर्म और चूडादिकर्मोंमें इत्यादि वाक्योंसे नित्यश्राद्धको चौलाद्यंगता निश्चित होनेसे नित्यानित्यसंयोगका विरोध है इससे जन्मादौ इस पदसे सब संस्कारोंका संग्रह कहा है । यही कात्यायनने लिखा है कि पुत्रके संस्कारकर्मोंमें पिता अपने पितरोंको दे, पुत्रोंका विवाह होनेपर पिताके अभावमें उसी क्रमसे पुत्रको पिंड देना चाहिये इसका यह आशय है कि पिता पुत्रोंके मुण्डन आदि संस्कारोंमें विवाहपर्यन्त पिंड देवे और श्राद्ध करे कारण कि पितरोंको पिण्डका दाता और उनके अंशका भागी बेटा होता है विवाह पहले लेना कारण कि यह स्मृतिमें लिखा है कि पहले विवाहमें नान्दीश्राद्ध पिता करे, और इसके उपरांत पुत्र स्वयं नान्दीमुख श्राद्ध करे, और उस पिताके अभावमें इस कर्ताके क्रमसे कि जिनका संस्कार नहीं हुआ है उसका संस्कार वे भ्राता करें, जिनका संस्कार पूर्व हो चुका हो इस क्रमसे बड़े भाई आदि दें यह

र्दद्यादिति चन्द्रिकादयः । हेमाद्रिस्तु तस्य पितुरभावे यः पितृव्यमातुलादिः संस्कुर्यात्स तत्क्रमात्संस्कार्यपितृक्रमाद्द्यान्नतु स्वपितृभ्य इति व्याचख्यौ । समावर्तनस्यापि विवाहप्राचीनसुतसंस्कारत्वात् पितैव नान्दीश्राद्धं कुर्यात् । तदभावे ज्येष्ठभ्रात्रादिभिः । तदभावे स्वयमेव कुर्यात् । उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात् । एवमाद्यविवाहेऽपीति पृथ्वीचन्द्रोदयचन्द्रिकादयः । मदनरत्नेऽप्येवम् । यदा तु पितरि संन्यस्ते प्रोषिते पतिते वा धर्मार्थं तत्पुत्रमन्यः संस्कुर्यात्तदा संस्कार्यपितुः पित्रादिभ्यो दद्यात् । " पितरो जनकस्येज्या यावद्व्रतमनाहितम् । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेत् पितामहान् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमोक्तेः । जीवत्पितृकस्य विशेषमाह कात्यायनः–" वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥" इति । यत्तु बह्वृचपरिशिष्टे–' जीवत्पिता सुतसंस्कारेषु मातृमातामहयोः कुर्यात् । तस्यां जीवन्त्यां मातामहस्यैवेति, तत्तच्छाखीयानामेवेति दिक् । ' स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु तु जीवन्मातृकः पितामहादिभ्यो वृद्धौ दद्यात् जीवन्तमपि दद्याद्वा ' प्रेतायान्नोदके द्विजः' इति कात्यायनोक्तेः । "जीवे तस्मिन्सुताः कुर्युः पितामह्या सहैव तु । तस्यां चैव तु

चन्द्रिकादिक लिखते हैं । हेमाद्रिने यह व्याख्या लिखी है कि उस पिताके अभावमें जो पितृव्य, मामा आदिक संस्कार करें, वह संस्कार करने योग्य पितृक्रमसे प्रदान करें, अपने पितृक्रमसे नहीं करें समावर्तन भी विवाहसे प्रथम पुत्रका संस्कार है उसमें भी पिताका ही नान्दीमुख श्राद्ध करना उचित है उसके अभावमें बड़ा भाई और उसके अभावमें स्वयं करे, कारण कि यज्ञोपवीत होनेसे कर्मका अधिकार हो गया इसी भांति प्रथम विवाहमें भी स्वयं करे, यह पृथ्वीचन्द्रोदय और चन्द्रिका आदि लिखते हैं मदनरत्नमें भी यही है, यदि पिता संन्यासी हो गया हो, परदेशमें हो, पतित हो और उसके पुत्रका धर्मार्थ कोई और संस्कार करे, तो वह अपने पितृ, पितामह आदिका श्राद्ध करे । कारण कि पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमने लिखा है कि, जितनी पिता पितरोंकी पूजा करता है, उतनी ही सावधान होकर पुत्रको करनी चाहिये, और पीछे अपने पितामहोंकी करे, जीवत्पितृकके निमित्त विशेष कात्यायनने लिखा है कि, वृद्धिश्राद्ध, तीर्थश्राद्धको, पिता संन्यासी हो गया हो वा पतित हो गया हो तो जिनको पिता श्राद्ध दे, उनको ही पुत्र स्वयं दे । जो बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि जीवत्पिता पुत्रके संस्कारमें माता और मातामहका श्राद्ध करे, माता जीती हो तो, मातामहका ही श्राद्ध करे यह बह्वृच शाखावालोंके ही निमित्त है यह कहा है । स्मृतितत्त्व आदि गौड ग्रन्थोंमें तो यह लिखा है कि जीवन्मातृक पितामह आदिको वृद्धिमें दे, कारण कि कात्यायनका कथन है कि, द्विजको जीवते हुएको वा मातृकको अन्नोदक देना चाहिये उस पतिके जीवते

जीवन्त्यां तस्याः श्वश्रेति निश्चयः ॥" इति हारीतोक्तेश्चेत्युक्तम् । तस्मिन् भर्तरि । दाक्षिणात्यास्तु पूर्वोक्तस्य सपिण्डीकरणादिविषयत्वात् । 'जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत् । " इति वचनात्तद्वर्गस्य लोप एवेत्याहुः । यत्तु चन्द्रिकायां पारस्करः-"निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धिवच्च तत् ॥" इति । तत्र गर्भाधानादौ कर्माङ्गं जातकर्मादावुक्तं तु वृद्धिश्राद्धं पृथगेव वृद्धिवदित्युक्तेः । गौडनिबन्धे मात्स्ये-"अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च निषेके च नववेश्मप्रवेशने ॥ देवव्रते जलादीनां प्रतिष्ठायां तथैव च । तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥" अत्र भूतनिमित्तानां वृद्धित्वम्, भाविनिमित्तानामङ्गत्वम् । वृद्धिशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थ इति गौडाः । अन्ये तु निषेकादौ कर्माङ्गवृद्धिश्राद्धयोः समुच्चयमाहुः । नान्दीश्राद्धसंज्ञा तूभयानुगता ॥ श्राद्धेतिकर्तव्यनिर्णयः । अथेतिकर्तव्यता । पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः-"मालत्याः शतपत्राया मल्लिकाकुब्जयोरपि । केतक्याः पाटलाया वा देया माला न लोहिता ॥" श्राद्धे मालानिषेधस्यायमपवादः । तथा-"सुवेषभूषणैस्तत्र सालङ्कारैस्तथा नरैः । कुंकुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं तु ब्राह्मणैः सह ॥ स्त्रियोऽपि स्युस्तथाभूता गीतनृत्यादिहर्षिताः । " हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे-

---

हुए पितामहीके संग पुत्र करे, वह भी जीती हो तो उसकी सासु करे, यह हारीतका कथन है कि 'तस्मिन् भर्तरि' और दाक्षिणात्य तो पूर्वोक्त सपिंडीकरणादिके विषयमें ऐसा कहते हैं, यदि वर्गका प्रथम जीता हो तो उसको त्याग दे, इस वाक्यसे उसका लोप ही है। जो चंद्रिकामें पारस्करने लिखा है कि गर्भाधान, सोमयज्ञ, सीमंत, पुंसवनमें श्राद्धकर्मको अंग जानना और वृद्धिश्राद्ध भिन्न ही है; कारण कि वहां वृद्धिके समान लिखा है। गौडनिबन्धमें मत्स्यपुराणका कथन है कि, अन्नप्राशन, सीमंत, पुत्रजन्म, पुंसवन, गर्भाधान, नये घरमें प्रवेश, देवका व्रत, जल आदिकी प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, वृषोत्सर्ग इनमें वृद्धिश्राद्ध लिखा है, इनमें जिनका निमित्त हो चुका है उनमें वृद्धि और जिनका निमित्त होने योग्य है उनमें अंग है। वृद्धिशब्द तो वृद्धिके धर्मोंके अतिदेश (बताने) के निमित्त है, यह गौड लिखते हैं। और तो निषेक आदिमें कर्मांग और वृद्धिश्राद्धकी एकत्रता कहते हैं। नांदीश्राद्ध यह संज्ञा तो दोनोंमें मिली है। अब श्राद्धकी इतिकर्तव्यता लिखते हैं-पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धपराशरका वाक्य है कि मालती, कमल, चमेली, कुब्ज, केतकी, पाटलाकी माला श्राद्धमें दे, और लालमाला न दे, यह श्राद्धमें मालाके निषेधका अपवाद है। इसी प्रकार लिखा है कि सुन्दर वेष, भूषण, अलंकार सहित और कुंकुम आदि अंगमें लगाये हुए मनुष्य श्राद्धमें ब्राह्मणोंके सहित रहें और स्त्री भी उसी प्रकार गीत नृत्य आदिसे प्रसन्न रहें। हेमाद्रिमें ब्रह्मांड-

कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये ।' कुशा अपि वक्ष्यन्ते । छन्दोगपरिशिष्टे—"प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा ।' उभयतः दैवे पित्र्ये च । वैश्वदेवे द्वौ विप्रौ पित्रादीनामेकैकस्य द्वौ द्वाविति विंशतिः । त्रिके वा द्वावित्यष्टौ विप्राः ॥ अत्र विप्रालाभे स्त्रियोऽपि भोज्या इत्याहाशार्के वृद्धवसिष्ठः—" मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे पूजयेदपि । पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोऽष्टौ कुलोद्भवाः ॥" मातृत्रिके चतस्रः मातामहीत्रिके चेत्यष्टाविति । हेमाद्रि-रत्र पित्र्ये प्राङ्मुखा विप्राः । पाद्ये पित्र्ये चतुरस्रं मण्डलमिति जयन्तः । हेमाद्रौ ब्राह्मे—' विप्रान् प्रदक्षिणावर्तं प्राङ्मुखानुपवेशयेत् । छन्दोगपरिशिष्टे—" गोत्र-नामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत् । नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थ-मिष्यते ॥ ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मान्कराग्राग्रपवित्रकान् । कृत्वार्घ्यं संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥" पित्रादेर्द्वौद्वौ विप्रौ तयोर्दक्षिणहस्तौ संयोज्य प्रथमोपवेशितविप्रकरोपरि तन्त्रेण द्वयोरर्घ्यं दद्यादित्यर्थः । बह्वृचकारिकायां तु—" दत्तार्घ्योदकदेशः स्यादर्घ्यदानं प्रतिद्विजम् । आवृत्तिरपि मन्त्रस्य प्रतिब्रा-ह्मणमिष्यते ॥ प्रतिद्विजं पृथक्कुर्यान्निवीत्यर्घ्यानुमन्त्रणम् । " इत्युक्तम् । "मधु

पुराणका कथन है कि मंगलकी वृद्धिके निमित्त कुशाओंके स्थानमें दूर्वा होती है, कुशा भी लिखेंगे । छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि प्रातःकाल न्योता दिये युग्म ब्राह्मणोंको देव और पितृश्राद्धमें बैठावे, विश्वेदेवाओंके दो ब्राह्मण और पिता आदि एक २ के दो दो ब्राह्मण, इससे वीस ब्राह्मण वा एक एक त्रिकमें दो दो इससे आठ ब्राह्मणोंका भोजन करावे । यहां ब्राह्मण न मिलें तो स्त्रियोंका भी भोजन कराना, यह आशार्कमें वृद्धवसिष्ठने कहा है कि मातृश्राद्धमें ब्राह्मण न मिले तो पतिपुत्रयुक्त और सुन्दर कुलीन आठ स्त्रियोंको भोजन करावे और पूजा करे, चार माताके त्रिकमें, और चार मातामहीके त्रिकमें ये आठ हुई । हेमाद्रिने कहा है कि यहां पितृश्राद्धमें प्राङ्मुख ब्राह्मण होते हैं। पाद्यके निमित्त पितृपक्षमें चौकोर मंडल होता है यह जयंत लिखते हैं । हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि ब्राह्मणोंको प्रदक्षिण क्रमसे पूर्वाभिमुख बैठावे । छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि गोत्र नाम लेकर पितरोंको अर्घ्य दे, न यहां अपसव्य करना है और न पितृतीर्थ है, उत्तरके बडे करवाले दो करके अग्रसे पवित्री रखकर अर्घ्य तन्त्रसे दे, एक एक-को यहां अर्घ्य नहीं दिया जाता । यहां यह सिद्धान्त है कि पिता आदिके दो दो ब्राह्मण उसके दक्षिण हाथ मिलाकर प्रथम बैठे हुए ब्राह्मणके हाथके ऊपर तंत्रसे दोनोंको अर्घ्य दे । बह्वृचकारिकामें तो लिखा है कि दिये हुए अर्घ्यका एक भाग प्रति ब्राह्मणको दे और प्रत्येक ब्राह्मणको मन्त्र पढना चाहिये, और प्रत्येक ब्राह्मण निवीती अर्थात् (अपसव्य) होकर अर्घ्यका अनुमन्त्रण करे और जब भोजन करनेकी इच्छा करे तब मधु है

मध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् । गायत्र्यनन्तरं स्तोत्रं मधुमन्त्रविवर्जितम् ॥ न चाश्नंस्तु जपेदत्र कदाचित्पितृसूक्तकम् ॥" तथा-"संपन्नमिति तृप्ताः स्थ प्रश्नस्थाने विधीयते। सुसंपन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ अक्षय्योदकानां च अर्घ्यदानवदिष्यते। षष्ठ्यैव नियतं कुर्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥" चन्द्रोदये ब्राह्मे-" पठेच्छकुनिसूक्तं तु स्वस्तिसूक्तं शुभं तथा । नान्दीमुखान्पितॄन्भक्त्या साञ्जलिश्च समाह्वयेत् ॥" तथा-"शाल्यन्नं दधिमध्वक्तं बदराणि यवास्तथा । मिश्रीकृत्य तु चतुरः पिण्डाञ्छ्रीफलसंनिभान् ॥ दद्यान्नान्दीमुखेभ्यश्च पितृभ्यो विधिपूर्वकम् । द्राक्षामलकमूलानि यवांश्च विनियोजयेत् ॥ तान्येव दक्षिणार्थं तु दद्याद्विप्रेषु सर्वदा ॥" तत्रैव चतुर्विंशतिमते-"द्वौ द्वौ चाभ्युदये पिण्डावेकैकस्मै विनिःक्षिपेत् । एकं नाम्ना परं तूष्णीं दद्यात्पिण्डान्पृथक्पृथक् ॥" वसिष्ठः-"प्राङ्मुखो देवतीर्थेन प्राक्कूलेषु कुशेषु च । दत्त्वा पिण्डान्न कुर्वीत पिण्डपात्रमधोमुखम् ॥" नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहेति वा पिण्डदानमन्त्र इति वृत्तिः। अत्र पिण्डाः कृताकृता इत्युक्तम् । तत्रैव भविष्ये-"पिण्डनिर्वपणं कुर्यान्न वा कुर्याद्विचक्षणः । वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु ॥" छागलेयः-" अग्नौ-

---

ये तीन वार कहें, गायत्रीके उपरान्त मधु मन्त्रको त्यागकर स्तोत्रको पढे और भोजन करनेके समय कभी भी पितृसूक्तको न जपे । इसी प्रकार सम्पन्न हुआ, तृप्त हुए यह पूछे, जब ब्राह्मण सुसम्पन्न कह दे तब शेष बचा अन्न उनको निवेदन करे । अक्षय्य जलका दान भी अर्घ्यदानके तुल्य है। उसमें भी नियमसे षष्ठी विभक्ति करे, चतुर्थी कभी न करे। चन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखा है कि शकुनिसूक्त और स्वस्तिसूक्त जपे और कर जोड़कर नान्दीमुख पितरोंको बुलावे ऐसे ही वाक्य है कि चावल, दही, मधु, बेर, यव इनको मिलाकर बेलफलके तुल्य पिंडोंको नान्दीमुख पितरोंके निमित्त विधिसे दे। मुनक्का, आमला, मूली और यवको भी प्रदान करे और इन्हींको दक्षिणाके निमित्त ब्राह्मणोंको दें। वहां ही चतुर्विंशतिमतमें लिखा है कि अभ्युदयमें एक एकको दो दो पिंड दे, उन दोनोंमें एक नाम लेकर दूसरा मौन हो दे, इसी प्रकार भिन्न भिन्न पिंड देने । वासिष्ठका कथन है कि पूर्वाभिमुख देवतीर्थसे पूर्वको मुखवाली कुशाओंपर बैठा हुआ यजमान पिंडके पात्रको अधोमुख न करे। वृत्तिग्रन्थमें पिंडदानका यह मंत्र कहा है कि नान्दीमुख पितरोंको स्वाहा उच्चारण करे। वहां पिंड करने वा न करने यह वहां ही भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे महाबाहो ! वृद्धिश्राद्धमें कुलधर्मको देखकर पिंड करे वा न करे। छागलेयका कथन है कि अग्नौकरण, अर्घ्य, आवाहन, अवनेजन ये पिंडश्राद्धमें करे और जिसमें पिंड न हो वहां न करे। इससे यहां भोजन ही प्रधान है, यदि भोजन करते समय ब्राह्मणको उलटी हो जाय तो फिर उसी

करणमर्घ्यं वा वाहनं चावनेजनम् । पिण्डश्राद्धे प्रकुर्वीत पिण्डहीने निवर्तते ॥" तेनात्र भोजनस्यैव प्रधानत्वाद्यदि विप्रस्य वमनं तदा तस्यैव पार्वणस्य पुनरावृत्तिरिति सिद्धम् । अत्र सांकल्पे विशेषः प्रयोगपारिजाते संग्रहे-"शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ सांकल्पमाचरेत् ॥ न षष्ठ्या यदि वा कुर्यान्महादोषोऽभिजायते॥"नाम गोत्रादिनिषेधोऽप्यत्रैव न तु सपिण्डकश्राद्धे इति स एव । अत्रायं क्रमः । 'नान्दीश्राद्धे दैवे क्षणः क्रियताम्'इति द्वौ युगपन्निमन्त्र्य ओंतथेति विप्राभ्यां युगपदुक्ते प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नवाव, इति वैश्वदेववत् पित्र्ये च द्विवचनान्तेन विप्रद्वये प्रयोगं कुर्यात् । आहिताग्निस्तु हेमाद्रौ ब्राह्मे-"योऽग्नौ तु विद्यमानेऽपि वृद्धौ पिण्डान्न निर्वपेत् । पतन्ति पितरस्तस्य नरके स च पच्यते ॥" बह्वृचपरिशिष्टे-"द्वौ दर्भौ पवित्रे पवित्राणि चत्वारि । शन्नोदेवीत्यनुमन्त्रितासु यवानावपति ॥" "यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितृनिमाँल्लोकान् प्रीणयाहिनः स्वाहा ॥" इति स्वाहार्घ्या इति पृच्छति । विश्वेदेवा इदं वोऽर्घ्यं नान्दीमुखाः पितर इति यथालिङ्गमर्घ्यदानं गन्धादिदानं द्विर्द्विः । पाणौ होमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति । अतो देवा अवंतु नः' इत्यंगुष्ठग्रहणम् । 'पावमानीः शंवतीरैन्द्रीमप्रतिरथं च श्रावयेन्मधुवाता ऋचः

पार्वणको फिर करे, यह सिद्ध हुआ । यहां संकल्पमें विशेष प्रयोगविधि पारिजातमें संग्रहके वाक्यसे लिखा है कि शुभार्थी मनुष्य वृद्धिश्राद्धमें प्रथमांत पदसे संकल्प करे, षष्ठीविभक्तिसे न करे, करे तो बड़ा दोष होता है । नामगोत्रका निषेध भी इसमें ही लिखा है, सपिंडक श्राद्धमें नहीं; यह भी उसने ही लिखा है यहां यह क्रम है कि नान्दीश्राद्धमें यह कहकर दो ब्राह्मणोंको एक वार ऐसे निमंत्रण देकर कि दैवश्राद्धमें 'समय रखना' जब दोनों ब्राह्मण इसको (ॐ) ऐसा स्वीकार करें तब कह दे कि तुम प्राप्त हो, इस प्रकार ऐसे कहनेके उपरान्त ब्राह्मण हम आवेंगे कहें, विश्वेदेवाओंके तुल्य पितरोंके दो ब्राह्मणोंमें भी द्विवचनांत पदसे प्रयोग करे । आहिताग्निके निमित्त तो हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि जो अग्निके विद्यमान होते हुए वृद्धिमें पिंड नहीं देता है उसके पितर नरकमें पचते हैं । बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि दो कुशा दो पवित्रे और चार पवित्री शन्नोदेवी० इस मंत्रसे अनुमंत्रित करे और 'यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नांदीमुखान् पितृन् इमान् लोकान् प्रीणयाहिनः स्वाहा' इस मंत्रसे यव बखेरे, फिर 'स्वाहार्घ्याः' यह प्रश्न करे कि हे विश्वेदेवाओ ! यह अर्घ्य तुमको है, हे नान्दीमुख पितरो ! यह अर्घ्य तुमको है, यह कहकर नामके अनुसार अर्घ्य दे, फिर गंध आदि दो दो बार दे, फिर 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा, सोमाय पितृमते स्वाहा' इन मंत्रोंसे दो बार हाथमें हवन करे, फिर हे देव ! हमारी रक्षा करो, यह कहकर ब्राह्मणोंका अंगूठा पकड़े, फिर पावमानी ऋचा, पुनः शंवती, फिर ऐंद्री अप्र-

स्थाने उपास्मै गायतेति पञ्च मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमदंतेति च षष्ठीं भुक्तशेषेणैकैकस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ दद्यात्' इति। चन्द्रिकायां वृद्धवसिष्ठः-"पितृप्रश्ने तु संपन्नं दैवे रुचितमित्यपि। दधिकर्कन्धुमिश्राश्च पिण्डाः कार्या यथाक्रमम् ॥" कात्यायनः-'त्यमूषुवाजिनम्' इति विप्रांश्च विसर्जयेत्। 'नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्' इत्यक्षय्यस्थाने 'स्वधां वाचयिष्ये' इत्यस्य स्थाने नान्दीमुखान्पितॄन् वाचयिष्ये' इति। न स्वधां प्रयुञ्जीतेति। अत्र साग्निरनाग्निर्वा आदौ वैश्वदेवं कुर्यात्। "आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते मध्ये श्राद्धे तु पार्वणे। एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते ॥" इत्याशार्के सांख्यायनपरिशिष्टात्। हेमाद्रौ तु-"शेषमन्नमनुज्ञाप्य वैश्वदेवक्रियां ततः। श्राद्धाह्नि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत्॥" इति चतुर्विंशतिमतान्नान्दीश्राद्धेऽप्यन्ते वैश्वदेव उक्तः। बह्वृचानामपि वृत्त्यालोचनात्तथैव। पूर्वोक्तं तु येषां परिशिष्टं तद्विषयमन्यविषयं वा ज्ञेयम्। अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं नेत्युक्तं प्राक्। इति निर्णयसिन्धौ वृद्धिश्राद्धम्। अथ जीवत्पितृकश्राद्धनिर्णयः। अथ जीवत्पितृकश्राद्धम्। तत्रानेकपक्षा दृश्यन्ते

तिरथ पांच मधुमती और अक्षन्नमीमदन्त इस छठी ऋचाको सुनावे, और [1]मधुवाता ऋचाके स्थानमें [2]उपास्मैगायता० इस ऋचाको पढ़े और भोजनके बचे अन्नसे एक २ को दो २ पिंड दे। चन्द्रिकामें वृद्धवसिष्ठका कथन है कि पिताके प्रश्नमें सम्पन्न और देवश्राद्धमें उचित पूछे, और दही, बेर मिलाकर क्रमसे पिंड दे। कात्यायनका कथन है कि, 'त्यमूषुवाजिनम्' यह कहकर ब्राह्मणोंका विसर्जन करे, नान्दीमुख पितर प्रसन्न हों,इस अक्षय्य जलके स्थानमें और 'स्वधां वाचयिष्ये' इसके स्थानमें 'नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये' यह उच्चारण करे स्वधा शब्दका प्रयोग न करे। यहां साग्नि हो वा निराग्नि हो पहले वैश्वदेव करे, कारण कि आशार्कमें सांख्यायन परिशिष्टका वाक्य है कि वृद्धिश्राद्धके आदिमें, क्षयके अन्तमें, पार्वणके बीचमें और एकोद्दिष्टकी निवृत्ति होनेपर वैश्वदेव करना चाहिये। हेमाद्रिमें तो लिखा है कि शेष बचा अन्न ब्राह्मणोंकी आज्ञासे लेकर वैश्वदेव क्रियाको संपादन करे, श्राद्धके दिन श्राद्धके शेष अन्नमेंसे वैश्वदेव करे, यह चतुर्विंशतिका मत है, नान्दीश्राद्धके भी अन्तमें वैश्वदेव लिखा है। बह्वृचोंकी भी वृत्ति देखनेसे इसी प्रकार प्रतीत होता है, पूर्वोक्त कथन तो जिनका परिशिष्ट हो उनके विषयमें है वा किसी औरके विषयमें है, यह जानना चाहिये। इसमें श्राद्धका अंग तर्पण नहीं होता, यह पहले कह आये हैं। इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां वृद्धिश्राद्धप्रकरणं सम्पूर्णम्। अब जीवत्पितृक श्राद्धको लिखते हैं, उसमें अनेक पक्ष हैं कि जीते पिताको भोजन कराके पिछले दोनोंका श्राद्ध करे

---

१ मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ऋ० । १ । ६ । १८ ।
२ उपास्मैगायतानरः पवमानायेन्दवे अभिदेवां इयक्षते ॥ ऋ० ६ । ७ । ३६ ।

जीवन्तं पितरं भोजयित्वा परयोः श्राद्धं कुर्यादित्येकः। होमान्तमेव कुर्यादित्यन्यः। "होमान्तः पितृयज्ञः स्याज्जीवे पितरि जानतः। पितरं भोजयित्वा वा पिण्डौ निपृणुयात् परौ॥" इति यज्ञपार्श्वोक्तेः। 'यदि जीवत्पिता न दद्यादाहोमात्कृत्वा विरमेत्' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च। 'जीवतां पिण्डानग्नौ हुत्वा परेभ्यो ज्ञेयम्' इत्यपरः। 'जुहुयाज्जीवेभ्यः' इत्याश्वलायनोक्तेः। जीवतामजीवतां च पिण्डदानमितीतरः॥ 'जीवतामजीवतां वा देयमेवेति हिरण्यकेतुः।' इति निगमात्। 'तस्माज्जीवत्पिता कुर्याद्वाभ्यामेव न संशयः इति भविष्योक्तेर्द्वाभ्यामेवेत्यन्यः। एते पक्षाः कलौ निषिद्धाः। "प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुरब्रवीत्। पिण्डनिर्वपणं चापि महापातकसम्मितम्॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदयभविष्योक्तेः चन्द्रिकाप्येवम्। तस्मात् पितरि जीवति श्राद्धानारंभ एवेत्येकः पक्षः 'सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते।' इति कात्यायनोक्तेः। 'जीवे पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्जयेत्।' इति हारीतोक्तेश्च। पितुः पित्रादिभ्यो दद्यादिति सिद्धान्तः। 'ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत्।' इति मनूक्तेः। 'पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्यपरा श्रुतिः' इति कात्यायनोक्तेश्च। अयं बहुसंमतः पक्षः। अन्ये शाखाभेदेन ज्ञेयाः। एवं जीवन्मातामहेनाप्यूहेन कार्यम्। "मातामहाना-

---

यह एक मत है। होमान्तमें ही करे, यह दूसरा मत है, कारण कि यज्ञपार्श्वका कथन है कि होमके अन्ततक पितृयज्ञ होता है, यदि पिता जीवित हो तो पिताको भोजन कराके परले दोको पिण्ड प्रदान करे। और आपस्तम्बने भी यह लिखा है कि यदि पिता जीवे तो न दे, किन्तु होमपर्यन्त कर्मको करके पूरा करे, आश्वलायनने लिखा है कि जीते हुओंके पिंड अग्निमें होम कर पिछलोंको दे, यह दूसरा पक्ष है जीते हुएके पिंडोंका अग्निमें होम करे। जीवतोंको और मृतकोंको भी पिंड दे, यह तीसरा पक्ष है। कारण कि ऐसा शास्त्रमें लिखा है कि जीते हुए और मृतक हुओंको अवश्य दे, यह हिरण्यकेतुका कथन है और निगम भी यही कहता है। इससे जीवत्पिता दोके निमित्त करे, इसमें संशय नहीं, इस भविष्यपुराणके वाक्यसे दोको ही दे, यह और पक्ष है। ये सब पक्ष कलियुगमें वर्जित हैं। पृथ्वीचन्द्रोदयमें भविष्यका यह वचन है कि मनुने श्राद्धमें प्रत्यक्ष पूजनको वर्जित किया है और उनको पिंडोंका देना भी महापातकके समान है। चन्द्रिकामें भी ऐसा ही लिखा है, इससे पिताके जीवते श्राद्धका प्रारम्भ ही नहीं होता, यह एक पक्ष है। कारण कि कात्यायनका कथन है कि पिता सहितको पितृकर्ममें अधिकार नहीं है। हारीतका कथन है कि जिसका पिता जीता हो वह पुत्र श्राद्धकालको त्याग दे, यह सिद्धान्त है। पिता आदिको दे, कारण कि मनुका कथन है कि पिता जीवित हो तो पहलोंको पिंड दे, और कात्यायनने यह और श्रुति लिखी है कि पितासहित पुत्र पिताके पितरोंको दे, यह पक्ष बहुतोंको सम्मत है। और पक्ष शाखाभेदोंसे जान लेने, इसी प्रकार मातामहके जीवित रहते भी ऊहसे श्राद्ध

मप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्॥" इति विष्णूक्तेः। 'एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके' इति पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणाच्च। 'पितरि जीवति तु स्वमातरि मृतायामपि पितुरेव मातृमातामहयोः कुर्यात्।' 'येभ्य एव पिता दद्यात्' इति वक्ष्यमाणवचनात्, इति पितामहचरणाः। मदनरत्ने तु 'जीवत्पिता स्वमातृमातामहयोर्दद्यात्' इत्युक्तम्। कालादर्शेऽप्येवम्। 'मृते तु पितरि जीवन्मातृकः पितामह्यादिभ्यो वृद्धौ दद्यात्' इति स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थाः। दाक्षिणात्यास्तु-"पितृवर्गे मातृवर्गे तथा मातामहस्य च। जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्॥" इति वचनात्तद्वर्गत्याग एवेत्याहुः। एवं पतितसंन्यस्तपितृकादेरपि ज्ञेयम्। "वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति। येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः॥" इति षट्त्रिंशन्मतात्। संन्यस्ते जीवतीत्यर्थः। मृते तु संन्यस्ते तदाद्ये एव देयम्। मृतेऽपि परेभ्य एवेति गौडाः। कात्यायनोऽपि-"ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते। व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ॥" अयं च संन्यस्तपित्रादेरविशेषात्सर्वश्राद्धेऽधिकारः।

करना, कारण कि विष्णुका कथन है कि बुद्धिमान् मनुष्य मातामहोंका भी इसी प्रकार मन्त्रोंके ऊहसे यथायोग्य प्रीतिसे श्राद्ध करे, शेषोंका श्राद्ध मंत्रहीन करे, इसी प्रकार माता आदिकोंका भी श्राद्ध करे, कारण कि पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्निपुराणका कथन है कि इसी प्रकार मातामहादिवर्गमें है। पिता जीता हो और माताकी मृत्यु हो गयी हो तो पिताकी ही माता और मातामहका श्राद्ध करे, कारण कि यह वाक्य लिखेंगे कि, जिनको पिता दे उनको पुत्र दे, यह हमारे पितामह लिखते हैं। मदनरत्नमें तो यह लिखा है कि जिसका पिता जीवित हो वह अपनी माता और मातामहको दे। कालादर्शमें भी इसी प्रकार लिखा है कि पिता मर गया हो और माता जीवित हो तो वृद्धिश्राद्धमें पितामही आदिको दे। यह स्मृतितत्त्व आदि गौड ग्रन्थोंमें लिखा है। दाक्षिणात्योंका तो यह मत है कि पितृवर्ग, मातृवर्ग और मातामहवर्गमें जिस वर्गमें आदिका जीवित हो तो उस वर्गको त्याग दे, इस वाक्यसे उस वर्गका निषेध ही है। इसी प्रकार जिसके पिता आदि पतित व संन्यासी हो उसको भी जानना चाहिये। कारण कि यह षट्त्रिंशत्का मत है कि वृद्धिश्राद्ध, तीर्थश्राद्धमें और पिता संन्यासी हो गया हो वा पतित हो तो जिनको पिता दे, उनको स्वयं पुत्र दे, संन्यासी जीता हो तो पिछलोंको दे, और मर गया हो तो संन्यासी आदि तीनोंको प्रदान करे, मरनेपर भी दूसरोंको ही दे, यह गौडोंका मत है। कात्यायनने कहा है कि पिता ब्राह्मण आदिसे मरा हो, पतित हो, संन्यासी हो, वा किसी व्यतिक्रमसे मृत्युको प्राप्त हुआ हो तो पुत्र उनको पिंड दे जिनको पिता देता था। यह संपूर्ण श्राद्धोंमें अधिकार अविशेषसे उसके

एतत्त्रिदण्डिपरम् । एकादशाहपार्वणवार्षिकाद्यपि तस्यैव । 'अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ' इत्युक्त्वा-'त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ।' इत्युशनसा विशेषोक्तेः । 'ब्राह्मणादिहते ' इत्यादिनिषेधस्त्वेकदण्डादिपरः । अतः परमहंसानां वार्षिकादिकमपि न कार्यमिति शूलपाणिश्राद्धतत्त्वादयो गौड-ग्रन्थाः । इदमेव तु युक्तम् । यत्तु हेमाद्रौ कौण्डिन्यः-" दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च ॥" इति तत्संन्यस्तपि-त्राद्यतिरिक्तविषयम् । मैत्रायणीयपरिशिष्टे-" उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमि-के मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ॥ " तत्रैव-" महानदीषु सर्वासु तीर्थेषु च गयामृते । जीवत्पितापि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मवित् ॥ गयामृते इति मातृव्यतिरिक्तविषयम् । " अन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽ-हनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति ॥ " इति तत्रैवोक्तेः । गयाप्राप्तौ प्रासङ्गिक्यात् । 'गयां प्रसङ्गतो गत्वा मातुः श्राद्धं समा-चरेत् ' इति वचनात् । तेन मृतमातृको गयायां तत्पार्वणमात्रं कुर्यात् । तज्जीवने तु तीर्थश्राद्धमपि नेति कालादर्शस्मृतिदर्पणादयः । अन्ये तु गत्वा श्राद्धं नेति निषेधार्थः सामान्यतः प्राप्तं तीर्थश्राद्धं भवत्येव गयायामित्याहुः ।

निमित्त है जिसका पिता संन्यासी हो, यह भी त्रिदण्डीके विषयमें कहा है। एकादशाहमें पार्वण और वार्षिक आदि भी उसके ही होते हैं, कारण, कहा है कि ' ग्यारहवें दिन संन्यासीका पार्वण करे, उशनाने यह विशेष लिखा है कि त्रिदंडके ग्रहणसे ही वह प्रेत नहीं होता, ब्राह्मण आदिसे मरेका निषेध तो एक दंडीके विषयमें है, इससे परमहंसोंका वार्षिक श्राद्ध आदि भी न करे । यह शूलपाणि श्राद्धतत्त्व आदिने गौडग्रन्थोंमें लिखा है, यही तो युक्त है । जो हेमाद्रिमें कौण्डिन्यका कथन है कि दर्शश्राद्ध, गयाश्राद्ध और महालयश्राद्ध इनमें तिलोंसे तर्पण जीवत्पितृक न करे, वह संन्यासीसे पृथक् पिता आदिके विषयमें हैं। मैत्रायणीय परिशिष्टमें कहा है कि विवाह, पुत्रजन्म, पितरोंका पूजन, सोमयज्ञ, तीर्थ, ब्राह्म-णका आगमन ये छः जीवत्पितृकके श्राद्धके काल हैं। वहां ही कथन है कि संपूर्ण महानदी, तीर्थ, गयामें मरण इनमें जीवत्पिता भी पार्वणविधिसे श्राद्ध करे, गयामरण मातासे भिन्नका लेना। कारण कि वहां ही यह लिखा है कि अन्वष्टका, गया इनमें क्षयाहके दिन माताका श्राद्ध पिताके जीवते भी पुत्र करे, गयाकी प्राप्ति भी प्रसंगसे लेनी। कारण कि ऐसा कथन है कि प्रसंगसे गयामें जाकर माताका श्राद्ध करे, इससे जिसकी माता मृत हुई हो वह गयामें उसीका पार्वणश्राद्ध करे। वह जीती हो तो तीर्थश्राद्ध भी न करे, यह कालादर्श और स्मृतिदर्पण आदिमें लिखा है । और तो यह लिखते हैं कि जाकर श्राद्ध न करे, यह निषेध है। साधारणसे प्राप्त तीर्थश्राद्ध गयामें तो होता ही है, ऐसा कहते हैं । जब पिताका प्रतिनिधि

यदा तु पितुः प्रतिनिधित्वेन गयां याति तदा यजमानस्य पितृपितामहप्रपितामहा इत्येवं श्राद्धम्। तत्र मातुः पितृपत्नीत्वेनैकोद्दिष्टं कृत्वा मातृत्वेन पुनः पार्वणं कुर्यादिति त्रिस्थलीसेतौ। 'तच्च फल्गुविष्णुपदाक्षय्यवटेष्वेवेति केचित्। आद्यन्ते एवेत्यन्ये। मध्यमान्ते इत्यपरे। संकोचे हेत्वभावात्तत्रत्यसर्वश्राद्धानि मातुः कार्याणीत्युक्तं प्रतिभाति। यत्तु मदनपारिजाते-"न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः। येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः॥" इति सुमन्तूक्तेः। साग्नेरेव जीवत्पितृकस्य तीर्थादिश्राद्धमुक्तम्। साग्नेरपि मैत्रायणीयशाखीयस्येव नान्येषाम्। 'षडेते जीवतः पितुः' इति तत्परिशिष्टे एवोक्तेरिति रत्नावलीदिवोदासाद्यास्तदयुक्तम्। सौमन्तवं पिण्डपितृयज्ञविषयं संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयं वेति पृथ्वीचन्द्रोदयोक्तेः। वृद्धौ तीर्थे चेत्यादेः साधारण्येनास्यापि तथात्वाच्च। तथा निरग्नेरपि नान्दीश्राद्धमुक्तं प्राक्। एवं पितामहजीवनेऽपि ज्ञेयम्। विशेषः पितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयः। अथ पितामहे जीवति मृते च पितरि यद्यपि 'पितामहो वा तच्छ्राद्धे भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः।

होकर पुत्र गयाको गमन करे, तब यजमानके पिता, पितामह, प्रपितामहोंका श्राद्ध करे, और माताका पिताकी पत्नीरूपसे एकोद्दिष्ट श्राद्ध करके अपनी मातृरूपसे फिर पार्वणश्राद्ध करे; यह त्रिस्थलीसेतुमें कहा है। वह भी फल्गु, विष्णुपद, अक्षयवटमें ही करना, यह किन्हींका कथन है। आदि, अन्तमें करना यह कोई लिखते हैं; मध्य और अन्तमें करना, यह दूसरे कहते हैं। हमें तो यह उचित प्रतीत होता है कि संकोचमें कोई कारण नहीं इससे गयाका सब श्राद्ध माताके निमित्त करना चाहिये। और मदनपारिजातमें यह कहा है कि जीवत्पितृक द्विजको अग्निहोत्रीके विना श्राद्ध न करना चाहिये, और साग्नि भी उसको ही करे कि जिसको पिता देता है यह सुमंतुका वाक्य है और साग्नि ही जीवत्पितृक तीर्थादि श्राद्ध करे, और जिसकी शाखा मैत्रायणीय हो और को नहीं। कारण कि परिशिष्टमें यह लिखा है कि ये छः जीवत्पितृकको करने। यह रत्नावली, दिवोदास आदिका कथन है सो अनुचित है। कारण कि पृथ्वीचन्द्रोदयने यह लिखा है कि सुमन्तुका कथन पिंडपितृयज्ञमें है, वा संन्यासी पितासे पृथक् विषयमें है और पृथ्वीचन्द्रोदयका कथन है कि वृद्धि तीर्थकी प्राप्ति इत्यादि वाक्यको साधारण होनेसे औरको भी मानने योग्य है, इसी प्रकार निरग्निको नान्दीमुख श्राद्ध पहले लिखा है ऐसा ही पितामहके जीवनमें जानो विशेष तो हमारे पिताके रचे जीवत्पितृक निर्णयमें स्पष्टरूपसे देख लेना चाहिये। अब उसका निर्णय कहते हैं, जिसका पितामह जीवित हो और पिता मृतक हो गया हो, वा पितामह उस श्राद्धको भोजन करे। इससे जीते हुए पितामहको भोजन कराना यद्यपि मनुने लिखा है, तथापि प्रत्यक्ष पूजनका पूर्वमें निषेध कह आये हैं तिससे पितामहको छोड़कर पिता, प्रपितामह वृद्धप्रपितामहोंको ही जानना चाहिये। कारण कि मनुका कथन है कि जिसका पिता

इति मनुना जीवतः पितामहस्य भोजनमुक्तम्, तथापि प्रत्यक्षार्चनस्य पूर्वं निषिद्धत्वात् पितामहं विहाय पितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहेभ्यो देयम् । "पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः । पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥" इति मनूक्तेः । अयमेव सर्वसंमतः पक्षः । यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे-"पितामहे ध्रियमाणे पितुः प्रेतस्य निर्वपेत् । पितुस्तस्य निवृत्तस्य जीवेच्चेत् प्रपितामहः ॥" इति एकपुरुषं द्विपुरुषं वा पार्वणमाह, तत्तीर्थपितृयज्ञपरम् । वृद्धौ पूर्वोक्तमेव । एवं पूर्वयोर्मृतयोः प्रपितामहे जीवति पितृमात्रे मृते परयोर्जीवतोश्च वृद्धप्रपितामहादिभ्यो ज्ञेयम् । 'जीवन्तमपि दद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः ।' इति कात्यायनोक्तेश्च । एतत्सर्वं मनसि कृत्वाऽह हेमाद्रौ विष्णुः-पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात् । यस्य पिता प्रेतः स्यात्सपित्रे पिण्डं निधाय पितामहात् पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यात् । यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्यां दद्यात् । यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहात्पराभ्यां दद्यात् । यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा प्रपितामहाय दद्यात् । "मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्र-

---

मृतक हो गया हो; और पितामह जीवित हो वह पिताका नाम लेकर प्रापितामहका ले, यही पक्ष सबको सम्मत है । जो छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि पितामह जीता हो तो मरे हुए पिताको पिण्डदान करे, उसका भी पिता मर गया हो और प्रपितामह जीता हो तो एक पुरुष वा दो पुरुषका पार्वण करे, वह तीर्थपर पितृयज्ञके विषयमें है, वृद्धिश्राद्धमें तो पूर्वोक्त ही उचित है । इसी प्रकार पहले दोनों मृतक हुए हों और प्रपितामह जीता हो, पिता मृतक हो गया हो और अगले दोनों जीते हों तो वृद्धप्रपितामहादिको जानना । कारण कि कात्यायनका कथन है कि ब्राह्मण जीते हुएको वा मरे हुएको अन्न, जलदान करे, वा पिताके पितरोंको वह दान करे जो जीवत्पितृक हो, यह भी अपर श्रुति है । इस सबको विचार करके हेमाद्रिमें विष्णुका कथन है कि, पिताके जीते जो श्राद्ध करे, वह उनका करे जिनका पिता करता हो, पिता, पितामह, प्रापितामहके जीते न करे, जिसका पिता मृतक हुआ हो वह पिताके निमित्त पिंड रखकर पितामहसे परे दोनोंको दे, जिसके पिता, प्रपितामह दोनों मृत्युको प्राप्त हुए हों वह पितृके निमित्त पिण्ड रखकर पितामहसे परे दोनोंको दे । जिसका पितामह मृत्युको प्राप्त हुआ हो वह उसके निमित्त पिंड रखकर प्रपितामहसे परोंको दे । जिसके पिता, पितामह मृत्युको प्राप्त हुए हों वह उन दोनोंके पिण्डको देकर पितामहको दे, मातामहोंका भी श्राद्ध बुद्धिमान् मनुष्य इसी प्रकार मन्त्रके ऊहसे न्यायके अनुसार करे, और शेषोंका मन्त्रसे भिन्न करे । यहां पिताके

वार्जितम् ॥" इति। अत्र पितृवन्मातामहे जीवति तत्पित्रादिभ्यः यथा तत्र त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्तथात्रापीत्यादि सर्वमतिदेश्यम्। एवं मातृजीवनेऽपीति शूलपाणिकालादर्शौ । तन्न । येभ्य एवेत्यादौ यच्छब्दादेर्व्यक्तिविशेषवाचित्वेन तदप्रसङ्गादिति दिक्। उत्तरार्धं व्याख्यातं प्राक् । यत्त्वत्र विज्ञानेश्वरेणोक्तं 'पित्रे पिण्डं निधायेति पितुरेकोद्दिष्टविधिना श्राद्धं कृत्वा प्रपितामहादिभ्यः पार्वणं कुर्यात्' तद्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावपक्षे सपिण्डीकरणस्थानापन्नं ज्ञेयम्। 'व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डना।' इति वचनात्। दर्शादौ तु पितुरेकोद्दिष्टमेव कार्यम् । ' न जीवन्तमतिददाति ' इति श्रुतेः। "जीवेत्पितामहो यस्य पिता चान्तरितो भवेत् । पितुरेकस्य दातव्यमेवमाहुर्मनीषिणः॥" इति यज्ञपार्श्वोक्तेः। 'पितामहे जीवति वै पितर्येव समापयेत्।' इति हारीतोक्तेश्च। शिष्टास्तु-"व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता। यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः॥" इति माधवीये स्कान्दोक्तेर्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावः पितृव्यादिविषय इत्याहुः । एष विधिर्निषेधरूपः । त्रिषु जीवत्सु विष्णुराह-'त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्' इति तद्दर्शादिविषयम् । नान्दीश्राद्धं तु परेभ्यास्त्रिभ्यो भवत्येवेति कल्पतरुः । पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु

मातामहके जीवते उसके पिता आदिको दे, जैसे वहां तीनके जीवते न करे वैसे ही यहां भी न करे, यह सब अतिदेश करे। इसी प्रकार माताके जीवनमें भी समझना चाहिये यह शूलपाणि और कालादर्शमें लिखा है, सो उचित नहीं। कारण कि 'येभ्य एव' इत्यादि यत् शब्द आदि व्यक्तिविशेषके कथन करनेवाले हैं, इससे प्राप्तिका प्रसंग ही नहीं है, यह संक्षेपसे कहा है। उत्तरके आधे श्लोकका अर्थ पहिले कह आये हैं जो यहां विज्ञानेश्वरने लिखा है कि पिताको पिंड देकर, पिताका एकोद्दिष्टविधिसे श्राद्ध करके प्रपितामह आदिका पार्वणश्राद्ध करे, वह व्युत्क्रमसे मृतक हुएके सपिंडी न करनेके पक्षमें है, वही सापिंडीके स्थनामें जानना क्योंकि व्युत्क्रमसे जो मरे हों उनकी सपिंडी न करनी चाहिये, यह कथन है, अमावस्या आदिमें तो पिताका एकोद्दिष्ट ही करे; कारण कि यह श्रुति है कि जीवतेको न दे जिसका दादा जीता हो आर पिता मर गया हो वह एक पिताको ही दे; ऐसा बुद्धिमानोंका कथन है, यह यज्ञपार्श्व लिखते हैं । और हारीतने भी कहा है कि पितामह जीता हो तो पितापर ही श्राद्धको पूर्ण कर दे। शिष्ट तो कहते हैं कि व्युत्क्रमसे मरोंकी सपिण्डी न करे, यदि माता, पिता, भर्ता जीता हो तो यह विधि नहीं है, ऐसा माधवीयमें स्कंदके कथनसे व्युत्क्रमसे मरेको सपिंडीका अभाव पितृव्य आदिके विषयमें लिखा है, यह कहते हैं। (एष) इसी विधिसे त्यागरूप लेना। तीन जीते हो तो विष्णुने यह लिखा है कि तीन जीवित हों तो न करे, यह अमावस्याके विषयमें है, नान्दीश्राद्ध तो पिछले तीनोंका होता ही है, यह

'दद्यात्रिभ्यः परेभ्यस्तु जीवेच्चेत्रितयं यदि ।' इति मनूक्तेः सर्वत्र विकल्पः । स च देशाचाराद्व्यवतिष्ठत इत्याहुः । सुदर्शनभाष्ये तु मासिकश्राद्धं जीवत्पित्रादिना व्युत्क्रममृतपित्रादिना च कार्यमेवेत्युक्तम् । मदनरत्ने क्रतुः—"अष्टकादिषु संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु । चन्द्रसूर्यग्रहे पाते स्वेच्छया पूज्ययोगतः ॥ जीवत्पिता नैव कुर्याच्छ्राद्धं काम्यं तथाखिलम् –" अन्ये विशेषाः श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये भट्टकृतत्रिस्थलीसेतौ च ज्ञेयाः । इति निर्णयसिन्धौ जीवत्पितृकादिश्राद्धम् ॥ अथ विभक्ताविभक्तनिर्णयः । पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः—"बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः । सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ॥ द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥" ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेऽपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः । तेन ये ब्रह्मचर्यादिनियमास्ते फलितसंस्कारत्वात्सर्वैः कार्याः । एवं संसृष्टिनामपि तुल्यत्वात् । मिताक्षरायां नारदः—"भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते । विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक्पृथक् ॥" बृहस्पतिरपि—"एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम् । एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद् गृहेगृहे ॥" अत्र यद्यप्यविशेषश्रवणात् ब्रह्मयज्ञसंध्यादिष्वप्यविभक्तानां पृथङ्निषेधः प्राप्नोति, तथापि द्रव्यसा-

---

कल्पतरुमें लिखा है । पृथ्वीचन्द्रोदय तो तीन जीते हों तो परले तीनोंको दे, इस मनुके वाक्यसे सर्वत्र विकल्प होता है; उस विकल्पकी देशाचारसे व्यवस्था जाननी, ऐसा कहते हैं । सुदर्शनभाष्यमें तो लिखा है कि मासिक श्राद्ध व्युत्क्रमसे मरे पिता आदिका उसको न करना चाहिये; जिसका पिता जीता हो । और मदनरत्नमें क्रतुका कथन है कि अष्टका आदि संक्रांति, मन्वादि, युगादि, चन्द्रसूर्यका ग्रहण, व्यतीपात इनमें अपनी इच्छासे यथायोग्य अर्चन करके जीवत्पिता सम्पूर्ण काम्य श्राद्ध न करे, और विशेष हमारे पिताके रचे जीवत्पितृक निर्णयमें और भट्टकृत त्रिस्थलीसेतुमें लिखा है, वहां विस्तारपूर्वक देख लेना चाहिये । इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ जीवत्पितृकश्राद्धम् । अब विभक्त और अविभक्तका निर्णय लिखते हैं—पृथ्वीचन्द्रोदयमें मरीचिने लिखा है कि यदि पिताके बहुत पुत्र एकत्र रहते हों तो सबका मत जानकर बडे भ्राताको ही करना चाहिये, कारण कि इकट्ठे द्रव्यसे एकने जो किया वह सबने किया ऐसा जानना चाहिये, अर्थात् जेठा ही करे तो भी उसके फलभागी सभी होते हैं, इससे जो ब्रह्मचर्य आदि नियम कहे हैं वे संस्कारके अंग होनेसे सबको करने चाहिये । इसी प्रकार बराबर होनेसे संसृष्टियोंको भी जानना चाहिये। मिताक्षरामें नारदका कथन है कि अविभक्त भाइयोंका धर्म एक ही प्रवृत्त होता है, और विभाग होनेपर, उनका धर्म भी भिन्न भिन्न हो जाता है । बृहस्पतिने भी कहा है कि एक पाकसे बसते हुए भाइयोंका पितृ, देव, ब्राह्मण इनका अर्चन एक होता है और भिन्नोंका तो वही घर घरमें हो जाता है । यहां यद्यपि विशेषके अभावसे ब्रह्मयज्ञ, सन्ध्या आदिका भी अविभक्तोंको भिन्न भिन्न निषेध प्राप्त होता है, तो भी द्रव्यसे साध्य

व्ययश्राद्धवैश्वदेवादिष्वेव सः । द्रव्यस्यानेकस्वामिकत्वेनैकस्य व्ययेऽनधिकारात् । यानि तु द्रव्यसाध्यानि मन्त्रजपोपवाससंध्याब्रह्मयज्ञपारायणादीनि नित्यनैमित्तिककाम्यानि तेषु पृथगेवाधिकारः, द्रव्यव्ययाभावेऽनुमत्यनपेक्षणात् । 'द्रव्येण चाविभक्तेन' इत्यस्याविषयत्वात् । "पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत्तथा ॥" इति प्रयोगपारिजाते आश्वलायनस्मृतेश्च । अग्निहोत्रशब्दोऽग्निसाध्यश्रौतस्मार्तनित्यकर्मपरः । तेष्वप्यन्यानुमत्यैवाधिकारेण न्यायसाम्यात् । पितृश्राद्धादिषु तुल्यफलेषु नित्येष्वनुमतिं विनाप्येकस्याधिकारः । "एकोऽपि स्थावरे कुर्याद्दानाधमर्णनविक्रयम् । आपत्काले कुटुम्बार्थे धर्मार्थे च विशेषतः ॥" इति वचनात् । धर्मार्थेऽवश्यकर्तव्ये पितृश्राद्धादाविति विज्ञानेश्वरः । केचित्त्वविभक्तानामपि पृथक्पाकत्वे देशान्तरे च दार्शिकाब्दिकयोः पृथक्त्वमाहुः । "भ्रातॄणामविभक्तानां पृथक्पाको भवेद्यदि । वैश्वदेवादिकं श्राद्धं कुर्युस्ते वै पृथक् पृथक् ॥" इति हारीतोक्तेः । "अविभक्तेन पुत्रेण पितृमेधो मृताहनि । देशान्तरे पृथक्कार्यो दर्शश्राद्धं तथैव च ॥" इति यमोक्तेश्चेति । तत्र मूलं चिन्त्यम् । तदयमर्थः । पञ्चमहायज्ञमध्ये देवभूतपितृ-

---

श्राद्ध वैश्वदेव आदिमें ही निषेध कहा है; कारण कि द्रव्यके स्वामी अनेक हैं, इससे एकको व्यय करनेका अधिकार नहीं है और जो देहसे साध्य मन्त्र, जप, व्रत, सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ, पारायण आदि नित्य, नैमित्तिक वा काम्य कर्म हैं उनमें तो भिन्न भिन्न ही अधिकार है; कारण कि इनमें द्रव्यका व्यय नहीं, इस कारण उनकी अनुमतिकी अनपेक्षासे "द्रव्येण चाविभक्तेन" इस पूर्वोक्त वाक्यका विषय ही नहीं है । प्रयोगपारिजातमें आश्वलायनका वाक्य है कि एक पाकवाले द्विज भ्राताओंके भी ब्रह्मयज्ञ, अग्निहोत्र, देवपूजा और संध्या भिन्न भिन्न होती हैं । अग्निहोत्र शब्दसे अग्निसे साध्य वेद और स्मृतिसे कहे नित्य कर्मका ग्रहण करना, उनमें भी औरकी अनुमतिसे ही न्यायकी साम्यतासे अधिकार है और समान फलवाले पितृश्राद्ध आदि नित्य कर्मोंमें तो अनुमति विना भी एकका अधिकार है; कारण कि ऐसा कथन है कि एक भी भाई आपत्कालमें कुटुम्बके निमित्त और विशेषकर धर्मके निमित्त स्थावर धनका दान, गिरवी और विक्रय करे । विज्ञानेश्वरने "धर्मार्थे" इसका यह अर्थ कहा है कि अवश्य करने योग्य पिता आदिके श्राद्धके निमित्त और कोई तो यह कथन करते हैं कि अविभक्त भाईयोंके भिन्न भिन्न पाक होनेपर और देशान्तरमें अमावस्याका और वार्षिक श्राद्ध भिन्न भिन्न होते हैं; क्योंकि हारीतका कथन है कि अविभक्त भाईयोंका पृथक् पाक हो तो वे वैश्वदेव आदि श्राद्ध भिन्न भिन्न करें, और यमका भी कथन है कि अविभक्त पुत्र पिताके क्षयाह दिनमें और अमावस्याके श्राद्ध देशान्तरमें भिन्न भिन्न करे; उसमें मूल नहीं है, इससे यह अर्थ है कि पञ्चमहायज्ञके मध्यमें देव, भूत, पितृ, मनुष्यके यज्ञोंको अन्य भ्राताओंकी अनुमतिसे

मनुष्ययज्ञानन्यानुमत्या ज्येष्ठ एव कुर्यात् । "होमाग्निदानरहितं न भोक्तव्यं कदाचन ॥ अविभक्तेषु संसृष्टेष्वेकेनापि कृतं कृतम् ॥" इति व्यासोक्तेश्च । यस्य तु ज्येष्ठेनाकृते वैश्वदेवेऽन्नं सिद्धचेत्तेन तूष्णीमग्नौ किंचित् क्षिप्त्वा भोक्तव्यम् । यस्य त्वेषामग्रतोऽन्नं सिद्धचेत्स नियुक्तमग्नौ कृत्वान्नं ब्राह्मणाय दत्त्वा भुञ्जीतेत्यविभक्ताधिकारे पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलोक्तेः । आश्वलायनस्तु पाकपार्थक्ये पृथक्त्वं तदेकत्वेऽपृथक्त्वमाह—"वसतामेकपाकेन विभक्तानामपि प्रभुः । एकस्तु चतुरो यज्ञान्कुर्याद्ब्रह्मयज्ञपूर्वकान् । अविभक्ता विभक्ता वा पृथक्पाका द्विजातयः ॥ कुर्युः पृथक्पृथग्यज्ञान्भोजनात्प्राग्दिने दिने ॥" इति । ब्रह्मयज्ञसंध्यास्नानतर्पणादि तूक्तहेतोः पृथगेव । देवपूजा तूक्तवचनद्वयादेकत्र पृथग्वा ॥ दर्शग्रहणश्राद्धादि त्वेकस्यैव । तीर्थश्राद्धाद्यपि युगपत्सर्वेषामविभक्तानां प्राप्तावेकस्य । भेदेन प्राप्तौ भिन्नम् । गयाश्राद्धेऽप्येवम् । 'एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः । तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ तारिताः स्मो वयं तेन स याति परमां गतिम् ॥" इति हेमाद्रौ कौर्मोक्तेः । काम्येऽपि दानहोमादावन्यानुमत्यैवाधिकारः । द्रव्यासाध्यजपादौ तां विनापि । अपरार्के पैठीनसिः—विभक्तैस्तु पृथक्

ज्येष्ठ ही भ्राता करे । और व्यासका भी कथन है कि होम अग्निदानको त्यागकर अविभक्त और साझी भ्राताओंमें कभी भी पदार्थको एक भाई न भोगे । और जहां जेठने वैश्वदेव न किया हो वहां कनिष्ठ भ्राता मौन हो अग्निमें कुछ अन्नको फेंककर भोजन करे और जिसका सब भाइयोंसे पहले अन्न सिद्ध हो वह (आज्ञासे) अग्निमें अन्न डालकर और ब्राह्मणको देकर फिर भोजन करे, यह पृथ्वीचन्द्रोदयके अविभक्ताधिकारमें गोभिलने कहा है । आश्वलायनने तो यह लिखा है कि पाक पृथक् हो तो भिन्न भिन्न और एक हो तो साथ ही होता है; कारण कि यह कथन है कि, विभक्त भाई यदि एकपाकसे होते हों तो ब्रह्मयज्ञ आदि चार यज्ञोंको एक ही करे, अविभक्त वा विभक्त द्विजाति यदि भिन्न पाकवाले हों तो भोजनसे प्रथम प्रतिदिन भिन्न भिन्न यज्ञ करें । ब्रह्मयज्ञ, स्नान, संध्या, तर्पण आदि तो पूर्व कहे हेतुसे भिन्न भिन्न होते हैं, देवपूजा तो ऊपर कहे वाक्योंसे एकत्र वा भिन्न २ करनी, अमावस्या, ग्रहण, श्राद्ध आदि तो एकको और वैसे ही तीर्थश्राद्ध आदि भी एकवार सबको करने चाहिये, भेदसे भिन्न भिन्न प्राप्त हो तो पृथक् पृथक् करने । गयाश्राद्धमें भी इसी प्रकार जानना क्योंकि हेमाद्रिमें कौर्मका कथन है कि बहुतसे शीलवान् और गुणवान् पुत्रोंकी इच्छा करनी । यदि इकट्ठे रहते हुए उनमें एक भी गयाको गमन करे तो उसने पितर तार दिये और वह स्वयं भी परमगतिको प्राप्त होता है । काम्यकर्मके दान होम आदिमें भी औरकी अनुमतिसे और जिनमें द्रव्य न लगे ऐसे जप आदिमें तो अनुमतिके विना भी अधिकार है । अपरार्कमें पैठीनसिका वचन

कार्यं प्रतिसंवत्सरादिकम् । एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम् ॥ " सांवत्सरात्पूर्वाणि मासिकान्येकत्रैव । तदाह लघुहारीतः-" सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश । पृथङ्नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित् ॥" सपिण्डनं मासिकोपलक्षणम् । " अर्वाक्संवत्सराज्ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्यात्समेत्य तु । ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात् सर्वे कुर्युः पृथक्पृथक् ॥" इति व्यासोक्तेः । उशनाः-" नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ॥" मघात्रयोदशीश्राद्धं त्वविभक्तानामपि पृथगित्युक्तं प्राक् । यत्तु वृद्धवसिष्ठः-" मासिकं च वृषोत्सर्गं सपिण्डीकरणं तथा । ज्येष्ठेनैव प्रकर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं तथा ॥" इति । तन्निर्मूलम् । बह्वृचपरिशिष्टे-' नवश्राद्धं सह दद्युः ।' अथ तीर्थश्राद्धनिर्णयः । तत्र यद्यप्यस्मत्पितामहकृतत्रिस्थलीसेतुरेव जागर्ति, तथापि किंचिदुच्यते । तत्र यात्रायाम्-" सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि संयतः । प्रायश्चित्ती व्रजेत्तीर्थं पत्नीविरहितोऽपि वा ॥ यज्ञेष्वनधिकारी वा यश्च वा मन्त्रसाधकः ॥ " इति कौर्मादिवचनात्साग्नेः सपत्नीकस्यैवाधिकारः । भारते-" ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम । न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नानात्तीर्थे महात्मनः ॥" स्कान्दे विधवाधर्मेषु-' स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णुनामग्रहं मुहुः । ' एतत्पुत्राद्यनुमत्यैव ।

है कि विभक्त भाई वार्षिक श्राद्ध भिन्न भिन्न करे और अविभक्तोंमें तो एकने जो किया वह सबका किया होता है । वर्षदिनसे पहले मासिक तो एकत्र होते हैं वही लघुहारीतने लिखा है कि सपिंडीकरण पर्यन्त जो षोडश श्राद्ध हैं, उनको विभक्त भाई भी भिन्न भिन्न न करे, इस वाक्यमें सपिंडन मासिकका उपलक्षण है, क्योंकि व्यासका कथन है कि वर्षदिनसे प्रथम सब श्राद्धोंको बड़ा भाई एकल करे और सपिंडीके पीछे सब भाई भिन्न भिन्न करें । उशनाका कथन है कि नवश्राद्ध, सपिंडी और अन्य षोडश श्राद्धोंको विभक्त भाइयोंमें एक ही करे और मघा त्रयोदशीके श्राद्धको तो अविभक्त भ्राता भी भिन्न करे यह पहले कथन कर आये । जो वृद्धिवसिष्ठका कथन है कि मासिक, वृषोत्सर्ग, सपिंडीकरण और प्रथम वार्षिकको ज्येष्ठ भाई ही करे, सो निर्मूल है । कारण कि बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि नवश्राद्धको एकत्र ही देना चाहिये । अब तीर्थश्राद्धका निर्णय लिखते हैं-उसमें यद्यपि हमारे पितामहके रचे त्रिस्थली सेतुमें पूर्ण निर्णय है, तथापि कुछ कहते हैं, वहां इन कूर्मपुराणोंके वाक्यसे अग्नि और पत्नीसहितका ही अधिकार है कि अग्नि और पत्नीसहित इन्द्रियोंको रोककर तीर्थयात्रा करे और जो प्रायश्चित्ती हो वह स्त्रीके विना भी तीर्थमें गमन करे । भारतमें कहा है कि हे राजन् ! श्रेष्ठ ब्राह्मण, क्षत्री वा शूद्र वैश्य वे तीर्थमें स्नान करनेसे महात्मा हो जाते हैं, इससे निंदित योनिमें जन्म नहीं लेते । स्कन्दपुराणके विधवाधर्ममें कहा है कि स्नान, दान, तीर्थयात्रा, विष्णुके नामका बारंबार जप

सधवायाः पत्या सहैवेति प्रागुक्तम् । काशीखण्डे-' मातुः पितुः क्षेप्तुमनास्तथास्थि सुतस्तु कुर्यात्खलु तीर्थयात्राम् । ' तद्विधिः स्कान्दे-" तीर्थयात्रां चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे । गणेशं च पितॄन् विप्रान् साधून् शक्त्या प्रपूज्य च ॥ कृतपारणको हृष्टो गच्छेन्नियमधृक्पुनः । आगत्याभ्यर्च्य च पितॄन् यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥ " उपवासात् प्राग् मुण्डनं च कार्यम् । " प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः । कचानां वपनं कुर्याद्यथा न विकचो भवेत् ॥ " इति विष्णूक्तेः । प्रायश्चित्तार्थयात्रायां गयायां चैतदित्येके । केचित्तु हेमाद्रौ भारते-" केशश्मश्रुनखादीनां वपनं न च शस्यते । अतो न कार्यं वपनं गयाश्राद्धार्थिना सदा ॥ ये भारतेऽस्मिन् पितृकर्मतत्पराः संधार्य केशानतिभक्तिभाविताः । ऋणक्षयार्थं पितृतीर्थमागतास्तेषामृणं संक्षयमेष्यति ध्रुवम् ॥ " इति निषेधात् । गयायात्राङ्गं वपनं न कार्यमित्याहुः । वस्तुतस्तु-गयाधिकरणकस्यैवायं निषेधः । नतु यात्राङ्गस्य ' श्राद्धार्थिना ' इत्युक्तेः । ' विशालां विरजां गयाम् ' इत्यनेनैकवाक्यत्वाच्च । श्राद्धं च षण्णवद्वादशदैवतं वा घृतेन कार्यम् । ' गच्छेद्देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्स सर्पिषा । ' इति विष्णुपुराणात् । यात्राङ्गवृद्धि-

---

करे, यह भी पुत्रकी अनुमतिसे जानना चाहिये और सुहागिनी तो पतिके संग ही गमन करे। काशीखण्डमें कहा है कि जब पुत्रके मनमें माता पिताके अस्थि डालनेकी अभिलाषा हो तब तीर्थयात्रा करे, उसकी विधि स्कंदपुराणमें यह कही है कि तीर्थयात्राके करनेकी इच्छावाला मनुष्य प्रथम घरमें व्रत करे और गणेश, पितर, ब्राह्मण, साधु इनकी यथाशक्ति पूजा करके पारणाके अनन्तर प्रसन्नतासे नियमोंको धारण कर फिर आकर पितरोंकी अर्चा करनेसे यथोक्त फलभागी होता है। व्रतसे प्रथम मुण्डन भी करना चाहिये; कारण कि विष्णुका कथन है कि प्रयागतीर्थकी यात्रा, पितामाताका मरण इनमें केशोंका मुण्डन करावे वृथा केशोंसहित न हो। किन्हींका कथन है कि प्रायश्चित्तके निमित्त यात्रामें और गयामें भी मुण्डन करावे । कोई तो हेमाद्रिमें महाभारतका यह वाक्य कहते हैं कि बाल, नख, श्मश्रुका मुण्डन अच्छा नहीं, इससे गयाश्राद्धकी इच्छावाले मुण्डन न करावे, क्योंकि जो इस भारतखण्डमें पितृकर्ममें तत्पर हैं, वे अत्यन्त भक्तिसे केशोंको धारकर पितरोंके ऋण दूर करनेके निमित्त पितृतीर्थ (गया) में आये हैं उनका ऋण निश्चयसे नष्ट होगा, इन निषेधोंसे गया यात्राका अंग मुंडन न करना चाहिये । सिद्धान्त तो यह है कि गयाधिकारके अंगका यह निषेध है, यात्राके अंग मुंडनका नहीं है कारण कि श्लोकमें ' श्राद्धार्थिना ' लिखा है और इसके संग एकवाक्यता भी है कि विशाला, विरजा और गया इनमें मुण्डन करे। छः नौ द्वादश देवताके श्राद्ध भी घीसे करना चाहिये; कारण कि विष्णुपुराणका कथन है कि जो मनुष्य देशान्तरको गमन

श्राद्धोक्तेश्च। श्राद्धं च पारणादिन एव। "उपोष्य रजनीमेकां प्रातः श्राद्धं विधाय च। गणेशं ब्राह्मणान्नत्वा भुक्त्वा प्रस्थितवान् सुधीः॥" इति स्कान्दलिङ्गात्। गौडनिबन्धे गौतमः-"तीर्थयात्रासमारम्भे तीर्थात् प्रत्यागमेऽपि च। वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत बहुसर्पिःसमन्वितम्॥" वृद्धिपदं तद्धर्मार्थम्। श्राद्धोत्तरं यात्रासंकल्प इति भट्टाः। वायवीये-"उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः। विधाय कार्पटीवेषं ग्रामं गत्वा प्रदक्षिणम्॥ ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्॥" घृतस्य भोजनं, तच्च क्रोशमध्ये, श्राद्धोत्तरं क्रोशगमननिषेधात्। "ततः प्रतिदिनं गच्छेत् प्रतिग्रहविवर्जितः।" गयायामेव तन्नान्यत्रेति केचित्। हेमाद्रिस्तु-गयायां श्राद्धदिने एव प्रस्थानम्। तीर्थान्तरे तु श्राद्धोत्तरदिन इत्याहुः। प्रभासखण्डे-"यत्रान्यं कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां नरेश्वरः। स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम्॥" यात्रामध्ये आशौचे रजसि वा शुद्धिपर्यन्तं स्थित्वा तदन्ते गच्छेत्। मार्गवैषम्ये त्वदोषः। यात्रामध्ये तीर्थान्तरप्राप्तौ श्राद्धादि कार्यमेव वाणिज्याद्यर्थं गतेन तु मुण्डनोपवासादि न कार्यमिति प्रयागसेतौ भट्टाः। वस्तुतस्तु तत्रापि मुण्डनोपवासश्राद्धादि कार्यम्। 'अर्धं तीर्थफलं

करे वह घीसे श्राद्ध करे, इससे भी यात्राका अंग वृद्धिश्राद्ध लिखा है। और श्राद्ध भी पारणाके दिन करना चाहिये; कारण कि स्कन्दपुराणका प्रमाण है कि एक रात्रि उपवास और प्रातःकाल श्राद्ध करके गणेश और ब्राह्मणको नमस्कार कर भोजनके अनन्तर बुद्धिमान् मनुष्य गमन करे। गौडनिबन्धमें गौतमका कथन है कि तीर्थयात्राके प्रारम्भ और तीर्थयात्रासे लौटनेमें बहुत घीसे वृद्धिश्राद्ध करे वृद्धिपद वृद्धिके धर्मोंके निमित्त है। यह भट्ट कहते हैं कि, श्राद्धके अनन्तर यात्राका संकल्प करे। वायवीयपुराणमें लिखा है कि गया जानेको उद्यत मनुष्य विधिसे श्राद्ध करके और कर्पटके वेषको धारण कर ग्रामकी परिक्रमा करे, फिर ग्रामान्तरमें गमन कर श्राद्धके शेष घृतका भोजन करे, वह भोजन भी क्रोशके मध्यमें करे; कारण कि श्राद्धके अनन्तर क्रोशसे उत्तर (अधिक) जानेका निषेध है। फिर प्रतिग्रहको छोड़कर प्रतिदिन गमन करे गयामें ही ये सब नियम हैं और स्थानमें नहीं; यह कोई लिखते हैं। हेमाद्रिमें तो यह लिखा है कि गयामें तो श्राद्धके दिन ही गमन करे, अन्य तीर्थोंमें श्राद्धसे अगले दिन। प्रभासखण्डमें कहा है कि हे राजन्! जो मनुष्य अपने द्रव्य और सवारीसे दूसरेको तीर्थयात्रा कराता है उसको चौगुना पुण्य होता है। यात्राके मध्यमें आशौच वा रजोधर्म होनेपर शुद्धिपर्य्यन्त ठहरकर उसके पीछे गमन करे, परन्तु यदि विषम मार्ग हो तो दोष नहीं। यात्राके मध्यमें कोई तीर्थ आ जाय तो वहां भी श्राद्ध आदि करे और व्यापार आदिके निमित्त गयामें गया हो तो मुण्डन, व्रत आदि न करने चाहिये। यह प्रयागसेतुमें भट्टोंने लिखा है, सिद्धान्तसे तो वहां भी मुण्डन, व्रत आदि करने, कारण कि ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि जो प्रसंगसे गमन करता है उसको भी तीर्थका आधा पुण्य प्राप्त

तस्य यः प्रसंगेन गच्छाति । ' इति ब्राह्मोक्तेः । स्कान्दे-"द्विर्भोजनं तृतीयांशं हरेत्तीर्थफलस्य च । वाणिज्यं त्रींस्तथा भागान् हन्ति सर्वं प्रतिग्रहः ॥" यानं धर्मचतुर्थांशं छत्रोपानहमेव च । इत्युत्तरार्धपाठान्तरम् । अत्र नदीषु विशेषः-"मार्गेऽन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादि परपारतः । अर्वागेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः ॥" यत्तु-"पितॄन्संतर्पयित्वा तु नदीं-स्तरति यो नरः । तस्यासृक्पानकामास्ते भवन्ति भृशदुःखिताः ॥" इति, तत्सरस्वतीपरम् । शंखः-"तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेण स्नानं तीर्थे समाचरेत् । स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राकृतं न तु ॥" स एव-'न स्रवन्तीमतिक्रामेदनवसिच्य । ' तीर्थप्राप्तौ तु प्रभासखण्डे-"यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरैर्नरैः । लुठित्वा लोठनी तत्र कृत्वा कार्पटिकाकृतिम् ॥" कृत्वेति गृहान्निर्गमसमये करणे इदम् । "प्रथमं चालभेत्तीर्थं प्रणवेन जलं शुचि । अवगाह्य ततः स्नायाद्यथावन्मन्त्रयोगतः ॥" मन्त्रश्च प्रभासखण्डे-"नमोऽस्तु देवदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने । रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः ॥ सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी । सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थे पापप्रणाशिनी ॥" इति मन्त्रवत्स्नानं च वपनोत्तरं कार्यम् ॥ "पूर्वमावाहनं तीर्थे मुण्डनं तदनन्तरम् । ततः स्नानादिकं कुर्यात्

होता है । स्कन्दपुराणका वचन है कि दूसरी बार भोजन तीर्थफलके तीसरे भागको और व्यापार तीन भागको और प्रतिग्रह सम्पूर्ण फलको नष्ट करते हैं तथा सवारी, छत्र, जूता ये पुण्यके चतुर्थांशको हरते हैं । यहां नदीमें यह विशेष लिखा है कि "यदि मार्गमें नदी आ जाय तो पार उतरकर स्नान आदि करना चाहिये और सरस्वतीके तो इधरपार ही करे, यह मार्गके गमनकी विधि है । जो यह कथन है कि जो मनुष्य पितरोंको तृप्त करके नदीको पार तरता है तो अत्यन्त दुःखित हुए पितर उसके रक्तपानकी इच्छा करते हैं, यह वाक्य सरस्वतीके विषयमें है । शंखका कथन है कि प्रसंगसे तीर्थमें जाकर जो तीर्थस्नान करता है वह स्नानके फलको प्राप्त होता है, तीर्थयात्राके फलको नहीं प्राप्त होता और स्नान किये विना नदीका अवलंघन न करे । तीर्थपर प्राप्त होनेपर तो प्रभासखंडमें यह कहा है कि यानोंको त्यागकर मनुष्य चरणोंसे चले, रेतमें लोटकर कार्पटिक वेषको धारण करे 'कृत्वा' इस पदसे घरसे चलते समय ही कार्पटिक वेष धारण करे, यह प्रतीत होता है । तीर्थमें जाय तो प्रथम ॐ कारसे तीर्थके शुद्धजलको (हाथसे) विलोडकर और मन्त्रको पढ़कर यथायोग्य स्नान करे । मन्त्र तो प्रभासखंडमें यह लिखा है कि देवोंके देव शितिकंठ दंडधारी रुद्र, धनुष और चक्रको हाथमें लिये विष्णु तथा वेधा (ब्रह्मा) रूप आपको प्रणाम है, सरस्वती और वेदोंकी माता सावित्री इस तीर्थमें पापोंके नाश करनेवाली प्राप्त हो । यह मंत्रसहित स्नान मुण्डनके अन्तमें करना चाहिये; कारण कि यह कथन है कि तीर्थमें प्रथम आवाहन, फिर मुण्डन और उसके पीछे स्नान

पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेत्" इत्युक्तेः। यत्तु-'गत्वा स्नानं प्रकुर्वीत वपनं तदनन्तरम्'। इति तन्मुसलस्नानपरम्। काशीखण्डे-'तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा।' उपवासे तत्रैवोक्तम्। "यदह्नि तीर्थप्राप्तिः स्यात्तदह्नः पूर्ववासरे। उपवासः प्रकर्तव्यः प्राप्तेऽह्नि श्राद्धदो भवेत्॥" अत्र-'उपवासं ततः कुर्यात्तस्मिन्नहनि सुव्रतः।' इति प्राप्तिदिनेपूपवासोक्तेर्विकल्पः। मुण्डने तु स्कन्दे-वलौ-"मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः। वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं विरजं गयाम्॥" विरजं (लोणार) प्रसिद्धम्। महातीर्थपरः सर्वतीर्थशब्दः। अत्र विशेषः स्मृत्यन्तरे-"ऊर्ध्वमब्दाद्द्विमासोनात्पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि। मुण्डनं चोपवासं च ततो यत्नेन कारयेत्॥ तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्तमृते द्विज।" इति वा पाठः। "प्रयागे प्रतियात्रं तु योजनत्रय इष्यते। क्षौरं कृत्वा तु विधिवत्ततः स्नायात्सितासिते॥" तथा च बृहस्पतिः-"क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम्। पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तेऽथ तीर्थके॥" अपरार्के स्कान्दे-"उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः। केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत्॥" इदं प्रयागे सधवानामपि समूलं भवतीति भट्टाः। युक्तं तु "सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदंगुलिद्वयम्। एवमेव हि नारीणां शस्यते वपन-

---

आदि कर फिर श्राद्ध करे, जो कि यह कहा है कि जाकर स्नान करे; फिर मुण्डन करे यह वाक्य मुशलस्नानके निमित्त है। तीर्थका उपवास काशीखंडमें कहा है कि तीर्थमें जाकर स्नान और शिरसे मुण्डन करना, व्रत भी वहीं कहा है जिस दिन तीर्थकी प्राप्ति हो उससे प्रथम दिन व्रत करना। जिस दिन तीर्थ प्राप्त हो उस दिन श्राद्ध करे, यहां उस वाक्यसे विकल्प कहा है, सुव्रत मनुष्य उसी प्राप्तिके दिन व्रत करे, मुण्डनमें तो स्कन्द और देवलका कथन है कि मुण्डन, व्रत सब तीर्थोंकी विधि है, कुरुक्षेत्र, विशाला, विरजा (लोणार), गया इनको त्यागकर, सर्वतीर्थ शब्दसे प्रसिद्ध बडे २ तीर्थ ग्रहण करने। यहां विशेष स्मृत्यंतरमें कहा है कि दो महीने कम वर्षदिनसे प्रथम फिर तीर्थको जाय तो मुण्डन उपवास यत्नसे करे। अथवा यह लिखा है कि हे ब्राह्मण! प्रायश्चित्तके विना तो वे दोनों (मुण्डन और उपवास) श्रेष्ठ नहीं कहे हैं, प्रयागमें तो यात्रा २ में बारह कोश पर्यंत यह मुण्डन कहा है क्षौर कराकर विधिसे त्रिवेणीमें स्नान करे यह बृहस्पति कहते हैं कि निषेध होनेपर भी क्षौर और नैमित्तिक कर्म करना। पित्रादिकी मृत्युदीक्षा, प्रायश्चित्त और तीर्थमें मुण्डन करे, अपरार्कमें स्कन्दपुराणका कथन है कि उत्तरको ना पूर्वको मुख करके बुद्धिमान् मनुष्य मुण्डन करावे, और केश, श्मश्रु नख ये पहले उत्तरके ही मुँडवावे यह मुण्डन प्रयागमें सुहागिनोंका भी मूलसे होता है, यह भट्ट लिखते हैं। यथार्थ तो यह है कि सब केशोंको उभार (उठा) कर ऊपरसे दो २ अंगुल छेदन करे, इसी प्रकार स्त्रियोंका मुण्डन कराना उचित है। वह मुण्डन उनका न करना चाहिये जिनका

क्रिया ॥" इति । तच्चाकृतचूडानां न कार्यमिति केचित् । तत्त्वं तु नैमित्तिकत्वात् पित्रादिमृतवत् कार्यमेवेति । तदपि प्रयागे नित्यम् । नान्यत्र । तच्च यतिभिस्तीर्थेऽपि ऋतुसंधिष्वेव कार्यं नान्यदा । 'कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वापयेत्' इति स्मृतेः । इदं जीवत्पितृकेणापि तीर्थे कार्यम् । नच 'मुण्डनं पिण्डदानं च' इति दक्षवचनेन निषेधः । "विना तीर्थं विना यज्ञं मातापित्रोर्मृतिं विना । यो वापयति लोमानि स पुत्रः पितृघातकः ॥" इति स्मृत्या तत्संकोचात् । तदपि प्रयागे प्रतियात्रम् । अन्यतीर्थे आद्ययात्रायामेवेति शिष्टाः ॥ ततः स्नानम् । परार्थे तु मार्कण्डेयपुराणे-"मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम् । यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टमांशं लभेत सः ॥" पैठीनसिः-"प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिणि मज्जयेत् । मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोऽष्टभागफलं लभेत् ॥" ततस्तर्पणश्राद्धे । पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्मदेवीपुराणकाशीखण्डादिषु । "अकालेऽप्यथवा काले तीर्थश्राद्धं च तर्पणम् । अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत् ॥" मात्स्ये-'पितॄणां चैव तर्पणम्' इति तुर्यपादः । तत्र देवता महालये प्रागुक्ताः । शंखदेवलौ-"तीर्थद्रव्योपपत्तौ च न कालमवधारयेत् । पात्रं च ब्राह्मणं प्राप्य

चौल संस्कार न हुआ हो, यह किन्हींका मत है । सिद्धान्त तो यह है कि निमित्तसे मुण्डनके होनेसे पिता आदिके मरनेके तुल्य करना उचित है वह भी प्रयागमें ही नित्य है और स्थानमें नहीं । और वह भी यति तीर्थमें भी ऋतु ऋतुकी संधिमें ही करे, अन्य कालमें नहीं कारण कि यह स्मृति है, बगल, उपस्थ, शिखाको त्यागकर ऋतुकी संधिमें मुण्डन करावे, इसको जीवत्पितृक भी तीर्थमें करे । यदि कोई शंका करे कि मुण्डन, पिंडदान न करे, इस दक्षवाक्यसे निषेध है, सो उचित नहीं कारण कि इस स्मृतिसे उस स्मृतिका संकोच कहा है कि तीर्थ, यज्ञ, माता पिताका मरण इनको त्यागकर जो मुण्डन करता है वह पुत्र पितृघातक है, वह भी प्रयागमें यात्रा २ में और दूसरे तीर्थमें प्रथम यात्रामें करना, यह श्रेष्ठोंका सम्मत है फिर स्नान करे । दूसरेके निमित्त स्नानमें तो मार्कण्डेयपुराणमें यह कहा है कि माता, पिता, स्त्री, भाई, मित्र, गुरु इनमें जिसके निमित्त स्नान करे वह आठवें अंशका भागी होता है । पैठीनसिका कथन है कि जिसकी कुशाकी मूर्ति बनाकर तीर्थमें अपने संग स्नान करावे उसको आठवां भाग प्राप्त होता है, फिर तर्पण और श्राद्ध करे पृथ्वीचन्द्रोदय और ब्रह्मदेवीपुराण काशीखंड आदिमें कहा है कि, समय हो या न हो तीर्थमें श्राद्ध और तर्पण अवश्य करे, और विलम्ब और विघ्न न करे । मत्स्यपुराणका कथन है कि पितरोंका तर्पण करे, यह चौथा पाद पूर्वश्लोकका है उसके देवता महालयनिर्णयमें पहले कथन कर आये हैं । शंख और देवलका कथन है कि तीर्थ और द्रव्यकी प्राप्ति और सुपात्र ब्राह्मणकी प्राप्ति होनेपर सम-

सद्यः श्राद्धं समाचरेत् ॥ " हारीतः-'दिवा वा यदि वा रात्रौ भुक्तो वोपोषितोऽपि वा । न कालनियमस्तत्र गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम् ॥" भारते-"भुक्तो वाप्यथवाभुक्तो रात्रौ वा यदि वा दिवा । पर्वकालेऽथवाकाले शुचिर्वाप्यथ वाशुचिः ॥ यदैव दृश्यते तत्र नदी त्रिपथगा प्रिय । प्रमाणदर्शनं तस्मान्न कालस्तत्र कारणम् ॥ " आशौचेऽपि कार्यम् " विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत् ॥ " इति पैठीनसिस्मृतेः । तदानीमकरणे त्वाशौचान्ते एव कुर्यात् । प्रभासखण्डे-"न वारं न च नक्षत्रं न कालस्तत्र कारणम् । यदैव दृश्यते तीर्थं तदा पर्वसहस्रकम् ॥" मलमासेऽपि कार्यम् । "नित्ये नैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन्मालिम्लुचे । तीर्थश्राद्धं गजच्छायां प्रेतश्राद्धं तथैव च ॥ " इति बृहस्पतिस्मृतेः । एतच्चाशौचे प्रकृतभोजनस्य रात्रौ वा स्नानश्राद्धादिकमाकस्मिकतीर्थप्राप्तावामहेमश्राद्धविषयं ग्रहणादिवत् । नतु बुद्धिपूर्वमाशौचादौ तीर्थप्राप्तिः कार्या । मलमासे तु मासद्वये तीर्थश्राद्धं कार्यमिति चन्द्रिकायां देवीपुराणे-'श्राद्धं च तत्र कर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् । ' हेमाद्रौ-"अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम् । तृप्तिप्रश्नं च विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्ज-

---

यका विचार न करे, शीघ्र ही श्राद्ध कर दे । हारीतका कथन है कि नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाको प्राप्त होकर भोजनके अनन्तर, व्रतमें, दिन वा रातमें श्राद्धका नियम नहीं है, भारतमें लिखा है कि भुक्त वा अभुक्त, दिन या रात, पर्वकालमें वा अकालमें, पवित्रतामें वा अपवित्रतामें अर्थात् समय हो वा न हो, शुद्ध हो,वा अशुद्ध हो जब गंगाजीका दर्शन हो उसी समय कर्म करे क्योंकि दर्शन ही प्रमाण है वहां कालकी आवश्यकता नहीं । अशौचमें भी तीर्थश्राद्ध करना चाहिये; क्योंकि पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखा है कि विवाह, कठिनमार्ग, यात्रा,तीर्थकर्म इनमें सूतक नहीं है, उसी प्रकार यज्ञादि सब कर्म करे, उस समय न करे तो अशौचके अन्तमें करे । प्रभासखण्डमें कहा है कि वार, नक्षत्र और समय उसमें कारण नहीं है, जब तीर्थका दर्शन हो तभी सहस्र पर्व हैं मलमासमें भी करे, कारण कि बृहस्पतिकी स्मृति है, मलमासमें नित्य और नैमित्तिक कर्म, तीर्थश्राद्ध, गजच्छाया, प्रेतश्राद्ध इन सबको पवित्र होकर करे । यह वाक्य उस मनुष्यके निमित्त आमश्राद्ध और, सुवर्ण-श्राद्धके विषयमें ग्रहणके तुल्य है, जिसने अशौचमें भोजन कर लिया हो और उसको रात्रिमें स्नान, श्राद्ध आदि कर्म करने हों और अकस्मात् तीर्थपर गया हो और जानकर तो अशौचमें तीर्थआदिमें कदाचित् न जाय, मलमासमें तो दोनों मासोंमें तीर्थश्राद्ध करना चाहिये । चन्द्रिकामें देवीपुराणका कथन है कि, वहां अर्घ और आवाहनको त्यागकर तीर्थश्राद्ध करना । हेमाद्रिमें कहा है कि अर्घ, आवाहन, ब्राह्मणोंके अन्नपर अंगुष्ठका लगाना, तृप्तिका पूछना,

येत् ॥" भविष्ये-"आवाहनं विसृष्टिश्च तत्र तेषां न विद्यते । आवाहनं न तीर्थे स्यान्नार्घ्यदानं तथा भवेत् ॥ आहूताः पितरस्तीर्थे कृतार्घ्याः संति वै यतः ।" अग्नौकरणं च नेति रत्नावल्याम् । अत्र षड्दैवते श्राद्धेऽपि मात्रादीनां पिण्डमात्रं ज्ञेयम् । "हविःशेषं ततो मुष्टिमादायैकैकमादृतः । क्रमशः पितृपत्नीनां पिण्डनिर्वपणं चरेत् ॥" इति तीर्थोपक्रमे देवलोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः । ततः सामान्यपिण्डं दद्यात् । "ततः पिण्डमुपादाय हविषः संस्कृतस्य च । ज्ञातिवर्गस्य सर्वस्य सामान्यं पिण्डमुत्सृजेत् ॥" इति तेनैवोक्तेः । पाद्मे-"तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्कान्नेन विशेषतः । आमान्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि ॥" पिण्डद्रव्याणि देवीपुराणे हेमाद्रौ ब्राह्मे च-"सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन वा । कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेन गुडेन वा ॥" पिण्डानां तीर्थप्रक्षेप एव नान्या प्रतिपत्तिरित्युक्तं प्राक् । एतच्च विधवयाऽपुत्रया कार्यम् । न सपुत्रयेत्युक्तं प्राक् 'सपुत्रया न कर्तव्यं भर्त्तुः श्राद्धं कदाचन ।' इति स्मृतेश्च अनुपनीतेनापि कार्यम् । 'एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु ।' इति पाद्मे तीर्थश्राद्धमुपक्रम्योक्तेः। एतच्च जीवत्पितृकेणापि कार्यमित्युक्तं प्राक् । " न कुर्यात्सूतके भिक्षुः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाम् । त्यक्तं संन्यासयोगेन गृहधर्मादिकं व्रतम् ॥ गोत्रादिचरणं सर्वं पितृमा-

---

विकिर इनको तीर्थश्राद्धमें त्याग दे भविष्यका वाक्य है कि आवाहन और विसर्जन न करे, अर्घ न दे, क्योंकि तीर्थमें बुलाये हुए पितरोंको अर्घ दिया हुआ ही है । रत्नावलीमें कहा है कि अग्नौकरण भी न करे । यहां श्राद्धके छः देवता होनेपर भी माता आदिको पिंडमात्र दे । कारण कि तीर्थके प्रकरणमें देवलका यह कथन है कि हविका शेष एक २ मुट्ठी लेकर आदरसे पिताआदिकी पत्नियोंको क्रमसे उसके पिंड दे । यह पृथ्वीचन्द्र लिखते हैं कि फिर सामान्यपिंड दे । कारण कि यह उन्हींका वाक्य है कि फिर संस्कृतहविके पिंडको लेकर अपने सम्पूर्ण जातिसमूहके निमित्त सामान्य पिंड दे । पद्मपुराणका कथन है कि विशेषकर तीर्थश्राद्ध पक्कान्नसे करे, अथवा आमान्न, सुवर्ण, कन्द, मूल फलोंसे करे। देवीपुराणमें पिण्डके द्रव्य कहे हैं, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि सत्तू, मोहनभोग, खीरखल, गुडसे पिंड करने, पिंडोंको तीर्थमें डाल दे,और कोई युक्ति नहीं है, यह प्रथम कथन कर चुके हैं। इसको उस विधवाको भी करना चाहिये जिसके पुत्र न हो, और सुहागिनीको न करना चाहिये । यह प्रथम कह आये हैं, यह स्मृति भी है कि पुत्रवाली स्त्री पतिका श्राद्ध कभी न करे, यज्ञोपवीतहीन भी इसको करे, कारण कि पद्मपुराणमें तीर्थश्राद्धके प्रकरणमें लिखा है कि अनुपनीत भी सब पर्वोंमें तीर्थश्राद्ध करे, इसको जीवत्पितावाला भी करे, यह पहले कह आये हैं । संन्यासीको तो इसे न करना चाहिये, कारण कि यह स्मृति है कि संन्यासी सूतक, श्राद्ध, पिंड, जलदान और संन्यासके योगसे त्यागे, गृहस्थधर्म, व्रत, गोत्र, ऋण, धन, पिता-माताका कुल यह सब वह त्याग कर-

तृकुलं धनम् ॥" इति स्मृतेः । गयायां तूक्तं वायवीये-" दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः । दण्डं स्पृष्ट्वा विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते ॥ गयायां मुण्डपृष्ठे च कूपे यूपे वटे तथा । दण्डं प्रदर्शयन् भिक्षुः पितृभिः सह मुच्यते ॥" कृत्यरत्ने प्रभासखण्डे-" तीर्थे चेत् प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो वृत्तिदुर्लभः । दशांशमर्जितं दद्यादेवं कुर्वन्न हीयते" इति । विशेषान्तराणि भट्टकृतत्रिस्थलीसेतौ ज्ञेयानीति दिक् । इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ तीर्थश्राद्धविधिः समाप्तः ॥

अथाशौचप्रकरणम् ।

नारायणात्मजश्रीमद्रामकृष्णस्य सूनुना । कमलाकरसंज्ञेनाशौचं निर्णीयतेऽधुना ॥१॥ जननाशौचनिर्णयः । मरीचिः-" आचतुर्थात् भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः । अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ स्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात्सपिण्डाशौचवर्जनम् । पाते मातुर्यथामासं सपिण्डानां दिनत्रयम् ॥" अत्र सर्वत्र मूलं मिताक्षरायां ज्ञेयम् । अत्र मासत्रये त्रिरात्रं स्यादित्यनुवादः । रजस्वलात्वेनैव तत्सिद्धेः । यद्यप्यनेन चतुर्थमासेऽपि त्रिरात्रं प्राप्नोति तथापि-

---

चुका, इससे इसको न करे । गयामें संन्यासी जाय तो वायुपुराणमें यह कहा है कि गयामें जाकर संन्यासी दण्डको दर्शन करा दे, पिंडदान न करे, विष्णुपदमें दंडको छुवाकर पितरोंके संग मुक्त होता है । गयामें मुण्डपृष्ठ, कूप, यूप तथा वटमें दण्डको दिखाता हुआ संन्यासी पितरोंके संग मुक्त होता है । कृत्यरत्नके प्रभासखण्डमें भी कहा है कि जीविकारहित ब्राह्मण यदि तीर्थमें प्रतिग्रह ले तो उसमेंसे दशांश दान करनेसे प्रायश्चित्तका भागी नहीं होता है । इससे अधिक देखना हो तो भट्टरचित त्रिस्थलीसेतुमें देख लेना, यहां थोड़ासा लिखा है। इति तीर्थश्राद्धविधिः । इति श्रीमिश्रोपाह्वश्रीयुतपण्डितसुखानन्दपुत्रपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतायां निर्णयसिंधुभाषाटीकायां तीर्थश्राद्धविधिः समाप्तः ॥

अब अशौचनिर्णय लिखते हैं-कि नारायणभट्टके पुत्र श्रीमान् रामकृष्ण, उनके पुत्र कमलाकर भट्ट अब अशौचका निर्णय लिखते हैं । मरीचिने कहा है कि चार महीनेतक गर्भके नाशको स्राव और पांचवें छठे महीनेतक गर्भपात और इससे आगे तो प्रसूति कहाती है, इसमें भी दश दिनका सूतक होता है । स्रावमें माताको तीन रात सूतक लगता है और सपिंडोंको नहीं लगता, पातमें माताको उतने दिनतक अशौच होता है, जितने महीनेका गर्भपात हुआ हो सपिण्डोंको तो तीन दिन अशौच लगता है । इन सबका मूल मिताक्षराआदिमें देख लेना । यहां तीन मासमें तीन रातका अशौच अनुवाद है । कारण कि रजस्वलासे ही तीन दिनका अशौच सिद्ध था । यद्यपि इस रीतिसे चौथे महीनेमें भी तीन रातका अनुवाद

"षण्मासाभ्यन्तरं यावद् गर्भस्रावो भवेद्यदि । तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते ॥" इत्यादिपुराणात् । 'रात्रिभिर्माससतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति ।' इति मनूक्तेः । 'गर्भस्रावे यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः । ' इति मरीच्युक्तेश्चतूरात्रं ज्ञेयम् । अचिरे त्रिमासमध्ये । उत्तमे ब्राह्मणे । अत्र सपिण्डानां स्नानम् । 'सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति ।' इति तत्रैवोक्तेः । एतदाचतुर्थमासात्पाते त्रिदिनस्योक्तेः । अकारणायाः शुद्धेरसंभवात्सद्यः पदं . स्नानपरम् । एवमग्रेऽपि । 'गर्भस्रावे स्नानमात्रं पुरुषस्य ' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः । पुरुषस्येति सपिण्डोपलक्षणम् । पूर्वोक्तवचनात् । आचतुर्थमासं सपिण्डानां न स्नानं किंतु पुंस एव । पाते त्रिदिनं निर्गुणपरम् । गुणवतस्तु-" अजातदन्ते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा । सपिण्डानां तु सर्वेषामेकरात्रमशौचकम् " इति यमोक्तेरेकाह इति मदनपारिजातः । सप्तममासादि दशाहम् । एतत्सर्ववर्णविषयम् । तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च । ' इति व्याघ्रोक्तेः । पराशरः-"जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो

पाया जाता है, तथापि छः महीनेके मध्यमें गर्भका स्राव हो जाय तो महीनोंके तुल्य दिनोंसे स्त्रियोंकी शुद्धि इष्ट है, यह आदिपुराणसे जाना जाता है । और महीनोंके समान रात्रियोंसे गर्भस्रावमें पवित्रता होती है, यह मनुने कहा है । और गर्भस्रावमें महीनेके अनुसार अशौच लगता है, जो गर्भ तीन महीनेका हो, ब्राह्मणके यहां तो तीन दिनमें शुद्धि होती है, इस मरीचिके वाक्यसे चार रात्रिका अशौच जानना । यहां सपिंड स्नान करें, कारण कि उसी स्थलमें कहा है कि गर्भके पातमें सपिंडोंको तुरंत शौच होता है, यह भी चौथे महीनेतक लेना, कारण कि पातमें तीन दिनका अशौच सपिंडोंको लिख आये हैं और विना कारण पवित्रता नहीं होती और सद्यःपद स्नानका कथन करनेवाला है । इसी प्रकार आगे भी जानना, कारण कि वृद्ध वसिष्ठने लिखा है कि गर्भस्रावमें पुरुषको स्नानमात्र करना उचित है । यहां पुरुषपद पूर्वोक्त कथनोंसे सपिंडोंका उपलक्षण है । चार महीनेतक सपिंडोंको स्नान नहीं, किन्तु पतिको ही करना कहा है । पातमें तीन दिनका अशौच निर्गुणोंको लिखा है, गुणवानोंको तो इस यमके कथनसे एक दिनका अशौच है क्योंकि मदनपारिजातमें यमकी उक्ति कही है कि ऐसा बालक मृतक हो जाय कि जिसके दांत न निकले हों और गर्भसे बालकका पात हो जाय तो सब सपिंडोंको एक दिनका अशौच लगता है, और सातवें महीने आदिमें तो दश दिनका अशौच लगता है, ये सब वर्णोंके विषयमें है कारण कि व्याघ्रने लिखा है कि अवस्थाका और अतिक्रांत अशौच सबको समान लगता है । पराशरने लिखा है कि जन्मसूतकमें ब्राह्मण दश दिनमें, क्षत्रिय बारह दिनमें वैश्य पन्द्रह दिनमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होता है ।

मासेन शुद्धचति ॥ " संवर्तः-"जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते । माता शुद्धचेद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ॥ " पुत्रपदात्कन्योत्पत्तौ न पितुः स्नानमिति हारलतायाम् । तन्न । पुत्रपदस्य 'पौत्री मातामहस्तेन' इति कन्यायामपि प्रयोगात् । यच्च तत्रैवोक्तम्-" सूतके तु मुखं दृष्ट्वा जातस्य जनकस्ततः । कृत्वा सचैलं स्नानं तु शुद्धो भवति तत्क्षणात् ॥" इत्यादिपुराणान्मुखदर्शनोत्तरमेव पितुः स्नानमिति । तन्न । विदेशे मुखदर्शनाबध्यस्पृश्यतापत्तेः । मुखदर्शनोत्तरं पुनः स्नानार्थमिदमिति स्मार्तगौडाः । तन्न । मूलैक्येन ज्ञानमात्रपरत्वात् । इदं सर्ववर्णसमम्-"सूतिका सर्ववर्णेषु दशरात्रेण शुद्धचति । ऋतौ च न पृथक् शौचं सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥" इति हारलतायां प्रचेतसोक्तेः । यत्तु ब्राह्मे-"ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या प्रसूता दशभिर्दिनैः । गतैः शूद्रा च संस्पृश्या त्रयोदशभिरेव च ॥" इति । प्रयोगपारिजाते पारस्करः-"द्विजातेः सूतिका या स्यात्सा दशाहेन शुद्धचति । त्रयोदशेऽह्नि संप्राप्ते शूद्रा शुद्धचत्यसंशयः ॥ इति, तदस्पृश्यत्वपरम् । अङ्गिराः-"सूतके सूतिकावर्ज्यं संस्पर्शो न निषिध्यते । संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते । नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति ।

संवर्त्तने कहा है कि पुत्रके जन्ममें पिताको सवस्त्र स्नान करना चाहिये और माता दश दिनमें शुद्ध होती है और पिताके स्नान कर लेनेसे छूनेका दोष नहीं लगता । इस वाक्यसे पुत्रीके जन्ममें पिताको स्नान नहीं करना, यह हारलतामें कहा है, सो यथार्थ नहीं, कारण कि पुत्रपदका कन्यामें भी प्रयोग आया है कि, नाना पुत्रीके पुत्रसे पौत्रवाला होता है । जो उसी स्थलमें यह लिखा है कि उत्पन्न हुए पुत्रके सूतकमें मुखको देखकर और सवस्त्र स्नान करके उसी समयमें शुद्ध होता है, इस आदिपुराणके कथनसे पुत्रके मुखको अवलोकन करके ही पिता स्नान करै, सो उचित नहीं, कारण कि विदेशमें पुत्रका मुख दर्शन नहीं कर सकता तो कदाचित् स्नानके योग्य नहीं होगा । गौड तो यह लिखते हैं कि मुखदर्शनके उपरांत फिर स्नान करनेके निमित्त यह कथन है, सो भी सत्य नहीं, कारण कि मूलकी एकतासे पुत्रके ज्ञानमात्रका निषेध करनेवाला यह वाक्य है । यह सब वर्णोंके निमित्त तुल्य है, कारण कि हारलतामें प्रचेताका वाक्य लिखा है कि सूतिका सब वर्णोंमें दश दिनमें पवित्र होती है, ऋतुमें भी पृथक् पृथक् आशौच नहीं होता, यह सब वर्णोंकी विधि है । जो ब्रह्मपुराणका वचन है कि ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या ये प्रसूता हों तो दश दिनमें और शूद्रा तेरह दिनमें पवित्र होती हैं । प्रयोगपारिजातमें पारस्करका वाक्य लिखा है कि द्विजातियोंकी सूतिका दशदिनमें और शूद्राकी सूतिका तेरह दिनमें शुद्ध होती है, ये वाक्य असत् शूद्राके विषयमें जानना । अंगिराने लिखा है कि सूतकमें सूतिकासे भिन्नके छूनेका निषेध नहीं है और सूतिकाके छूनेमें स्नान करना कहा है, सूतकमें संसर्ग न करे तो पुरुषको दोष

रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ॥" संसर्गो मैथुनम् । स्पर्श इत्यन्ये । मातुरेव सूतकम् । तां स्पृशतश्चेति हारलतायां सुमन्तूक्तेरिति । तन्न । 'संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते ।' इति स्नानमात्रोक्तेः सौमन्तवचनस्य स्नानपर्यन्तमस्पृश्यत्वमात्रबोधकत्वात् । एवकारो बालस्पृश्यत्वार्थः । माधवस्तु–"यस्तैः सह सपिण्डोऽपि प्रकुर्याच्छयनाशनम् । 'बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुध्यति ॥" इति बृहस्पतिस्मृतेः । शयनासनादिरूपं संसर्गमाह पराशरः– "यदि पत्न्यां प्रसूतायां द्विजः संपर्कमृच्छति । सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥" पितृवत्सापत्नमातुः प्राक्स्नानादस्पृश्यत्वम् । सूतिकास्पर्शे तु यावदाशौचम् । 'अन्याश्च मातरस्तद्वत्तद्गृहं न व्रजन्ति च ।' इति ब्राह्मोक्तेरिति शुद्धितत्त्वादयः । तन्न । तद्गेहं गत्वा सूतिकां यदि न स्पृशति, तदा स्पृश्याः अन्यथा नेति तस्यार्थः । कर्मानधिकारमाह पैठीनसिः–'सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि कारयेन्मासेन स्त्रीजननीम् ।' इदमाशौचोत्तरम् । अन्यथा शूद्र्याः सपिण्डानामाशौचे तदभावः स्याद्विध्यनुवादविरोधश्च । एतच्च सोमयागादि श्रौतभिन्नपरम् । 'प्रजातायाश्च दशरात्रादूर्ध्वं स्नानादि' इति कात्यायनोक्तेः । व्यासः–"प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रज-

---

नहीं लगता, सूतकमें रजको अशुद्ध जानना चाहिये और वह रज पुरुषमें नहीं होता, संसर्ग नाम मैथुनका है और कोई तो छूनेको कहते हैं । हारलतामें सुमंतुका वाक्य है कि माताको और उसके छूनेवालेको सूतक है, सो उचित नहीं है, क्योंकि सूतिकाके स्पर्श हो जानेपर केवल स्नान ही कहा है, सो स्नान मात्रकी उक्तिसे सुमंतुके वचनका स्नानपर्यन्त अस्पृश्यमात्रका बोधक है और एवकार बालकके छूनेमात्रका बोधक है । माधव तो कहते हैं कि सपिंड भी जिनके साथ शयन, भोजन करे वह बन्धु वा दूसरा कोई हो दशदिनमें शुद्ध होता है यह बृहस्पतिस्मृतिमें कहा है शयन आसनादिरूप संसर्ग पराशरने कहा है कि यदि प्रसूतापत्नीका सम्पर्क षडंगका ज्ञाता ब्राह्मण करे तो उसको सूतक लगता है, पिताके समान सपत्नमाताओंको स्नानसे प्रथम अस्पृश्यत्व है, सूतिकाके स्पर्शमें तो तबतक आशौच है जबतक मातायें उस घरमें जाती हैं यह ब्रह्मपुराणका कथन शुद्धितत्वादि कहते हैं, सो ठीक नहीं, क्योंकि उसके घर जाकर यदि सूतिकाको न छुए तो सूतक नहीं है अर्थात् वे स्पर्शयोग्य हैं कर्मोंका अधिकार पैठीनसिस्मृतिमें लिखा है कि पुत्रवाली सूतिकाको बीस दिनमें कामका अधिकार दे, कन्याजननीको महीनेमें, यह आशौचके उत्तर जानना, अन्यथा शूद्रासपिण्डाके आशौचमें उसका अभाव होकर विधिअनुवादका विरोध होगा यह सोमयागादि श्रौतसे भिन्नमें जानना, कारण कि प्रसूताका दशरातसे परे स्नान आदि होते हैं, यह कात्यायनने कहा है व्यासजी कहते हैं कि पहले, छठे, दशवें, दिन सदा पुत्रजन्ममें सूतक नहीं लगता । यहां पुत्रशब्द अपत्यमात्रपर जानना

न्मनि ॥" पुत्रशब्दोऽपत्यमात्रपरः । ब्राह्मे-"देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम्। आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठं च सर्वदा ॥" जनने विशेषः प्रागुक्तः। अत्र प्रयोगपारिजातः-पुंप्रसवे दशाहः । स्त्र्यपत्ये तु त्र्यहः । "पुंजन्मनि सपिण्डानां दशाहाच्छुद्धिरिष्यते । त्र्यहाद्देकोदकानां च एकाहं सूतकं क्वचित् ॥ स्त्रीजन्मनि सपिण्डानां सोदकानां त्र्यहाच्छुचिः । स्त्रीषु त्रिपुरुषं ज्ञेयं सपिण्डत्वं द्विजोत्तमाः ॥" इत्याग्निस्मृतेरित्याह । मेधातिथिरपि-'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वासिष्ठमुक्त्वा 'आशौचे एवैतत्' विवाहे तु अवधिर्दर्शित एव इत्याह । अन्ये तु त्रिपुरुषसापिण्ड्यस्य कानीनकन्यापरत्वमाहुः। 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्। प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवप्रजापतिः ॥" इति कौर्मविरोधाच्च । अत्रेदं तत्त्वम्। 'पञ्चमात्सप्तमाद्धीमान् यः कन्यामुद्वहेद्द्विजः'। गुरुतल्पी स विज्ञेयः' इत्यादिविरोधात्त्रिपुरुषं प्रकरणान्मरणाशौचपरम्। वासिष्ठे तदग्रे उदकदानोक्तेः। तेन कन्याप्रसवेऽपि साप्तपौरुषं दशरात्रमेव। न च कन्यापुत्रकृतं प्रसवे बलाबलं क्वाप्युक्तम्। अग्निस्मृतिस्त्वनुकल्पो विगीता वेति सर्वसिद्धान्तः । अन्यथा त्रिपुरुषं सपिण्डानामष्टमादिसोदकानां

ब्रह्मपुराणमें लिखा है द्विजातिके पुत्र होनेमें देवता पितर छठीके दिन आते हैं, इससे वह पवित्र दिन है, जननमें विशेष पहले कह चुके हैं। यहां प्रयोगपारिजातका कथन है कि पुरुषप्रसवमें दश दिन,कन्याप्रसवमें तीन दिन,अर्थात् पुत्रजन्ममें सपिण्डोंको दशदिनसे शुद्धि होती है, एकोदकोंकी तीन दिनमें कहीं एक ही दिनमें शुद्धि होती है, और स्त्रीजन्ममें सपिण्ड, समानोदक तीन दिनमें शुद्ध होते हैं। हे द्विजोत्तमो! स्त्रियोंमें तीन पुरुषतक सपिंडत्व जाने, ऐसी अग्निस्मृति है। मेधातिथि भी कहते हैं कि अप्रत्तास्त्रियोंकी त्रिपुरुषी कही है यह वासिष्ठका कथन कहकर आशौचमें है, विवाहमें तो अवधि देखने तक है, ऐसा कहा है। और तो यह लिखते हैं कि, तीन पुरुषतक सपिंड कानीन कन्याओंके होते हैं। इस वचनसे कूर्मपुराणका विरोध भी है कि विना विवाही कन्याओंको सापिण्ड्य सात पुरुषतक होता है, और विवाही कन्याओंको सापिंड्य भर्त्ताके होते हैं। यह देवप्रजापतिने लिखा है यहां यह तत्त्व है कि पांचवीं और सातवीं पीढ़ीसे इधरकी कन्याको जो ब्राह्मण विवाहता है वह गुरुशय्यागामी जानना, इत्यादि वाक्योंके विरोधसे त्रिपुरुषतक सापिण्ड्य प्रकरणके बलसे मरण अशौचमें लिखे हैं। वसिष्ठके कथनमें उसके आगे जलदान करना है इससे कन्याके जन्ममें भी दशरात्रितक अशौच है, और कन्या और पुत्रके प्रसवमें कहीं भी बल, अबल नहीं कहा है। पूर्वोक्त अग्निकी स्मृति तो अनुकल्प है वा असंगत है यह सबका सिद्धान्त है, ऐसा न हो तो तीन पुरुषतक सपिंडोंका और अष्टम आदि समानोंका तीन दिन सूतककी साम्यताका योग नहीं

च त्र्यहं साम्यायोगात् चतुर्थादिसप्तमान्तानां च किमपि न स्यात् । तेन कन्या-प्रसवे दशाह एव । किंच–स्त्रीजन्मोद्देशेन त्रिपुरुषं सापिण्डयं तेषां च त्रिरात्र-मित्यनेकार्थविधिः कथं स्यात् । वाक्यभेदापत्तेः । नच चतुर्थादीनां सोदकत्वं क्वापि सिद्धम् । तेन त्रिपुरुषं चतुर्थादीनां स्त्रीजन्मनि सोदकत्वं विधाय पुनस्तेषां त्रिरात्राशौचविधौ विध्यनुवादविरोधो वाक्यभेदद्वयं चेत्यसंवादार्थाग्निस्मृतिर्हेया । मृताशौचनिर्णयः । अथ मृताशौचम् । हारीतः–' जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्' इति स्वाशौचपरम् । जातमृते नालच्छेदोर्ध्वम् । " यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ।" इति जैमिन्युक्तेः ' नाड्यां छिन्नायामाशौचम् ' इति हारीतोक्तेश्च एतन्मृताशौचपरमेव । जननाशौचं तु नालच्छेदोत्कर्षेऽपि जननाद्येव । मृतजाते नालच्छेदाभावात् षष्ठीपूजाद्युत्कर्षापत्तेश्च । तेन नाडीच्छेदात्प्राक् मातुः स्पर्शेऽपि न दोष इति शुद्धितत्त्वोक्तिः परास्ता । नाडीच्छेदात्प्राक् मृतौ तु बृहन्मनुः–"जीवञ्जातो यदि ततो मृतः सूतक एव तु । सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरा-त्रकम् ॥" इदं च प्रसवाशौचमेव । शावनिमित्तं स्नानमात्रम्

है, चौथेसे सातवेंतकमें किंचित् भी नहीं होगा । इससे कन्याजन्ममें दश दिनका ही सूतक है । और स्त्रीजन्मके निमित्त तीन पुरुषतक सपिंडता और उनको तीन रात्रिका अशौच वाक्यभेदकी आपत्तिसे किस प्रकार होगा और चतुर्थ आदि सोदक कहीं भी नहीं किये, इससे चतुर्थ आदिकोंकी स्त्रीके जन्ममें सोदकत्व लिखकर फिर उन्हें तीन रात्रिके अशौचकी विधि मानोगे तो विधि और अनुवादका विरोध हो जायगा । दो वाक्यभेद होंगे इससे असंबद्ध अर्थवाली स्मृतिके ऐसे वचनवाली अग्निस्मृतिका इसमें त्याग करना चाहिये । अब मरणाशौ-चको लिखते हैं । हारीतने लिखा है कि उत्पन्न होकर मृतक हो जाय, मृतक उत्पन्न हो तो सपिण्डोंको दश दिन अशौच लगता है, और दश दिन भी अपने अशौचका कथन करता है अर्थात् जिस जातिको जितना हो उतना ही होता है, होतेही मरनेमें भी नालछेदनसे उपरा-न्त लेना कारण जैमिनिने लिखा है कि जबतक नालछेदन नहीं होता तबतक सूतक नहीं लगता नालछेदनसे पीछे लगता है, हारीतने यह लिखा है कि नाड़ीछेदनके पीछे अशौच होता है यह भी मरणाशौचमें जानना, जन्मसूतक तो नालछेदनके बढ़नेपर भी जन्मसे ही लगता है और मरा हुआ बालक जब उत्पन्न होता है, वहां नालछेदनका अभाव है, और नालछे-दनसे वृद्धि मानोगे तो षष्ठीपूजाकी भी वृद्धि आ जायगी । इससे नाड़ीछेदनसे प्रथम माताके छूनेमें दोष नहीं है, यह शुद्धितत्त्वका वाक्य खंडन हुआ । नाड़ीछेदनसे पहले बालक मृतक हो जाय तो बृहन्मनुका कथन है कि जीता उत्पन्न हुआ हो और फिर मर गया हो तो माताको सम्पूर्ण और पिता आदिको तीन राततक सूतक लगता है, यह प्रसवाशौचके विषयमें है । कारण कि शंखने लिखा है कि मरणके

'प्राङ्नामकरणात्सद्यः शौचम्' इति शंखोक्तेः । अत्र कश्चिदाह—'नामकरणमाशौचान्तकालोपलक्षणम्।' 'आशौचव्यपगमे नामधेयम्' इति विष्णूक्तेः 'आशौचे च व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते' इति मनूक्तेश्च नाम्नो नियतकालत्वात् । नच—"नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वापि कारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते" इति मनूक्तेरनियतकालत्वम्। दशम्यामतीतायां विप्रः । द्वादश्यामतीतायां क्षत्रियः। वैश्यः षोडशे। शूद्र एकत्रिंशे इत्यपि ज्ञेयम् । पुण्य इत्याद्यनुकल्पः । तेन नाम्नः कालोपलक्षणम्। एवं दन्तजननेऽपि ' दन्तजन्म सप्तमे मासि' इत्युपनिषदि नियतकालत्वात्। चौले तु न कालोपलक्षणम् ' प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्' इति मनूक्तेः।"ततः संवत्सरे पूर्णे चूडाकर्म विधीयते। द्वितीये वा तृतीये वा कर्तव्यं स्मृतिदर्शनात् ॥" इति यमोक्तेश्च तस्यानियतकालत्वादिति । तन्मन्दम्। 'चौलवन्नामदन्तजननयोरपि स्वरूपेण निमित्तत्वोपपत्तेस्तद्विशिष्टकालानुवादे वाक्यभेदात्' सप्तममासादर्वाग्दन्तजनने तदभावप्रसङ्गाच्च। यस्तूपनिषद्दर्शनेन निर्णयं कुर्यात्स नूनं 'शतायुः पुरुषः' इति श्रुतेरर्वाक्पितृमरणे तदन्त्यकर्मापि त्यजेत्।

निमित्त स्नानमात्र और नामकरणसे पहले तत्काल शौच होता है, यहां कोई यह कहते हैं कि नामकरण अशौचान्त कालका उपलक्षण होता है कारण विष्णुका कथन है कि अशौचके बीतनेपर नामकर्म करे, नामका समय नियत है। यदि कोई शंका करे कि दशमी वा द्वादशीको नामकरण करे, पुण्यतिथि, मुहूर्त वा गुणोंसे युक्त नक्षत्रोंमें नाम रक्खे, इस मनुके कहे वाक्यसे कालका नियम नहीं, सो उचित नहीं। दश दिन बीतने उपरान्त ब्राह्मण, बारह दिन बीतने उपरान्त क्षत्रिय, सोलह दिन बीतने उपरान्त वैश्य, इकतीस दिन बीतनेपर शूद्र करे, यह समय जानना चाहिये। पुण्य यह अनुकल्प है, इससे नामकालका उपलक्षण होता है, इसी प्रकार दांत निकलनेमें भी नियत समय है। कारण, यह उपनिषद्में लिखा है कि सातवें महीनेमें दांत निकलते हैं, मुण्डनमें तो समयका उपलक्षण नहीं है। कारण, मनुने लिखा है कि श्रुतिकी आज्ञासे तीसरे वा पहले वर्षमें मुण्डन करना चाहिये यह यमने भी लिखा है कि पूर्ण वर्ष होनेपर वा दूसरे, तीसरे वर्षमें मुण्डन करे, कारण कि स्मृतियोंमें ऐसा ही लिखा है इससे मुण्डनका भी समय नियत नहीं। यह जो यम कहते हैं सो वह कथन मन्द है। कारण कि मुण्डनके समान नामकर्म और दांत निकलना भी स्वरूपसे निमित्त हैं इनसे विशिष्ट समयका अनुवाद मानोगे तो वाक्यभेद होगा, और सात महीनेसे प्रथम दांत निकल आवेंगे तो उस समयके अभावका प्रसंग हो जायगा, जो पूर्वोक्त उपनिषद्को देखकर, निर्णय करेंगे, वह अवश्य सौ वर्षका पुरुष होता है, इस श्रुतिके बलसे सौ वर्षसे पहले उस पिताके मरणमें उसके अन्तके कर्मको भी त्यागें। यदि कोई सन्देह करे कि समयको उपलक्षण न

ननु कालानुपलक्षणे नामोत्कर्षे तदभावे वा स्नानमात्राच्छुद्धिः स्यात् । ततः किम्, अस्तु । अत एवोक्तम् 'आदन्तजन्मनः सद्यः ' इति । सा च विष्णुवचनाद्दाहाभावविषयेति वक्ष्यामः । त्रिवर्षादावपि स्यादिति चेत् न । दाहदन्तादिनिमित्तैर्विशेषाशौचैः पूर्वस्य बाधात् । तदुक्तम्–' पूर्वाबाधेन नोत्पत्तिरुत्तरस्य हि सिध्यति' इति जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे च इति परिशिष्टे " द्वादश्यामपरे रात्र्यां मासे पूर्णे तथापरे । अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः ॥" इति भविष्ये च नाम्नः कालानियमाच्च । नच प्राथम्याद्दशरात्रेऽतीते इति मुख्यः कालः, अन्यस्त्वनुकल्प इति वाच्यम् । चौलेऽपि तथापत्तेः । नच दन्तजननकालानुपलक्षणे सदन्तजातमृतस्य दाहैकाहप्रसङ्गः । दशाहेन बाधात् । नामकरणोत्तरमेव दाहप्रवृत्तेः । " दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः । शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते ॥ " इति बृहन्मनूक्तेश्च । आशौचं दाहोपलक्षणम् । 'सूतकवत्' इति पारस्करोक्तेः । यत्तु विष्णुः–"अनिवृत्ते दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति । सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नोदकक्रिया ॥" इति–तदपि प्रेताशौच-

---

मानकर नामकी वृद्धि स्वीकार करोगे वा न करोगे तो स्नानमात्रसे शुद्धि हो जायगी, फिर क्या होगा, इसीसे लिखा है कि दांत निकलनेसे पहले शीघ्र शुद्धि होती है वह शुद्धि विष्णुके कथनसे दाहके अभावमें जानना, यह कहेंगे । तीन वर्ष आदिमें भी शुद्धि हो जायगी, सो यथार्थ नहीं कारण कि दाह, दंत आदि निमित्तके जो विशेष अशौच हैं वे प्रथम अशौचके बाधक हैं वही कहा है कि पहलेके बाधसे उत्तरकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती । परिशिष्टमें कहा है कि, जन्मसे दशरात्र वा सौ रात्र वा वर्षमें नामकरण करे, इनसे और इस भविष्यपुराणके लिखे वाक्यसे नामके समयका नियम नहीं कि कोई बारह दिनमें कोई पूरे महीनेमें और कोई बुद्धिमान् अठारहवें दिन नामकरण लिखते हैं । यह भविष्यमें नामका काल नियत न होनेसे यदि कोई शंका करे कि दश दिन बीतने पर मुख्य समय है और दूसरे गौण हैं सो ठीक नहीं । कारण कि चौलमें भी ऐसा ही हो जायगा, यदि कोई शंका करे कि दंत निकलनेके समयको उपलक्षण न मानोगे तो जो बालक दाँतोंसहित उत्पन्न होकर मृतक हो गया है वहां दाहके एक दिनके अशौचका प्रसंग आ जायगा सो उचित नहीं। कारण कि दशाहका अशौच बाधक है, नामकरणके उपरान्त ही दाहकी प्रवृत्ति होती है । बृहन्मनुने लिखा है कि दशदिनके भीतर बालक मृतक हो जाय तो उसके बांधव मरणका अशौच न करें, जन्म अशौच मानें, यहां अशौच दाहका उपलक्षण है, पारस्करने भी लिखा है कि सूतकके समान अशौच होता है । जो विष्णुने लिखा है कि दशदिन बीतनेसे प्रथम यदि बालक मर जाय तो शीघ्र ही शुद्धि होती है और प्रेतपिंड, जलदान नहीं होता है।

निषेधार्थं न तु सद्यस्त्वपरम्। वाक्यभेदात्। किंच। नामकालात्प्राक् मृतस्य स्नानम्। तदुत्तरं त्वेकाहादि, नामकाले त्वेकादशाहे मृतस्य न किमपि स्यात्। अथ शङ्खवचने ल्यब्लोपे पञ्चमी, तदा प्रागिति नोपपद्यते। 'नाम्नि वापि कृते सति' इति मन्वादिविरोधात्। कृतनाम्न इति माधवमिताक्षरादिविरोधाच्च न कालोपलक्षणं क्वापीति दिक्। अथ दन्तोत्पत्तेः प्रागाशौचनिर्णयः। नामोत्तरं दन्तोत्पत्तेः प्राग्दाहे त्र्यहः। "अदन्तजाते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा। सपिण्डानां तु सर्वेषामहोरात्रमशौचकम्॥" इति यमोक्तेः। दाहाभावे तु स्नानमात्रम्। 'अदन्तजाते प्रेते सद्य एव नास्याग्निसंस्कारः' इति विष्णुना दाहाभावे तदुक्तेः। 'आदन्तजन्मनः सद्यः' इति याज्ञवल्कीयाच्च। दाहविकल्पं चाह लौगाक्षिः- "तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च। सर्वेषां कृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम्॥" अन्यत्राकृतचूडे। अत्र चूडाकरणं तृतीयवर्षरूपकालोपलक्षणार्थमिति मेधातिथिहरदत्तौ। मनुरपि-" नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया। जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति॥" इति उदकं दाहोपलक्षणम्। दन्तोत्पत्त्यनन्तरमाशौचनिर्णयः। दन्तोत्पत्त्यनन्तरं प्राक्त्रिवर्षान्तान्मृतेऽह्नः। 'दन्तजातेऽप्य-

---

यह वाक्य भी प्रेताशौचके निषेध निमित्त है, सद्यःशौच पर नहीं है, कारण कि वाक्यभेद हो जायगा। और नामकालमें प्रथम मरे तो स्नानमात्र और पछि एक दिन आदि अशौच लगता है, नामकालमें मरे तो ग्यारहवें दिन मृतकका कोई कर्म न होगा। यदि कोई कहे कि शंखके वाक्यमें ल्यब्लोपमें पञ्चमी है अर्थात् नामकरणको छोड़कर सद्यःशौच है सो यथार्थ नहीं मानोगे तो प्रथम भी अशौच न होगा और नामकरण किये पीछे भी अशौच लगता है, इस मन्वादिके विरोधसे और जिनका नामकरण हो गया हो इस माधव और मिताक्षरा आदिके विरोधसे कहीं भी समय उपलक्षण नहीं, यह संक्षिप्त कहा है। नामकरणसे पीछे दंतजन्मसे प्रथम दाह हो तो एक दिन अशौच लगता है, कारण कि यमका कथन है कि दांत निकलनेसे प्रथम पुत्र मर जाय वा गर्भसे पतित हो जाय तो सब सपिंडोंको दिनरात अशौच लगता है। दाह न हुआ हो तो स्नानमात्र करे, क्योंकि दांत निकलनेसे पहले मरजाय तो सद्यः शुद्धि होती है, इसको अग्निका संस्कार नहीं होता, इस विष्णुके वाक्यसे दाहके अभावमें यह लिखा है। याज्ञवल्क्यने भी लिखा है कि दांत निकलनेसे प्रथम मृतक होनेमें शीघ्र ही पवित्रता होती है। दाहका विकल्प लौगाक्षिने लिखा है कि जिनका मुण्डन हो गया हो वा न हो चुका हो उन सबको जलदान और संस्कार ये मौनतासे करे और जिनका चूडा कर्म नहीं हुआ हो उनके लिये करे चाहे न करे। यहां मेधातिथि और हरदत्तने यह लिखा है कि चूडाकर्म्म तृतीय वर्षरूप कालका उपलक्षण है। मनुने भी लिखा है कि तीन वर्षका न हुआ हो उसके बांधव जल दान न करे, दांत निकलनेपर वा नाम करनेपर करे, यहां जलदान दाहका उपलक्षण है। दांत निकलनेके उपरान्त तीन वर्षसे प्रथम मरनेमें एक दिन अशौच

कृतचूडे त्वहोरात्रेण शुद्धिः' इति विष्णूक्तेः । त्रिवर्षोर्ध्वं कृतचूडेऽकृतचूडे वा प्रागुपनयनात् त्र्यहः । "यद्यप्यकृतचूडो वै जातदन्तस्तु संस्थितः । तथापि दाहयित्वैनमाशौचं त्र्यहमाचरेत् ॥ इत्यङ्गिरसोक्तेः । अकृतायामपि चूडायां त्रिवर्षोर्ध्वं दाहादि नियतम् ।' 'नात्रिवर्षस्य' इति वचनात् । कृतायां वर्षत्रयात्प्रागपि तन्नियतं तूष्णीमेव । अत्र जातदन्तत्वमुद्देश्यविशेषणत्वादविवक्षितम् । दाहयित्वेत्यप्यनुवादः । उभयविधौ वाक्यभेदात् । त्रिवर्षात्प्राक् चूडाभावेऽग्निदाने त्र्यहस्तदभावे विष्णूक्तेरेकाह इति माधवः । यत्तु कश्चिदाह–अत्र त्रिवर्षविषयादस्मादेवार्थात् त्रिवर्षोर्ध्वमपि तत्सिद्धिः । विज्ञानेश्वरोक्तं च त्रिवर्षोर्ध्वमकृतचूडाविषयत्वं चिन्त्यम् । जातदन्तपदवैयर्थ्यादिति तत्तुच्छम् । दाहस्याविधेयत्वात् । 'नृणामकृतचूडानामशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।' इति मनूक्तेः । त्रिवर्षोर्ध्वमेकाहापत्तेरर्थात् त्र्यहासिद्धेः । त्वयाप्यग्रे तथाङ्गीकारात्पदवैयर्थ्यस्य साम्याद्वाक्यार्थाज्ञानाच्चेत्यलं मिताक्षरार्थानभिज्ञदूषणेन । प्रथमवर्षादौ कृतचूडस्य सदा त्र्यहः । 'निवृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ।' इति मनूक्तेः । एतत्सर्वं प्रागुक्तं सपिण्डानाम् । मातापित्रोस्तु दशाहोर्ध्वं मृते सर्वत्र त्रिरात्रम् ।

कहा है, कारण कि विष्णुने लिखा है कि दांत निकलनेपर वा मुंडनसे प्रथम मरनेमें दिनरातसे शुद्धि होती है और तीन वर्षसे पीछे मुंडन हुआ वा न हुआ मृतक हो जाय तो तीन दिनका अशौच होता है, कारण कि अंगिराने लिखा है कि यद्यपि मुण्डन न हुआ हो और दांत निकल आये हों यदि वह मृत्युको प्राप्त हुआ हो तो उसको दाह कराकर तीन दिन अशौच करे । यहां जातदंत उद्देश्यका विशेषण होनेसे विवक्षा नहीं है और दाह कराकर यह, अनुवाद जानना चाहिये क्योंकि दोनोंके विधानमें वाक्यका भेद हो जायगा । तीन वर्षसे प्रथम मुण्डनके न होनेपर अग्निके दाहमें तीन दिन, और दाह न होनेपर विष्णुका लिखा एक दिन अशौच होता है, यह माधव लिखते हैं । जो किसीने लिखा है कि तीन वर्षपर्यन्तका विषय अर्थात् तीन वर्षसे आगे ही उसकी सिद्धि होती है । जो विज्ञानेश्वरने यह लिखा है कि यहां तीनवर्षके उपरांत जिसका मुण्डन न हुआ हो उसके विषयमें है, इसको मानना चिन्त्य है, कारण कि जातदन्तपद व्यर्थ हो जायगा, सो ठीक नहीं क्योंकि दाहविधेय वाक्य नहीं है । जिन कुमारोंका चूडाकर्म नहीं हुआ उनकी अशुद्धि एकरात्रिकी लिखी है इस मनुके वाक्यसे तीन वर्षके उपरांत एक दिन आ जायगा अर्थात् तीन दिन अशौच सिद्ध नहीं है और तुम भी आगे वही मानोगे, इससे पदका व्यर्थत्व तुल्य है और वाक्यसे अर्थका ज्ञान नहीं है, इससे मिताक्षराके अर्थको न विचार दूषण देनेसे दूषण देना वृथा है, प्रथम वर्ष आदिमें मुण्डन होनेपर सदा तीन दिन और जिनका मुंडन न हुआ हो उनकी शुद्धि तीन रातसे होती है, इस मनुके कथनमें तीन रात है, पूर्व कथित अशौच सपिंडोंको है और मातापिताका तो दश दिनसे पीछे मरनेमें सब स्थानमें तीन रात होता है कारण कि कश्य-

१ 'अकृतायाम्' यहांसे 'तूष्णीमेव' तक पूर्वोक्त वाक्य है और वहां अर्थ भी लिख चुके हैं, इससे यहां इसका अर्थ नहीं लिखा ।

'बालानामजातदन्तानां त्रिरात्रेण शुद्धिः' इति कश्यपोक्तेः । 'बैजिकादभिसंबन्धादनुरुध्यादघं त्र्यहम् ।' इति मनूक्तेश्च । शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु-"अजातदन्तमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते । दन्तजाते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातां तु निर्गुणौ ॥" इति कौर्मात्काश्यपं शूद्रपरम् ।'अनूढानां तु कन्यानां तथा वै शूद्रजन्मनाम् ।' इति त्र्यहानुवृत्तौ शंखोक्तेः ।'त्रिरात्रं तु भवेच्छूद्रे षण्मासेऽपि शिशौ मृते ।' इति मात्स्यसूक्ताच्च । दन्तजाते शूद्रे तु पञ्चाहः ।. यथाहाङ्गिराः-"शूद्रे त्रिवर्षान्न्यूने तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः । अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते ॥ षड्वर्षान्तमतीतो यः शूद्रः संम्रियते यदि । मासिकं तु भवेच्छौचमित्याङ्गिरसभाषितम् ॥" इति । यत्तु-'अनूढभार्यः शूद्रस्तु' इति शंखोक्तं मासाशौचं तत्सगुणशूद्रपरम् । निर्गुणे त्वनूढभार्ये शूद्रे त्रिवर्षोर्ध्वं द्वादशाहः । षडब्दोर्ध्वं मासः । षडब्दात् प्रागपि कृतोद्वाहे मास इत्याहुः । एतत् 'तुल्यं वयसि सर्वेषाम्' इति विरोधाच्छिष्टविगर्हितत्वान्नादर्तव्यमिति विज्ञानेश्वरादयः । दाक्षिणात्यानां तथैव अन्यदेशे प्रागुक्तमिति गौडाः । एवं कन्यास्वपि । तास्वप्यजातदन्तासु मृतासु पित्रोरेकरात्रमिति माधवः ।

पजीने लिखा है कि दांत निकलनेसे प्रथम बालकके मरनेमें तीन रात्रिमें शुद्धि होती है। मनुका भी कथन है कि, बीजके संबन्धसे तीन दिन पापनिरोध किये हैं। शुद्धितत्त्व आदि गौड ग्रंथोंमें तो यह लिखा है कि दांत निकलनेके पहले बालकके मरनेमें माता पिताको एक दिन और दांतयुक्तके मृतक होनेमें तीन रात्र अशुद्धि होती है यदि माता पिता निर्गुण हों तो इस कूर्मके कथनसे कश्यपजीका यह कथन शूद्रके निमित्त है। और विना विवाही कन्या और शूद्राको तीन दिन अशौच लिखा है, और छः मासके भी बालकके मृत्यु होनेमें शूद्रको तीन रात इस मत्स्यके वाक्यसे और दांतयुक्त मर जाय तो शूद्रको पांच दिन है। सोई अंगिराने लिखा है कि तीन वर्षसे न्यूनका बालक मृतक हो जाय तो पांच दिनमें और इससे ऊपर मृतक हो तो बारह दिनमें शूद्रकी शुद्धि होती है, छः वर्षसे पीछे शूद्र मृत्युको प्राप्त हो तो एक महीनेका अशौच होता है यह अंगिराने लिखा है और यह लिखा है कि विवाहसे प्रथम शूद्र मृतक हो जाय इस कथनसे शंखने जो एक मासका अशौच लिखा है वह गुणयुक्त शूद्रके विषयमें है, निर्गुणके विषयमें तो तीन वर्षसे पश्चात् द्वादशाह है, छः वर्षका मरे तो एक मास, छः वर्षतक विवाह होनेपर मृतक हो तो एक महीनेका अशौच होता है यह शुद्धितत्त्व आदि गौडोंका कहना आदर करनेके योग्य नहीं है और यह विज्ञानेश्वर आदिका कथन है कारण कि पूर्वमें कहे इस वाक्यका विरोध है कि, अवस्था निमित्तक अशौच सबको बराबर है और शिष्टोंको भी यह निंदित है, दाक्षिणी भी इसी प्रकार कहते हैं और देशका अशौच प्रथम कथन कर आये हैं, यह गौडोंने कहा है, इसी प्रकार कन्याओंमें भी जानना चाहिये कन्या भी दांत निकलनेसे प्रथम मर जाय तो माता पिताको एक रात्र अशौच होता है

यत्तु विज्ञानेश्वरेणोक्तम्–'ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि' इति याज्ञवल्क्योक्तेः गर्भस्थे प्रेते मातुर्दशाहं जाते उभयोः कृतनाम्नि सोदराणां चेति पैङ्ग्योक्तेश्च पित्रोः सोदराणां च दशाहमस्पृश्यत्वमिति तन्नेदानीं प्रचरति। अत एव स्मृत्यर्थसारे तन्नादृतम्। कन्यासु चौलात्प्राङ्मृतौ स्नानम् । 'अचूडायां तु कन्यायां सद्यः शौचं विधीयते।' इत्यापस्तम्बोक्तेः इदं त्रिपुरुषमध्ये। 'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते।' इति वसिष्ठोक्तेः। इदं वाग्दानोत्तरम् इति गौडाः। तन्न। 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिंड्यं साप्तपौरुषम्।' इति वचनात्। चौलोत्तरं वाग्दानात्पूर्वं तास्वेकाहः । "अविशेषेण वर्णानामर्वाक्संस्कारकर्मणः। त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वह्ना विधीयते॥" इत्यङ्गिरसा त्रिरात्रविषयेऽह्नोविधानात्। अप्रत्तानां विवाहितानां त्रिपुरुषी पितृपितामहप्रपितामहैः सकन्यायाः चतुर्थ्याः सापिंड्यम् एवं च कन्यापेक्षया पंचमे वृद्धप्रपितामहे सापिण्ड्यं निवर्तते इति तत्संतानेऽन्यस्मिन्नविवाह्यत्वाशौचादिधर्मा न भवन्तीत्यर्थः इति गोविन्दार्णवे संस्कारवीचौ। स्त्रीणां तु पितृपक्षे पंचावधिकं सपिण्डत्वम् . अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषमित्यादि संस्कारवीचौ प्रपंचितम् अतश्च कन्याया वृद्धप्रपितामहं

यह माधवने कहा है। और विज्ञानेश्वरने लिखा है कि दो वर्षसे प्रथम मर जाय तो दोनोंका सूतक माताको ही लगता है,यही याज्ञवल्क्यने भी लिखा है गर्भमें स्थित बालक मर जाय तो माताको दश दिन और जन्म होनेपर मरे तो दोनोंको और नाम धरनेपर मरे तो सगे भाइयोंको दश दिन अशौच लगता है इस पैंग्यके कथनसे पिता, माता, सगे भाई ये दशदिनतक स्पर्श करने योग्य नहीं हैं इसका इस समय प्रचार नहीं है इसीसे स्मृत्यर्थसारमें इसका सत्कार नहीं किया है। मुण्डनसे प्रथम कन्या मर जाय तो स्नानमात्र करे कारण कि आपस्तम्बमें लिखा है, मुण्डनसे पहले कन्याओंके मरनेमें तत्काल शौच लिखा है, यह ही तीन पीढियोंमें है कारण कि, वसिष्ठने कहा है कि विना विवाही कन्याओंका अशौच तीन पुरुषतक माना गया है। गौड तो यह लिखते हैं कि, यह वाग्दानके उपरान्त है, सो ठीक नहीं क्योंकि यह भी वाक्य है कि विना विवाही कन्याओंका सापिण्ड्य सातपुरुषतक है मुण्डनसे पीछे वाग्दानसे प्रथम कन्या मरे तो एक दिन अशौच लगता है कारण कि इसी अंगिराके कथनसे तीन रातके विषयमें एक दिन लिखा है, संस्कार करनेसे प्रथम सब वर्णोंमें तीन रात और कन्याओंकी मृत्युमें एक दिन अशौच लिखा है, विना विवाही कन्याओंका सापिंड्य पिता, पितामह, प्रपितामह और चौथी कन्या इन चारमें होता है। इससे कन्याकी अपेक्षा पांचवें वृद्ध प्रपितामहमें सापिंडय निवृत्त हो जाता है। इससे उसकी सन्तानमें अन्यके विवाहका अभाव और अशौचआदि धर्म नहीं होते हैं, यह गोविंदार्णव और संस्कारवीचिमें कहा है। कन्याओंका पितृपक्षमें पांच पीढ़ीतक सापिंड्य कहा है और विवाहसे प्रथम तीन पुरुषतक, इत्यादि सब संस्कार

संवत्या सह सापिंड्याभावात् कन्यामरणे सपिण्डोक्तमाशौचं नास्तीति शुद्धिवीचौ गोविन्दार्णवे । अतः शूद्रस्योपनयनस्थानीयविवाहात्पूर्वं त्रिरात्रम् । विवाहोत्कर्षे तु षोडशाब्दमध्ये त्रिरात्रमेवेत्यपरार्काद्याः । शूद्रे निर्गुणे तु त्र्यब्दोर्ध्वं पञ्चाहः। षडब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावे द्वादशाहमिति गौडाः । सगुणानां षोडशाब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावे पूर्णाशौचं वक्ष्यते । तदुत्तरं प्राग्विवाहाद्भर्तृकुले च सप्तपुरुषावधि त्रिरात्रम् । "अवारिपूर्वं प्रत्ता तु या नैव प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतम् ॥" इति मरीच्युक्तेः । रत्नाकरे शुद्धितत्त्वे च शंखः-"पितृवेश्मनि या नारी रजः पश्यत्यसंस्कृता। तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति॥" यावज्जीवमाशौचमिति वाचस्पतिमिश्राः। अथानुपनीते किंचिदुच्यते। नाम्नः पूर्वं खननमेव। तदूर्ध्वं वर्षत्रयात्पूर्वं चौलाभावेऽग्न्युदकदानविकल्पः। "नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥" इति मनूक्तेः । उदकक्रियासाहचर्याद्दाहोपलक्षणम् ॥ खनने तु नान्यदौर्ध्वदैहिकम् । 'ऊनद्विवर्षं निखनेन्न

बीचमें कहे हैं, इससे वृद्ध प्रपितामहकी सन्ततिके संग कन्याका सापिंड्य न होनेसे कन्याके मरणमें सपिण्डोंका अशौच नहीं होता है। यह शुद्धिवीचि और गोविन्दार्णवमें लिखा है। इससे शूद्रके यज्ञोपवीत रूप विवाहसे प्रथम तीन रात अशौच होता है, विवाहसे परे सोलह वर्षके मध्यमें भी तीन राततक होता है, यह अपरार्क आदिका मत है। निर्गुण शूद्रको तीन वर्षसे प्रथम पांच दिन अशौच लगता है, और छः वर्षसे पीछे विवाह न हुआ हो तो बारह दिन, यह गौड़ लिखते हैं, गुणवालोंको तो, सोलह वर्षसे पीछे विवाह न हुआ हो तो पूरा अशौच लिखेंगे और उसके आगे पति और पिताके वंशमें सात पुरुषतक तीन रात अशौच लगता है कारण कि मरीचिने लिखा है कि जिसका जलसे संकल्पपूर्वक विवाह न हुआ हो और वाग्दान हो गया हो वह कन्या असंस्कृत जाननी चाहिये, उसके मरनेका अशौच दोनों कुलमें तीन रात होता है। रत्नाकर और शुद्धितत्त्वमें शंखने लिखा है कि जो विना विवाही पिताके घरमें रज देख ले, तो उसके मरनेका अशौच कभी भी दूर नहीं होता अर्थात् जबतक जीवित रहे, तबतक नहीं जाता, यह वाचस्पतिमिश्रका कथन है। अब यज्ञोपवीतरहित विषयमें कुछ लिखते हैं, नामकरणसे प्रथम बालकके मरनेमें गाडना लिखा है, और उसके पीछे तीन वर्षसे प्रथम यदि मुण्डन न हुआ हो तो उसको अग्नि और जलदानका विकल्प लिखा है; अर्थात् अग्निदाह आदि करे, चाहे न करे कारण कि मनुने लिखा है कि, तीन वर्षसे पहलेके बालककी क्रियाको बांधव न करे, अथवा जिसके दांत निकल आये हों वा नामकर्म हो गया हो तो करे। जलक्रिया साहचर्यसे दाहका भी उपलक्षण है, गाडनेमें तो अन्य और्ध्वदैहिक कर्म नहीं होता, कारण कि यांज्ञवल्क्यने

कुर्यादुदकं ततः ।' इति । याज्ञवल्क्योक्तेः । उदकमन्त्यकर्मपरमित्यपरार्कः । यमः-"ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं घृताक्तं निखनेद्भुवि । यमगाथां गायमानो यमसूक्तमनुस्मरन् ॥" माधवीये ब्राह्मेऽपि-"स्त्रीणां तु पतितो गर्भः सद्यो जातो मृतोऽथवा । अजातदन्तो मासैर्वा मृतः षड्भिर्गतैर्बहिः ॥ वस्त्राद्यैर्भूषितं कृत्वा निक्षिपेत्तं तु काष्ठवत् । खनित्वा शनकैर्भूमौ सद्यः शौचं विधीयते ॥" अलंकरणमपि वक्ष्यते। कृतचूडस्य तु त्रिवर्षात्प्रागूर्ध्वं वाग्न्युदकदानं नियतम् । यत्तु वसिष्ठः-'ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रम्' इति तत्प्रथमाब्दचूडापरम् । वर्षत्रयादूर्ध्वमकृतचूडस्यापि नियतम् ॥ वर्षत्रयोर्ध्वमुपनयनात्पूर्वं च तूष्णीमग्न्युदकदानम् ॥ 'तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च' इति पूर्वोक्तलौगाक्षिस्मृतेः, पिण्डदानमपि कार्यम् ॥ 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतसोक्तेः । 'उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य' इति गौतमोक्तेः । उदकग्रहणमौर्ध्वदैहिकपरमिति हरदत्तः । "द्वादशाद्वत्सरादर्वाक् पौगण्डे मरणे सति । सपिण्डीकरणं न स्यादेकोद्दिष्टानि कारयेत् ॥" इति हरदत्तधृतदेवलोक्तेश्च । मरीचिरपि-'प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रविवर्जितम् ।' इत्येतद-

---

लिखा है कि दोवर्षसे न्यून गाड़ दे, जलदान न करे, उदक अन्त्यकर्मपर है यह अपरार्क कहते हैं। यमका वचन है कि दो वर्षसे न्यून प्रेतको घी लगाकर यमगाथा और यमसूक्तको गाता हुआ गाड दे, माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि स्त्रियोंका गर्भपात हुआ हो या उत्पन्न होते ही मर गया हो वा दांत जमनेसे प्रथम छः महीनेसे अधिकका मरा हो तो उसको वस्त्र आदिसे भूषित करके काष्ठके तुल्य भूमिपर डाल दे वा शनैः २ भूमिमें खोदकर गाड़ दे तो उसी समय शौच लिखा है। भूषण भी कहेंगे, मुण्डन हुए उपरान्त तीन वर्षसे पहले वा पीछे जलदानका नियम है । और वसिष्ठने तो यह लिखा है कि दो वर्षसे न्यून मृतक हो जाय वा गर्भपात हो जाय तो सपिंडोंको तीन रात अशौच लगता है, यह वाक्य प्रथम वर्षके मुण्डनमें है, कारण कि तीन वर्षके उपरान्त मुण्डन न हुआ हो तो उपनयनसे प्रथम अग्नि और जलदानका नियम है कारण कि पूर्वोक्त लौगाक्षिकी स्मृति है कि जलदान और संस्कार मौन हो करे, पिंडदान भी करे कारण कि प्रचेताका कथन है कि संस्कार होनेको भूमिपर और संस्कृतोंको कुशापर पिंड दे। गौतमने लिखा है कि मुंडन हो गया हो तो सपिंड जलदान करे, यहां जलग्रहण और्ध्वदैहिक कर्मका बोधक है, यह हरदत्तने कहा है और हरदत्तहीका लिखा यह देवलका भी कथन है कि बारह वर्षसे प्रथम पौगंड मृतक हो जाय तो सपिंडीकरण और एकोद्दिष्ट न करे । मरीचिका भी कथन है कि कुश और मन्त्रोंके विना ग्रामसे बाहर प्रेतको पिंड देना, यह यज्ञोपवीत

नुपनीतपरमिति विज्ञानेश्वरः । अत्र चूडैव पूर्वावधिः । पूर्ववाक्ये तु तद्ग्रहणात् । उदकग्रहणस्योपलक्षणत्वाद्दाहः पूर्वावधिरिति केचित् । द्वादशाद्वत्सरादित्यनुपनीतद्विजानूढशूद्रविषयम् । त्र्यहाशौचे पिण्डदानविधिमाह पारस्करः-"प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः ॥" इति । अत्र देवयाज्ञिकनिबन्धे विशेषः-"शिशुरादन्तजननाद्बालः स्याद्यावदाशिखः । कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात् । आपञ्चवर्षात्कौमारं पौगण्डो नवहायनः ॥" तथा-"गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते । परं च पायसं क्षीरं दद्याद्बालविपत्तितः ॥ एकादशं द्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिं विना ॥" तथा-"यत्र प्रमीयते बालस्तत्र प्रायः प्रदीयते । किंचित्समानवयसां संस्कृत्यान्नं यथाविधि ॥ भक्ष्यं भोज्यं च दातव्यं तथा च सुखभक्षिका । तद्वस्त्राणि प्रदेयानि सोपानत्कानि तत्समे ॥ कुमाराणां च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम् । यच्चोपजीवते बालस्तत्तद्विप्राय दीयते ॥" तथा-"भूमिनिक्षेपणं बाले आवर्षद्वयमाशिखम् । ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो यथाविधि ॥ " अचूडेऽप्यूर्ध्वं खनननिवृत्त्यर्थमावर्षद्वयमिति । प्रागपि कृतचूडस्य तन्निवृत्त्यर्थमाशिखमिति । तथा-"चूडा-

---

रहितके निमित्त है, यह विज्ञानेश्वरने लिखा है । यहां मुण्डन ही पहली अवधि है; कारण कि पहले वाक्योंमें उसका स्वीकार है, उदक ग्रहणका उपलक्षण होनेसे दाहका दिन पूर्वावधि है, यह किन्हींका मत है, बारह वर्षसे प्रथम अवधि है, यह अनुपनीत ब्राह्मण और विना विवाहे शूद्रके विषयमें लिखा है । तीन दिनके अशौचमें पिंडदानकी विधि पारस्करने लिखी है कि, प्रथम दिन सावधान होकर तीन पिंड, दूसरे दिन चार पिंड और अस्थिसञ्चयन और तीसरे दिन तीन पिंडदान करे और फिर कपड़ोंको धोवे । यहां देवयाज्ञिक निबन्धमें विशेष लिखा है कि, दांत निकलनेसे प्रथम शिशु, शिखाधारणतक बालक, यज्ञोपवीत होनेतक कुमार सब शास्त्रोंमें लिखा है । पांच वर्षतक कौमार और नौ वर्षका पौगंड होता है इसी प्रकार वाक्य है कि गर्भ नष्ट होनेपर कोई कर्म नहीं है, शिशुके मरनेपर दूध दे और बालकके मरनेपर खीर और दूध दे और केवल वृषोत्सर्गविधिको छोडकर एकादशाह और द्वादशाह विधिको न करे । ऐसे ही और वाक्य है कि जहां बालक मृतक हो जाय वहां उसकी अवस्थाके बालकको विधिसे पकान्न बनाकर जिमावे, भक्ष्य भोज्य और सुखभक्षिका (खीर) दे और उसके वस्त्र और उपानह भी बालकोंको देवे, कुमार और बालकोंको भोजन वस्त्र देने चाहिये और जिस जिस वस्तुको बालक भोगता हो वह वह वस्तु ब्राह्मणको दे । ऐसे ही वाक्य है कि दो वर्षसे प्रथम शिखा रखनेतक भूमिमें गाडे, हे गरुड ! इसके उपरान्त विधिसे देहका दाह करे जिसका मुण्डन न हुआ हो उसको दाबनेकी निवृत्तिके निमित्त दो वर्षपर्यन्त वाक्यमें लिखा है और जिसका मुंडन हो गया हो

कर्मणि संजाते विपत्तिस्तु यदा भवेत् । सूतकान्ते प्रकर्तव्यं वृषस्योत्सर्जनं तथा ॥ तत्र दाहः प्रकर्तव्य उदकं तत्र निश्चितम् । श्राद्धानि षोडशापि स्युः सपिण्डीकरणं विना ॥" इदं पञ्चवर्षोत्तरम् । "जन्मतः पञ्चवर्षाणि भुंक्ते दत्तमसंस्कृतम् । पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते । वृषोत्सर्गादिकं कर्म कर्तव्यमुदकं ततः । अहन्यहनि संप्राप्ते कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ॥ पायसेन गुडेनैव पिण्डं दद्याद्यथाक्रमम् । उदकुम्भप्रदानं च पददानानि यानि च ॥ दीपदानानि यत्किंचित्पञ्चवर्षाधिके सदा । कर्तव्यं तु खगश्रेष्ठ व्रतार्वाक् प्रेततृप्तये ॥ स्वाहाकारेणैव कार्याण्येकोद्दिष्टानि षोडश । ऋजुदर्भैस्तिलैः शुक्लैः प्राचीनावितिना तथा ॥" इति तत्रैवोक्तेः । अत्र मूलं चिन्त्यम् । वार्षिकादि तु न भवत्येव । सपिण्डनाभावे पितृत्वायोगाद्वचनाभावाच्च । दिवोदासीये—"अव्रते निधनं प्राप्ते विप्रादौ शूद्रजातिवत् । क्रियाः सर्वाः समुद्दिष्टाः सपिण्डीकरणं विना ॥ उदकं पिण्डदानं च कृतचूडे विधीयते ॥" इति । स्त्रीणां तूद्वाहात्प्रागुदकपिण्डदानविकल्पः । "स्त्रीणां चैके प्रत्तानाम्' इति गौतमोक्तेः । 'स्त्रीशूद्राश्च सधर्माणः' इतिवचनात् शूद्रेऽप्येवम् । एतद्वयोनिमित्ताशौचं सर्ववर्णसमम् । 'तुल्ये वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च ।' इति व्याघ्रपादोक्तेः । यानि तु—'निर्वृत्तचूडके विप्रे त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ।' इति । "निवृत्ते

उसको भी प्रथम कर्मनिवृत्तिके निमित्त शिखा धारनेतक लिखा है ऐसा ही वाक्य है कि मुण्डनके उपरान्त मरण हो जाय तो सूतकके अन्तमें वृषोत्सर्ग करना चाहिये, वहां दाह और जलदान करे और सपिंडीके विना सोलह श्राद्ध होते हैं यह पांच वर्षके पीछे जानना जन्मसे पांच वर्षतक असंस्कृत अन्नको खाता है, पांच वर्षसे अधिकका बालक मृतक हो जाय तो वृषोत्सर्ग आदि कर्म और जलदान करे और प्रतिदिन सोलह श्राद्ध करे, खीर वा गुडसे क्रमसे पिण्ड दान करे, जलका घडा, पददान, दीपदान आदि जो हैं वे सब पांच वर्षसे अधिकमें करने हे गरुड ! व्रत (जनेऊ) से प्रथम प्रेततृप्तिके निमित्त करने और स्वाहाकारसे षोडश १६ एकोद्दिष्ट करने और ऋजु कुशा और शुक्ल तिलोंसे अपसव्य होकर करे, यह सब उसी स्थलमें कहा है । इसमें मूल नहीं है और वार्षिक आदि नहीं होते, क्योंकि सपिंडनके अभावमें पितृत्वका अयोग है और वचनका भी अभाव है । दिवोदासीयमें कहा है कि जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वह मर जाय तो ब्राह्मण आदि जातियोंमें भी सपिंडीके विना सब क्रिया शूद्र जातिके तुल्य करनी लिखी है, जल और पिंडदान मुण्डनके पीछे लिखे हैं कन्याओंको तो दाहसे प्रथम जल और पिंडदान दे वा न दे; कारण कि गौतमका कथन है कि कोई आचार्य्य विवाही हुई कन्याको ही जलदान लिखते हैं स्त्री शूद्रोंका एक धर्म है, इससे शूद्रोंमें भी इसी प्रकार जानना यह अवस्था निमित्तक अशौच सब वर्णोंमें तुल्य है; कारण कि व्याघ्रपादका कथन है कि सब वर्णोंमें समान अवस्थाके बीतनेपर बराबर अशौच होता है । जो ये वाक्य अंगिरस आदिके लिखे हैं कि मुण्डनके पीछे ब्राह्मण मरे तो तीन रातमें, क्षत्रिय

क्षत्रिये षड्भिर्वैश्ये नवभिरुच्यते । शूद्रे त्रिवर्षे न्यूने तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः ॥ अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते । षड्वर्षान्तमतीते तु शूद्रे मासमशौचकम् ॥" इत्याङ्गिरसादीनि, तानि विशिष्टविगानान्नादर्तव्यानीति विज्ञानेश्वरमदनपारिजातादयः । तेनैतद्वशाच्छूद्राणां व्यवस्था प्रागुक्ता हेयैव । 'तुल्ये वयसि सर्वेषाम्' इति दाक्षिणात्यपरम् । अन्यदेशे कौर्मोक्ता व्यवस्थेति शुद्धितत्त्वे । अथ जात्याशौचम् । तच्च द्विजपुंसामुपनयनोर्ध्वं प्रवर्तते । "त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतःपरम् । क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पंचदशैव तु ॥' त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य तदर्धं न्यायवर्तिनः ॥" इति याज्ञवल्क्योक्तेः । यत्तु स एव-'त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमिष्यते ।' इत्याह-तत्र दशाहे त्रिरात्रमस्पृश्यत्वम् । एकादिनोत्पन्ने आशौचद्वये दशाहमस्पृश्यत्वम् । " मरणं यदि तुल्यं स्यान्मरणेन कथंचन । अस्पृश्यं तु भवेद्गोत्रं सर्वमेव सबान्धवम् ॥" इत्याङ्गिरसोक्तेः । दशाहाशौचपरत्वे ' दशरात्रमतःपरम्' इत्यनेन पौनरुक्त्यापत्तेरिति शुद्धिविवेकादयः । तन्न । स्मृतिभेदात्त्रिरात्रं दशरात्रं वेति विकल्पायोगाच्च । यस्तु पुत्राणां वेदानध्याप्य वृत्तिं विदधाति तत्राहाश्वलायनः-'द्वादशरात्रं महागुरुषु दानाध्ययने वर्जयेरन्'इति । अत्र यावदुक्तनिषेधो वा स्पृश्यत्वमात्रं वा न

सूतक हो तो छः रातमें, वैश्य मरे तो नौ रातमें, तीन वर्षसे कम अवस्थावाला शूद्र मृत्युको प्राप्त हो तो पांच रातमें शुद्धि होती है, इससे अधिकका शूद्र मरे तो बारह दिन और छः वर्षसे ऊपरका मरे तो एक महीनेका अशौच होता है, ये सब वाक्य शिष्टोंके निंदित करनेके कारण आदर करने योग्य नहीं हैं, यह विज्ञानेश्वर मदनपारिजात आदिका मत है । इससे इस कथनके बदले पूर्वोक्त जो शूद्रोंकी व्यवस्था है वह त्यागने ही योग्य है । अवस्थाका अशौच सबको समान है, यह दाक्षिणात्योंके निमित्त है; अन्य देशके निमित्त तो वही व्यवस्था उचित है, सो कूर्मपुराणमें लिखा है; वही शुद्धितत्त्वमें वर्णन किया है । अब जातिके अशौचको लिखते हैं-वह अशौच द्विजोंमें बालकोंके यज्ञोपवीतके उपरान्त प्रवृत्त होता है कारण कि याज्ञवल्क्यने कहा है कि यज्ञोपवीतसे प्रथम तीन रात और उससे पीछे दश रात, क्षत्रियके बारह दिन, वश्यके पन्द्रह दिन और शूद्रको तीस दिन और जो शूद्र न्यायसे युक्त हो उसको पन्द्रह दिन अशौच लगता है । और जो उसका ही कथन है कि तीन वा दश रात मरनेका अशौच लगता है, वह इस कारण है कि दश दिनमें तीन रात्रितक स्पर्श न करे, यदि एक दिन दो अशौच प्राप्त हो जायँ तो दश दिनतक अशौच न करे; कारण कि अंगिराका कथन है कि यदि मरनेमें अन्यका मरण हो जाय तो सब गोत्र बांधवोंसहित स्पर्श करने योग्य नहीं होता । दशाहके अशौचका कथन करनेवाला मानोगे तो इससे आगे दश रातका अशौच होता है; इसके संग पुनरुक्तिदोष हो जायगा, यह शुद्धिविवेक आदिने कहा है, सो यथार्थ नहीं; कारण कि स्मृतियोंका भेद है और तीन रात वा दश रात अशौच होता है, इस विकल्पका अयोग हो जायगा । जो पुत्रोंको वेद पढ़ाकर जीविका करनेकी इच्छा

तु कर्मानधिकारः । एकादशाहान्ते वैश्वदेवोक्तेः । 'एकादशाहिकं भुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते ।' इति । शुद्धितत्त्वे तु-'त्रयः पुरुषस्यातिगुरवो भवन्ति माता पिताचार्यश्च' इति विष्णूक्तेः । पित्रादयो महागुरवः । भर्ताप्युक्तो रामायणे-'पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च ।' शातातपः-'पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ।' एकपदमूढानां पितृमातृनिषेधार्थम् । सोदकानां त्रिरात्रम् 'त्र्यहात्तुदकदायिनः' इति मनूक्तेः । अग्निपुराणे-"सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते । समानोदकभावस्तु निवर्तेत चतुर्दशे ॥ जन्मनामस्मृतेर्वैके तत्परं गोत्रमुच्यते ॥" बृहस्पतिः-"दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके । त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः ॥" स्त्रीशूद्रयोस्तु विवाहोर्ध्वं जात्याशौचम् । 'वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः ।' इत्युक्तेः । "दत्तानां भर्तुरेव हि । स्वजात्युक्तमाशौचं स्यान्मृतके जातके तथा ॥" इति माधवीये ब्राह्माच्च । शूद्रस्य विवाहाभावेऽपि षोडशवर्षोर्ध्वं मासः । "अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् । मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बान्धवाः ॥

करता है वहां आश्वलायनने लिखा है कि, बारह राततक महागुरुसे दान और अध्ययनको त्याग दे। यहां बारह दिन पर्यन्त पूर्वोक्त निषेध है वा स्पर्शका त्याग है, कुछ कर्मका अनधिकार नहीं है; कारण कि एकादशाहके अन्तमें आश्वलायनने ही लिखा है कि एकादशाहको त्यागकर अन्तमें बलिवैश्वदेव करे। शुद्धितत्त्वमें तो कहा है कि माता, पिता, आचार्य्य ये तीन पुरुषके महागुरु होते हैं, इस विष्णुके कथनमें माता पिता महागुरु कहे हैं और रामायणमें स्वामीको भी महागुरु लिखे हैं, बन्धु गति देवता गुरु स्त्रियोंका पति ही है। शातातपने कहा है कि स्त्रियोंका गुरु एक पति ही है और सबका गुरु अभ्यागत होता है, ये वाक्य पिता माताको गुरुनिषेधके निमित्त हैं। सोदकोंको तीन रात अशौच होता है; कारण कि मनुका कथन है कि जलके दाता तीन दिनमें पवित्र होते हैं । अग्निपुराणमें लिखा है कि सातवें पुरुषमें सपिंडता निवृत्त होती है और चौदह पीढ़ीतक समानोदक होते हैं और जहांतक बड़े पुरुषके नामका ज्ञान हो, उससे परे गोत्र कहाता है। बृहस्पतिका कथन है कि प्रेत सूतकमें सपिंड दश दिनमें, सवंश तीन रातमें और सगोत्री स्नान करनेसे शुद्ध होते हैं। स्त्री और शूद्रको तो विवाहके उपरान्त जातिका अशौच लगता है; कारण कि यह वाक्य है कि स्त्रियोंका विवाह ही यज्ञोपवीत कहाता है; विवाही हुई कन्याओंका स्वामीके कुलका अशौच लगता है; कारण कि माधवीयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि जन्म और मरणमें अपनी जातिका अशौच होता है। शूद्रका विवाह न हुआ हो तो भी एक महीनेका अशौच लगता है; कारण कि अपरार्कमें शंखका कथन है कि जिसका विवाह न हुआ हो वह

शुद्धिं समधिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥" इत्यपरार्के शङ्खोक्तेः । निर्णयामृतमदनपारिजातादौ त्वन्यथोक्तम् । हारीतः-"आमौञ्जीबन्धनाद्विप्रः क्षत्रियश्च धनुर्ग्रहात् । आप्रतोदग्रहाद्वैश्यः शूद्रो वस्त्रद्वयग्रहात् ॥" धनुःप्रतोदावष्टमेऽब्दे द्वादशे वस्त्रद्वयमिति । मेधातिथिस्तु-'त्रिरात्रमाव्रतादेशात्' इत्यत्र व्रतं कालोपलक्षणार्थम् । स च कालः स्वकार्यः सर्वेषां चाष्टमवर्षरूपः । तेन चतुर्णामपि वर्णानामुपनयनाभावेऽप्यष्टमादूर्ध्वं पूर्णमेवाशौचम् । तत्रापि-'प्रागष्टमाच्छिशवः प्रोक्ताः' इति स्मृत्यन्तरादूर्ध्वं संपूर्णमर्वाक्त्रिरात्रम् । येऽपि-"आषोडशाद्भवेद्बालः' इत्याहुस्तेषामप्यष्टमादूर्ध्वं शूद्रे मास एव 'ऊर्ध्वमष्टभ्यो वर्षेभ्यः शुद्धिः शूद्रस्य मासिकी ।' इति वचनादित्याह । हारलताशुद्धितत्त्वादिगौडग्रन्थेष्वप्युक्तम् 'अनुपनीतो विप्रः' इत्युक्त्वा-"म्रियते यत्र तत्र स्यादाशौचं त्र्यहमेव हि । द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणां तु षडाब्दिकः ॥" इत्यादिपुराणोक्तेरुपनयनं कालोपलक्षणम् । षडब्दपदं मासत्रयाधिकपरम् । 'गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे' इत्युक्तेः । यत्तु जाबालिः-"व्रतचूडा द्विजानां च प्रतीतिषु यथाक्रमम् । दशाहत्र्यहएकाहैः शुद्ध्यन्त्यपि हि निर्गुणाः ॥" इति । द्विजा दन्ताः । इदं प्रतीतिष्वित्युक्तेः पश्चा-

---

शूद्र सोलह वर्षसे पीछे मृतक हो जाय तो उसके बांधव एक महीनेमें पवित्र होते हैं, इसमें विचार नहीं करना । निर्णयामृत मदनपारिजात आदिमें तो और प्रकार कहा है, हारीतका कथन है कि यज्ञोपवीतसे प्रथम ब्राह्मण, धनुष ग्रहण करनेसे प्रथम क्षत्रिय और प्रतोद ("कोड़ा) के ग्रहण करनेसे प्रथम वैश्य और दो वस्त्रोंके ग्रहण करनेसे प्रथम शूद्रको अशौच लगता है, धनुष और कोड़ा आठवें वर्षमें और दो वस्त्र बारहवें वर्षमें कहे हैं, मेधातिथिने तो यह लिखा है कि यज्ञोपवीतसे प्रथम तीन रात अशौच लगता है, यहां यज्ञोपवीत शब्द कालके उपलक्षण निमित्त है, वह काल अपना २ लेना, वा सबका अष्टमवर्षरूप होता है । इससे चतुर्णां (चारों) वर्णोंका यज्ञोपवीत के अभावमें भी आठ वर्षके उपरान्त पूर्ण अशौच होता है । वहां भी अष्टमसे प्रथम शिशु कहाते हैं, इस दूसरी स्मृतिके कथनसे आठसे उपरान्त पूर्ण और पहले त्रिरात्र होता है । जो सोलहसे प्रथम बालक कहाते हैं, उनके भी मतमें आठ वर्षसे उपरान्त शूद्रके यहां महीनेकी शुद्धि है । यह कहा है कि आठ वर्षके आगे शूद्रको महीनेकी शुद्धि है । हारलता शुद्धितत्त्व आदि गौड़ ग्रन्थोंमें भी ऐसा ही लिखा है, यज्ञोपवीतहीन विप्र यह कहकर जो आदिपुराणका कथन है कि जहां मरे वहां तीन दिनका अशौच लगता है, यह तीनों ब्राह्मणोंका छः वर्षतकका समय है, वह उपनयनके समयका उपलक्षण है । षडब्द (छः वर्ष), पद तीन महीनोंसे अधिकका बोधक है, कारण कि यह कथन है कि गर्भसे वा जन्मसे आठवेंमें करे, और जो जाबालिने लिखा है कि यज्ञोपवीत, मुण्डन, द्विज (दांत) के प्रत्यक्ष होनेपर निर्गुण भी दश दिन, तीन दिन, एक दिनमें तीनों द्विज क्रमसे

ब्दोपनीतपरमिति । तदेतन्नाद्रियन्ते वृद्धाः । यानि तु: पराशरः-"एकाहाद्ब्राह्मणः शुद्धचेद्योऽग्निवेदसमन्वितः । त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥" केवलवेदः केवलश्रौताग्नेरप्युपलक्षणम् । अयं संकोचो होमाध्ययनपर एव नतु संध्यादाविति हारलतायाम् । अङ्गिराः-"सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा। दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत् ॥" देवलः-"आशौचं दशरात्रं तु सर्वेषामपरे विदुः । निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्मणः क्षयम् ॥" अत्यन्तोत्कृष्टस्य कर्महानौ पीडावतो विप्रपरिचर्यापरम् । शूद्रे दशरात्रमिति हारलतायाम् । दक्षः-"सद्यःशौचं तथैकाहस्त्र्यहश्चतुरहस्तथा । षड्दशद्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥ मरणान्तं तथा चान्यद्दशपक्षास्तु सूतके ॥" मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे-"चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्निशः पुंसि पञ्चमे । षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे त्वहरेव तु ॥" इत्यादीनि तान्यापदनापद्गुणवद्गुणवद्विषयाणि देशान्तरभेदाद्वा ज्ञेयानि । सद्यःशौचादिषडहान्ताः पक्षा यायावरादिपराः । अत्र मरणान्तं जननादिनिमित्ताद्भिन्नम् । 'अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु ।' इत्युक्तत्वान्मधुपर्कपश्वालम्भवत् शिष्टविगानान्नादर्तव्यमिति विज्ञानेश्वरः । "अस्नात्वा

पवित्र होते हैं । यहां प्रवीति (प्रत्यक्ष) कहनेसे उसके विषयमें है, जिसका यज्ञोपवीत पांच वर्षकी अवस्थामें हुआ हो, इसको वृद्ध नहीं मानते । जो वाक्य पराशरने लिखे हैं कि जो अग्नि और वेद दोनोंसे युक्त है, वह ब्राह्मण एक दिनमें, और केवल वेदपाठी तीन दिनमें और उससे भी हीन दश दिनमें पवित्र होता है, यहां केवल वेद शब्द केवल श्रौताग्निका भी उपलक्षण है, और यह संकोच होम और पढ़ानेके विषयमें है, संध्या आदिमें नहीं । यही हारलतामें वर्णन किया है । अंगिराने लिखा है कि सूतक और मृतकमें सब वर्णोंकी पवित्रता दश दिनमें होती है, यही शातातपने लिखा है । और देवल लिखते हैं कि मरण और जन्ममें कर्मका क्षय देखते हुए और ऋषि सब वर्णोंको दश दिनका अशौच लिखते हैं । जो शूद्र अति श्रेष्ठ हैं और कर्मकी हानिमें दुःख मानते हैं, ब्राह्मणकी सेवामें तत्पर रहते हैं उनको दश रातका अशौच हारलतामें लिखा है । दक्षने कहा है कि सूतकमें ये दश पक्ष हैं कि सद्यःशौच, एक दिन, तीन दिन, चार दिन, छः दिन, दश दिन, बारह दिन, पक्ष, महीना, मरणपर्यन्त । मिताक्षरामें स्मृत्यन्तरका कथन है कि चौथी पीढीमें दश रात, पांचवींमें छः दिन, छठीमें चार दिन, सातवींमें एक दिनमें पवित्रता होती है, इत्यादि वाक्य आपत्तिमें और अनापत्तिमें और गुणवान् और निर्गुणके विषयमें हैं, वा देशाचारके भेदसे जानने, और सद्यःशौचसे छः दिनतकके सूतक यायावरों (उंछवृत्ति) आदिके विषयमें है, यहां मरणांत अशौच जन्म आदि निमित्तसे पृथक् है, विज्ञानेश्वर तो यह लिखते हैं कि शिष्टोंमें निन्दित होनेसे पूर्वोक्त वाक्य सत्कार करनेके योग्य नहीं है, स्नान, होम और दान किये बिना जो ब्राह्मण

चाप्यहुत्वा च अदत्त्वाश्नंस्तथा द्विजः । एवंविधस्य विप्रस्य सर्वदा सूतकं भवेत् ॥" इति दक्षोक्तेः । "अन्यपूर्वा यस्य गेहे भार्या स्यात्तस्य नित्यशः । आशौचं सर्वकार्येषु देहे भवति सर्वदा ॥" इति ब्राह्मादिवशाद्व्यवस्थेत्यपरार्कमदनपारिजातादयः । माधवस्तु–'वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमघसंकोचनं तथा ।' इति कलिवर्ज्येषूक्तेः–"दशाह एव विप्रस्य सपिण्डे मरणे सति । कल्पान्तराणि कुर्वाणः कलौ भवति किल्बिषी ॥" इति हारीतोक्तेश्च न्यूनाशौचपक्षा युगान्तरविषयाः । मरणान्तादिपक्षास्तु निन्दार्थवादः । अन्यथा–'नामधारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् ।' इति विरोधः स्यादित्याह । यत्तु देवलः–"दशाहादित्रिभागेन कृते संचयने क्रमात् । अङ्गस्पर्शनमिच्छन्ति वर्णानां तत्त्वदर्शिनः॥" इति पूर्णाशौचे स्पृश्यतामाह । यच्चानुपनीतातिक्रान्ताशौचे त्रिरात्रादौ तेनैवोक्तम्–'स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागतः।' इति, तदपि युगान्तरेषु । 'अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च ।' इति माधवीये कलौ तन्निषेधात् ।

भोजन करता है ऐसे उस द्विजको सदैव सूतक लगता है, इस दक्षके कथनसे और जिसके घरमें ऐसी स्त्री हो जिसका दूसरा पति हो चुका हो, उस ब्राह्मणके यहां सब कार्योंमें देहमें निरन्तर अशौच रहता है, इन ब्रह्मपुराण आदिके वाक्योंसे व्यवस्था जाननी चाहिये, यह अपरार्क मदनपारिजात आदि लिखते हैं। माधवने कहा है कि आचार और वेदपाठकी अपेक्षासे पापका संकोच[1] होता है, यह कलियुगमें निषेध है और सपिण्डकी मृत्युमें ब्राह्मणको दश दिनका ही अशौच लगता है और पक्षोंको जो मानता है वह कलियुगमें पापका भागी होता है, इस हारीतके कथनसे न्यून अशौचके पक्ष युगान्तरोंके विषयमें हैं, मरणांत अशौचके पक्ष तो निन्दासे अर्थवाद लिखे हैं अन्यथा इस वाक्यका विरोध होगा कि नामधारक ब्राह्मणको दश दिनका सूतक प्राप्त होता है। जो देवलने यह लिखा है कि दशाह आदि तीन भागसे अस्थिसंचयन करे, पश्चात् वर्णोंके स्पर्शकी इच्छा तत्त्वके देखनेवाले करते हैं, इस कथनसे पूर्ण अशौचमें ही स्पर्श करे। और जो अनुपनीत और अतिक्रान्ताशौचमें तीन रात आदि उसने ही लिखे हैं कि अपने अशौचके समयके तीसरे भागमें स्पर्श करे, यह भी और युगोंके विषयमें है; कारण कि अस्थिसंचयनके उपरान्त अंगका स्पर्श करे, इस माधवीयके कथनसे कलियुगमें उनका निषेध है। जो हारलतामें लिखा है कि चौथे

---

१ जो बात कलिमें वर्जित की है उसका विशेष अभिप्राय यह है कि, सत्ययुगादिमें जप तप संयम नियमसे मनुष्योंमें पूर्ण सामर्थ्य थी, उनको दोष नहीं लगता था सब विधान कर सकते थे, कलियुगमें जप तप सामर्थ्यकी हीनतासे निषेध किया है इससे 'न हिंस्यात्सर्वाणि भूतानि' यही वाक्य सिद्ध है ।

यत्तु हारलतायाम्-'चतुर्थेऽहनि कर्तव्यः संस्पर्शो ब्राह्मणेन तु' इति प्रचेतसोक्तेस्त्र्यहैकाहाशौचेऽपि चतुर्थाह एवाङ्गस्पर्श इति तन्न देवलादिवशेनास्य दशाहगोचरत्वात्। ये तु वर्णसंकरजा मूर्धावसिक्ताद्यास्तेषामाशौचे विशेषः कलौ नोपयुक्त इति नोच्यते। प्रतिलोमजानां नाशौचम्। मलापकर्षणार्थं तु स्नानमात्रमिति विज्ञानेश्वरः। माधवस्तु-'शौचाशौचे प्रकुर्वीरन् शूद्रवर्णस्य संकराः।' इति ब्राह्मोक्तेः। शूद्रवदाह। हारलतायामप्येवम्। दत्तक्रीतकृत्रिमादिपुत्रेषु अहीनवर्णगासु स्त्रीषु च सपिण्डत्वेऽपि प्रसवे मरणे च पूर्वापरपित्रोर्भर्तुश्च त्रिरात्रमेव न दशाहादि। "अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च। परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च॥" इति त्रिरात्रानुवृत्तौ विष्णूक्तेः। सपिण्डानां त्वेकाहः। "परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च। भर्तृपित्रोस्त्रिरात्रं स्यादेकाहस्तु सपिण्डतः॥" इति माधवीये हारीतोक्तेः। "सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः। एकाहस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः॥" इति मरीच्युक्तेश्च। शंखः-"अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च। परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते॥" परपूर्वा पुनर्भूः। इदं सवर्णासु।

दिन ब्राह्मण अंगका स्पर्श करे, इस प्रचेताके कथनसे तीन दिन और एक दिनकी अपवित्रतामें भी चौथे दिन ही अंगस्पर्श करे, सो उचित नहीं; कारण कि देवलआदिके अनुरोधसे यह वाक्य भी दशाह आदि अशौचके विषयमें है। जो किसीने यह लिखा है कि वर्णसंकरोंसे उत्पन्न हुए मूर्द्धावसिक्त आदिकोंका अशौच विशेष कलियुगमें उपयोगी नहीं है, इससे उसको नहीं लिखते। प्रतिलोमजोंको अशौच नहीं लगता, मल दूर करनेके निमित्त स्नानमात्र होता है, यह विज्ञानेश्वरका मत है। माधव तो यह कहते हैं कि शौच और अशौचको वर्णसंकर शूद्रके तुल्य करे, इस ब्रह्मपुराणके कथनसे शूद्रके समान अशौच लिखते हैं। हारलतामें भी इसी प्रकार लिखा है कि दत्तक, क्रीत, कृत्रिम आदि पुत्रोंसे और अहीन (ऊंचे) वर्णकी स्त्रियोंमें सपिंड हो तो भी जन्म और मरणसे प्रथम और पिछले माता, पिताको और पतिको तीन रातका अशौच लगता है, दशदिन आदिका नहीं। कारण कि विष्णुने लिखा है कि औरससे भिन्न पुत्रोंको जन्म और मरणमें और पर पूर्वास्त्रियोंके प्रसूत (जन्म) और मरणमें तीन रातका अशौच लगता है, और सपिंडोंको तो एक दिन लगता है। कारण कि माधवीयमें हारीतका कथन है कि पर, पूर्व पतिवाली स्त्री और किये हुए पुत्रोंके मरने आदिमें पति और मातापिताको तीन रात और सपिंडोंको एक दिनका अशौच लगता है। और मरीचिने भी लिखा है कि पहले और पिछले मातापिताका सूतक और मरणमें तीन रात और सपिंडोंका एक दिन अशौच लगता है। शंखने यह लिखा है कि औरससे भिन्न पुत्रोंमें और अन्यमें आसक्त और भार्या और पुनर्भूभार्यामें तीन रातमें शुद्धि मानी है, यह भी सवर्णाओंमें जानना उचित है। हीन-

हीनवर्णासु तु शंखलिखितौ–"परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च । नानध्यायो भवेत्तस्य नाशौचं नोदकक्रिया ॥ " ब्राह्मेऽपि–'आशौचं तु त्रिरात्रं स्यात्समवर्णेषु निश्चितम् ॥' यत्तु षडशीतौ–"अन्यपूर्वावरुद्धासु त्रिदिनाच्छुद्धिरिष्यते । तास्वेवानन्यपूर्वासु पञ्चाहोभिर्विशुद्ध्यति ॥". तत्र पञ्चाहे मूलं चिन्त्यम् । यत्तु याज्ञवल्क्यः–'अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।' इत्येकाहमाह तदसंनिधौ ज्ञेयम् । यदा पितुरेकाहस्तदा सपिण्डानां स्नानम् ।• "अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु च । गोत्रिणः स्नानशुद्धाः स्युस्त्रिरात्रेणैव तत्पिता ॥" इति प्रजापत्युक्तेः । पितेति वोढुरुपलक्षणम् । तथोपक्रमात् । यत्तु दत्तके पालकप्रतियोगिकपुत्रत्वात्पूर्वपितुर्न त्रिरात्रम् ॥ पूर्वसंबन्धनिवृत्तेश्च न दशाहादीति कश्चित् । तन्न । जनकेऽपि–'बैजिकादभिसंबन्धादनुरुध्यादघं त्र्यहम् ।' इति वाचनिकाशौचस्यानिव्वार्यत्वात् । पितृमरणेऽपि दत्तकादीनां त्रिरात्रम् । शुद्धितत्त्वे ब्राह्मे–'दत्तकश्च स्वयं दत्तः कृत्रिमः क्रीत एव च ।' इत्युपक्रम्य–' सूतके मृतके चैव त्र्यहाशौचस्य भागिनः ।' इत्युक्तेः । स्मृतिकौमुद्यां हारलतायामप्येवम् । दत्तकस्य पुत्रपौत्राणां जनने

वर्णाओंमें तो शंख और लिखितका कथन है कि पुनर्भू स्त्री और किये हुए पुत्रोंके मरनेमें न उसे अनध्याय, न अशौच और न जलदान होता है। ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि समानवर्णोंमें तीन रात अशौच निश्चयसे होता है । जो षडशीतिमें लिखा है कि पुनर्भू और अवरुद्धा (रखेली) स्त्रियोंमें तीनसे शुद्धि इष्ट है, वा उनमें और अन्यपूर्वाओंमें पांच दिनमें शुद्धि होती है, सो उनमें पांच दिनकी शुद्धिमें मूल कहीं नहीं मिलता है । जो याज्ञवल्क्यने एक दिन लिखा है कि औरससे भिन्न पुत्रोंमें और अन्यमें अनुरक्तभार्यामें एक दिन अशौच लगता है, वह निकटमें न हो तो जानना और जब पिताको एक दिन है तब सपिंडोंको स्नानमात्र लगता है; कारण कि प्रजापतिका कथन है कि अन्यके आश्रय स्त्री और परपत्नियोंके पुत्रोंमें सगोत्री स्नानमात्रसे और उनके पिता तीन रातमें पवित्र होते हैं, यहां पितापद उनके वोढाका भी उपलक्षण है, कारण कि प्रकरण है । जो किसीने लिखा है कि दत्तकमें पुत्रभाव रखनेवालेका किया है, इससे प्रथम पिताको तीन रात नहीं और पहले संबन्धकी निवृत्तिसे दश दिन आदिका भी अशौच नहीं कथन कर सकते, सो उचित नहीं; कारण कि जनक पितामें भी बीजके संबन्धसे तीन दिन पापका अनुरोध करे, इस कथनसे सिद्ध अशौचको निवारण नहीं कर सकते, पिताके मरनेमें भी दत्तक आदिको तीन रातका अशौच लगता है । शुद्धितत्त्वमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि दत्तक, स्वयंदत्त, कृत्रिम, क्रीत इनके प्रकरणमें लिखा है कि ये सूतक और मृतकमें तीन दिन अशौचके भागी होते हैं, यह कहा है । स्मृतिकौमुदी और हारलतामें भी ऐसे ही कहा है । दत्तकके पुत्रपौत्रोंके जन्म और मरणमें सपिंडोंको

मरणे वा सपिण्डानामेकाहः । बीजिनश्चेति गौतमेन सप्तपौरुषसापिण्ड्योक्तेः । सपिण्डानां चैकाहस्योक्तत्वात् सपिण्डं तु पुत्रीकृते सपिण्डदत्तौरसयोर्भ्रात्रो-स्तत्पुत्रयोर्दशाह एव । तत्राकाङ्क्षाभावात्सपिण्डत्वेन दशाहप्राबल्याच्च । पूर्वापरयोर्भर्तुरुत्पन्नयोः पुत्रयोस्त्वाह माधवीये मरीचिः—"मातुरैक्याद्द्विपितृकौ भ्रातरावन्यगोत्रजौ । एकाहं सूतकं तत्र त्रिरात्रं मृतके तयोः ॥" इति दिक् । ऊढकन्यानामाशौचं तु विष्णुराह—'संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे तत्प्रसवमरणे चेत् पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं त्रिरात्रं च ' इति । प्रसवे एकरात्रं मरणे त्रिरात्रमिति विज्ञानेश्वरापरार्कौ । माधवस्तु—प्रसवेऽपि त्रिरात्रं पित्रोः, एकरात्रं भ्रात्रादिबन्धुवर्गस्य । "दत्ता नारी पितुर्गेहे सूयेताथ म्रियेत वा । तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन शुचिस्तज्जनकस्त्रिभिः ॥" इति ब्राह्मोक्तेरित्याह । यत्तु कश्चिदाह—पक्षपदेन भ्रातरो गृह्यन्ते । वाक्यान्तरेण भगिनीमृतौ त्रिरात्रोक्तेरिति तच्चिन्त्यम् । तदभावे तद्विरोधाच्च । भ्रातुः प्रसवे एकाहः । मृतौ त्रिरात्रमिति केचित् । युक्ता तु पक्षिणी । 'परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत् ।' इति ब्राह्मात् । भ्रातृभिन्नानामेकाहः । वर्गोक्तेः । 'इतरेषां तु यथाविधि ' इति वक्ष्य-

---

एक दिनका अशौच होता है; कारण कि 'बीजिनश्च' इस वाक्यसे गौतमने सातपुरुष तक सपिंड लिखे हैं और सपिंडीका एक दिनका अशौच लिख आये हैं। यदि सपिण्ड ही पुत्र किया हो तो सपिंड दत्तक औरस दोनों भाइयोंको और उनके पुत्रोंको दश दिनका ही होता है; कारण कि वहां आकांक्षा नहीं है और दस दिनका अशौच बलिष्ठ है। पूर्व और पिछले भर्तासे उत्पन्न हुए पुत्रोंको तो माधवीयमें मरीचिने लिखा है कि एक मातासे दो पिता जिनके ऐसे भिन्नगोत्री भाई हों तो वहां एक दिन सूतक होता है और उनके ही मरनेमें तीन रात अशौच होता है, यह संक्षेपसे लिखा है। विवाही हुई कन्यामें तो विष्णुने यह लिखा है कि विवाही स्त्रियोंका अशौच पितृपक्षमें नहीं होता, यदि उनका प्रसव और मृत्यु पिताके यहां ही हो तो एक रात्रि और तीन रात्रि अशौच होता है, प्रसवमें एक रात मरणमें त्रिरात्र यह विज्ञानेश्वर और अपरार्क लिखते हैं। माधवने तो प्रसवमें भी माता पिताको तीन रात और भाई बन्धुओंको एक रातका कहा है; कारण कि ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, यदि दान की हुई कन्याके सुतजन्म और मृत्यु पिताके घर हो जाय तो उसके बन्धुओंको एक दिन और मातापिताको तीन दिन अशौच लगता है। जो किसीने यह लिखा है कि पक्षपदसे भ्राता लेते हैं; कारण कि वाक्यान्तरमें बहनकी मृत्युमें तीन रात अशौचके कहे हैं सो ठीक नहीं, क्योंकि उसका अभाव है और इस वाक्यका विरोध है कि भ्राताको तो प्रसवमें एक दिन है और मृत्युमें तीन दिन, यह कोई लिखते हैं। और युक्त तो पक्षिणी है; कारण कि ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि भाई और भगिनीके मरनेमें परस्पर पक्षिणीका अशौच लगता है।

माणवचनाच्च । यत्तु प्रधानगृहे मृतौ पित्रोः पूर्णं भ्रातुस्त्र्यहं इति कश्चित् स निर्मूलत्वात् 'नाशौचं पितृपक्षे' इत्येतद्विरोधाच्च भ्रान्तः । "दत्ता नारी पितुर्गेहे प्रधाने सूयते यदा । म्रियते वा तदा तस्याः पिता शुध्येत्त्रिभिर्दिनैः ॥" इति कल्पतरौ शुद्धितत्त्वे च । पतिगृहे प्रसवे तु पित्रादीनामाशौचं नास्ति । मृते पित्रोस्त्रिरात्रमस्त्येव । "प्रत्ताप्रत्तासु योषित्सु संस्कृतासंस्कृतासु च । मातापित्रोस्त्रिरात्रं स्यादितरेषां यथाविधि ॥" 'अजातदन्तासु पित्रोरेकरात्रम्' इति माधवीये शंखकार्ष्णाजिनिस्मृतेः । 'बैजिकादभिसंबन्धात्' इत्युक्तेश्च । स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् । माधवस्तु इदं त्रिरात्रं जातदन्तपरम् । दन्तोत्पत्तेः प्रागेकरात्रं पित्रोः । "सद्यस्त्वप्रौढकन्यायां प्रौढायां वासराच्छुचिः । अदत्तायां त्रिरात्रेण दत्तायां पक्षिणी भवेत् ॥" इति पुलस्त्योक्तेः अन्यत्र कन्यामृतौ पित्रोः पक्षिणीत्याह । षडशीतावपि-"पितृगेहाद्दतोऽन्यत्र यदि पुत्री प्रमीयते । पक्षिणी तत्र पित्रोः स्यान्नान्येषामिति निश्चयः ॥" इति । ग्रामान्तरे इयमिति

भ्रातासे भिन्नोंको एक दिन होता है, कारण कि, पीछे वाक्यमें वर्गपद पढ़ा है और यह वाक्य आगे भी कहेंगे कि औरको यथाविधि अशौच होता है जो कोई यह कहते हैं कि प्रधानघरमें मृत्यु हो तो मातापिताको पूर्ण और भ्राताको तीन दिन अशौच लगता है, वह भ्रांत है क्योंकि प्रथम तो यह वाक्य ही निर्मूल है; दूसरे पितृपक्षमें अशौच नहीं लगता, इस पूर्वोक्त वाक्यसे विरोध है । कल्पतरु और शुद्धितत्त्वमें कहा है कि विवाही हुई नारी पिताके प्रधान घरमें प्रसूता हो वा मरजाय तो उसका पिता तीन दिनमें शुद्ध होता है पतिके घरमें जन्म हो तो पिता आदिकोंको अशौच नहीं है, मरणमें तो माता पिताको भी तीन रात अशुद्धि लगती ही है, कारण कि यह कथन है कि दी वा नहीं दी विवाही वा विना विवाही कन्याओंके मरनेमें मातापिताको तीन रात और दूसरोंको शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अशौच लगता है और जिनके दंत नहीं उत्पन्न हुए हैं उनके मरनेमें तो मातापिताको एक दिनका होता है कारण कि माधवीयमें शंख और कार्ष्णाजिनकी स्मृति है और पीछे भी बीजके सम्बन्धसे लिख आये हैं । स्मृत्यर्थसारमें भी ऐसे ही लिखा है माधव तो यह लिखते हैं कि यह त्रिरात्र दांत निकलनेके विषयमें है, दांतोंकी उत्पत्तिसे प्रथम मातापिताको एक रात और विना विवाही कन्याओंमें सद्यः और विवाहीमें एक दिनमें शुद्धि होती है, और विना विवाहीमें तीन रात और दत्तामें पक्षिणीका अशौच होता है, इस पुलस्त्यके वाक्यसे अन्यत्र कन्या मरे तो मातापिताको पक्षिणी अशौच लगता है । षडशीतिमें भी कहा है कि पिताके घरसे और जगह यदि कन्याकी मृत्यु हो जाय तो वहां मातापिताको पक्षिणी (दो दिन एक रात्र) अशौच लगता है और औरोंको नहीं लगता यह निश्चय है अन्य ग्राममें मरनेके विषयमें यह वाक्य है, यह स्मृत्यर्थसारमें लिखा है भ्राताके भी दो

स्मृत्यर्थसारे । भ्रातुस्तु पक्षिणी । "श्वशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले । पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम् ॥" इति वृद्धबृहस्पतिस्मृतेः। शुद्धितत्त्वे कौर्मे-'आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम् । आप्रदानात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परम् ॥"अथ पित्रोर्मृतौ स्त्रीणामाशौचनिर्णयः। पित्रोर्मृतौ स्त्रीणां त्रिरात्रम्। "पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानां तु कथं भवेत्। त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् यमः ॥" इति माधवीये वृद्धमनूक्तेः। इदं दशाहान्तः। ऊर्ध्वं तु पक्षिणी। भ्रातुर्भगिनीगृहे तस्या वा तद्गृहे मृतौ त्रिरात्रम् अन्यत्र तु पक्षिणीति षडशीतावुक्तम् । ब्राह्मेऽपि-"परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत् । मातुलाशौचवत्पुत्र्याः पितृव्याशौचमिष्यते ॥" इति । शिष्टास्त्वस्य निर्मूलत्वात्पितृव्ये स्नानमात्रमाहुः । त्रिंशच्छ्लोक्याम्--" प्रेतेष्वाचार्यमातामहदुहितृसुतश्रोत्रियर्त्विकुसयाज्यस्वस्वीयेषु त्रिरात्रं त्रिदिवसमशुचिः सोदकस्तूभयत्र । पक्षिण्याशौचमृत्विग्दुहितृसुतसहाध्यायिबन्धुत्रयान्तेवासिश्वश्रूसुमित्रश्वशुरभागिनिकाभागिनेयमयाणे ॥ मातामह्यां च पित्रोः स्वसरि च विरतौ मातुले मातुलान्यां चाथो सज्योतिरेव स्वविषयनृपतौ ग्राम-

---

दिन एक रात अशौच लगता है; कारण कि बृहस्पतिस्मृतिमें कहा है कि, सास, ससुर, भगिनी, भ्राता, माता बुआ, मौसी इनके मरणमें पक्षिणी होती है। शुद्धितत्त्वमें कूर्मपुराणका वाक्य है कि दांत जमनेतक सहोदर भाईके मरणमें उसी समय और चूडातक मृत्यु हो जाय तो एक रात तथा विवाहके उपरान्त तीन रात और इससे पीछे दश रात अशौच लगता है। पिता माताके मरणमें स्त्रियोंको तीन रात अशौच लगता है; कारण कि माधवीयमें वृद्धमनुका वाक्य है कि पितामाताके मरणमें विवाही हुई स्त्रियोंको कैसे अशौच होता है? तीन रातमें शुद्धि प्राप्त होती है, यह भगवान् यमका कथन है। यह भी दश दिनके भीतर है और पश्चात् पक्षिणी अशौच होता है, भगिनीके घर भ्राता और भ्राताके घर भगिनीके मरणमें दोनोंको त्रिरात्र अशौच होता है, और स्थानमें मरे तो पक्षिणी होती है यह षडशीतिमें लिखा है। ब्रह्मपुराणमें भी कहा है कि, भ्राता और भगिनीके मरणमें आपसमें पक्षिणी अशौच प्राप्त होता है और मामाके अशौचके तुल्य चाचाका अशौच कन्याको होता है। शिष्ट तो यह कथन करते हैं कि इस वाक्यके निर्मूल होनेसे चाचाके मरणमें स्नान मात्र होता है। त्रिंशच्छ्लोकीमें कहा है कि आचार्य, मातामह, दुहिताका पुत्र, श्रोत्रिय, अपना यजमान, भानजा इनके मरणमें तीन रात अशौच लगता है और सोदक तीन दिनमें पवित्र होता है और ऋत्विक् दुहिताका पुत्र, सहपाठी और तीन बन्धुओंतक शिष्य, सास, मित्र, ससुर, भगिनी और भानजा इनके मरणमें दोनों कुलोंमें पक्षिणी अशौच लगता है, मातामही, पिता माताकी बहन, मातुल, मामी इनके मरणमें पक्षिणी अशौच लगता है, अपने देशका राजा और गांवका स्वामी ये मृतक

नाथे च नष्टे । शिष्योपाध्यायबन्धुत्रयगुरुतनयाचार्यभार्यासगोत्रानूचानश्रोत्रियेषु स्वगृहपरमृतौ मातुले चैकरात्रम् । रात्रिं सब्रह्मचारिण्यथ तु कथमपि स्वल्पसंबन्धयुक्ते स्नानं वासोयुतं स्यादिदमपि सकलं सर्ववर्णेषु तुल्यम् ॥" इति । अत्र मूलं मिताक्षरादौ स्पष्टम् । अथ दौहित्रभागिनेययोर्निर्णयः । दौहित्रभागिनेययोस्त्रिरात्रम् । अनुपनीतयोः पक्षिणी । "संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते । संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥" इति वृद्धमनूक्तेः । संस्कृते दाहेन । तेन दाहे त्रिरात्रं नान्यथेति गौडाः । तन्न । विशेषवैयर्थ्यात् । मातुलादौ सन्निधिविदेशाभ्यां पक्षिण्येकाहयोर्व्यवस्था । मनुः-"त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति । तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमितिस्थितिः ॥" अथ श्रोत्रिये स्वगृहे मृते निर्णयः । श्रोत्रिये स्वगृहे मृते त्रिरात्रम् । 'श्रोत्रिये तूपसपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।इति स्मृतेरिति माधवः । एकग्रामीणे त्वेकाहः । ऋत्विक्षु बह्वल्पकालश्रौतस्मार्तयाजनपरे त्रिरात्रैकरात्रे ज्ञेये. । यद्यपि कर्म कुर्वत एष वाचकः शब्दो भवतीति शम्बराचार्यैः कर्ममध्ये ऋत्विक्त्वमुक्तं तथापि कर्मण्याशौचानिषेधात्तदुत्तरमेवैत-

---

हो जाय तो सूर्यके अस्त होनेतक अशौच लगता है, शिष्य, उपाध्याय, तीन बन्धु, गुरुपुत्र, आचार्य स्त्री, सगोत्र और सबसे श्रेष्ठ श्रोत्रिय और अपने स्थानमें मातुल मरे तो एक रात अशौच लगता है, सब ब्रह्मचारियोंके मरणमें एक रात ही अशौच लगता है और किसी प्रकार थोडे संबंधसे युक्तके मरनेमें सवस्त्र स्नान होता है, यह सम्पूर्ण अशौच सब वर्णोंमें बराबर है, इसका मूल मिताक्षरा आदिमें स्पष्ट लिखा है । दौहित्र भानजा उपनीत हो तो तीन रात और यज्ञोपवीत न हुआ हो तो पक्षिणी अशौच लगता है; कारण कि वृद्धमनुने लिखा है कि दौहित्र और भगिनीके पुत्र मृतक होजायँ तो पक्षिणी और संस्कृत मरे तो तीन रात होता है, यह धर्मकी व्यवस्था है । संस्कृत अर्थात् जिसका दाह हुआ हो, इससे दाहमें तीन रात होता हैं, और भांति नहीं, यह गौड लिखते हैं; सो उचित नहीं; कारण कि संस्कृतका विशेष अर्थ करना यथार्थ नहीं विदित होता और मातुल आदि निकट मरे हों तो पक्षिणी और विदेशमें मरे हों तो एक दिनका सूतक लगता है; यह व्यवस्था है । मनुने कहा है कि आचार्यके मरनेमें तीन दिन और उसके पुत्र और पत्नीके मरनेमें दिनरातका अशौच लगता है; यह मर्यादा है । वेदपाठी अपने घर मरे तो तीन रात अशौच होता है कारण कि यह स्मृति है कि श्रोत्रिय निकटमें मरे तो तीन रात अशुद्धि होती है; यह माधव लिखते हैं । एक ग्रामका हो तो एक दिन और ऋत्विक् बहुतकालसे वेद और धर्मशास्त्रोक्त यज्ञ कराता हो तो तीन रात और थोडे कालसे कराता हो तो एक दिन अशौच जानना । यद्यपि कर्म करानेवालेका वाचक ऋत्विक्शब्द है, इससे कर्मके समयमें ही ऋत्विक्त्व है ऐसा शंबराचार्य कहते हैं; तथापि कर्ममें अशौचके निषेधसे उसके उत्तरमें ही निषेध जानना

ज्ञेयम् । गौडास्तु–"एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा ॥" इति जाबालोक्तेर्मातृबन्धुष्वेकाहमाहुः । शिष्ये स्वोपनीते त्र्यहः । 'शिष्यसतीर्थ्यब्रह्मचारिषु क्रमेण त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहः' इति माधवीये बौधायनोक्तेः । अन्यत्र तु मनुः–'मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च' इति । बन्धुत्रयम्–आत्मपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः, पितुः पितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः, । मातुः पितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राश्चेति विज्ञानेश्वरः । अत्र पक्षिणी । पितृष्वस्रादिकानामूढानां त्वेकाहः । 'तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन' इति पूर्वोक्तब्राह्मात् । यत्तु षडशीत्याम्–"एवं पित्रोर्भगिन्यौ ये ये पितामह्योस्तथा । ये मातामह्योश्चैव भगिन्यौ तत्प्रजाश्च याः ॥ मातुलाः स्वस्य पित्रोश्च पत्न्यश्चैषां प्रजाश्च याः । भ्रातरश्चेति सर्वेषु पक्षिणी स्वगृहे त्र्यहम् ॥ एवं श्वशुरजामातृदौहित्रविपदि स्मृतम् ॥" यच्च यमः–"जामातरि मृते शुद्धिस्त्रिरात्रेणोभयोः स्मृता । पक्षिणी शालकानां स्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥" इति निर्मूलत्वान्मिताक्षरादिविरोधाच्चोपेक्ष्यम् । मदनपारिजाते विष्णुः–'असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते एकरात्रम्' । अत्र हरदत्तः–'अन्तः शवे च' इत्यापस्तम्बसूत्रतः

चाहिये । गौड तो यह लिखते हैं कि माताके बन्धु, गुरु, मित्र, देशका राजा मृतक होनेमें समानोदकोंको तीन दिन और सगोत्रोंको एक दिन अशौच है, इस जाबालके वाक्यसे मातृबन्धुका अशौच एक दिनका लिखा है । उपनीतशिष्यके मृतक होनेमें तीन राते अशौच लगता है, कारण कि माधवीयमें बौधायनका कथन है कि शिष्य, सतीर्थ, सब्रह्मचारी इनके मृतक होनेमें क्रमसे त्रिरात्र, अहोरात्र और एक दिनका अशौच लगता है । औरके मरनेमें तो मनुने लिखा है कि मातुलके मरनेमें पक्षिणी तथा शिष्य, ऋत्विज, बांधवोंके मरनेमें एक रात होता है । बांधव तीन होते हैं कि अपनी फूफी, मौंसी और मामाके पुत्र और पिताकी फूफी, मौंसी तथा मामाके पुत्र और माताकी फूफी, मौसी और मामाके पुत्र, यह विज्ञानेश्वरका मत है । यहां फूफी आदि विवाही हो तो पक्षिणी और उसके बन्धुसमूहमें एक दिनका अशौच पूर्वोक्त ब्रह्मपुराणके वाक्यसे विदित होता है । जो षडशीतिमें कहा है कि जो पिता, पितामह और मातामहकी बहन है और अपने और माता पिताके माता और उनकी स्त्री संतान और उनके जो पिता इन सबके मृतक होनेमें पक्षिणी अशौच लगता है । इसी प्रकार श्वशुर और जामाता और दौहित्रके मरनेमें जानना चाहिये । जो यमने लिखा है कि जमाईके मरनेमें दोनोंकी शुद्धि तीन दिनमें और शालेके मरनेमें पक्षिणी अशौच लगता है, यह शातातपने लिखा है सो निर्मूल होनेसे और मिताक्षरा आदिके विरोधसे त्यागने योग्य है । मदनपारिजातमें विष्णुने लिखा है कि सपिंड अपने घरमें मृतक हो जाय तो एक दिन अशौच लगता है । यहां हरदत्तने तो "अन्तः शवे च"

शवे ग्रामे धनुःशतादर्वागन्नमभोज्यम् । दीपमुदकुम्भं वोपनिधाय तु भुञ्जीत । यदि समानवंशं न गृहमेवं सूतिकायामित्याह । प्रधानगृहमृतौ तु–"गृहे यस्य मृतः कश्चिदसपिण्डः कथंचन । तस्याप्यशौचं विज्ञेयं त्रिरात्रं नात्र संशयः ॥" इत्याङ्गिरसोक्तमिति माधवः । एतेन 'त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च ।' इति कौर्मे व्याख्यातम् । शुद्धितत्त्वे बृहन्मनुः–"श्वशूद्रपतिताश्चान्त्या मृताश्चेद्द्विजमन्दिरे । शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा ॥ दशरात्राच्छुनि मृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः । द्वाभ्यां तु पतिते गेहमन्त्ये मासचतुष्टयात् ॥ अत्यन्ते वर्जयेद्गेहमित्येवं मनुरब्रवीत् ।" अन्त्यो म्लेच्छः । अत्यन्तः श्वपाक इति वाचस्पतिः । तत्रैव यमः–'द्विजस्य मरणे वेश्म विशुद्ध्यति दिनत्रयात् ।' संवर्तः–"गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तस्थशवदूषिते । प्रोत्सृज्य मृन्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ गोमयेनोपलिप्याथ छागेन घ्रापयेद्बुधः । ब्राह्मणैर्मन्त्रपूतैश्च हिरण्यकुशवारिभिः ॥ सर्वमभ्युक्षयेद्वेश्म ततः शुद्ध्यत्यसंशयम् ॥" बृहद्विष्णुः–"ग्राममध्यगतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित् । ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामि-

---

इस आपस्तम्बके सूत्रमें लिखा है कि ग्राममें शव (मृतक) हो तो सौ धनुषके मध्यतक भोजन न करे, करे तो दीपक और जलका घडा रखकर करे, यदि घर अपने कुलका न हो तो सूतिकामें इसी प्रकार जानना । प्रधान घरमें मृतक हो तो यह आंगिरसका कहा मानना, यह माधव लिखते हैं कि जिसके घरमें कोई असपिंड किसी प्रकार मृतक हो जाय तो उसको भी तीन रात अशौच लगता है, इसमें संदेह नहीं । इसमें यह कूर्मका कथन भी व्याख्यात हुआ कि असपिंड अपने घर मृतक होजाय तो तीन दिनतक अशौच लगता है । शुद्धितत्त्वमें बृहन्मनुका वाक्य है कि कुत्ता, शूद्र, पतित, अंत्यज ये ब्राह्मणोंके मन्दिरमें मृतक हो जाँय तो वहां मनुके कथनके अनुसार, अशौच कहता हूँ कि कुत्तेके मरनेमें दश रात, शूद्रके मरनेमें एक महीने, पतितके मरनेमें दो महीने और चाण्डालके मरनेमें चार महीनेमें शुद्धि होती है, ऐसे मनुने लिखा है, और अन्त्यज मरा हो तो उस घरको सदाके निमित्त त्याग दे । अन्त्यनाम म्लेच्छका है, वाचस्पतिने कुत्तेके पकानेवालेको अत्यन्त कहा है । वहां ही यमका कथन है कि द्विजके मरनेपर तीन दिनमें घर पवित्र होता है । संवर्तमें लिखा है कि घरके मध्यमें मरे मृतकसे दूषित गृहकी शुद्धिको लिखता हूं–मृत्तिकाके पात्र और सिद्ध अन्नको फेंककर गोबरसे लीपकर बुद्धिमान् मनुष्य बकरीसे सुँघावे और ब्राह्मणके द्वारा मन्त्रसे पवित्र सुवर्ण और कुशाके जलसे सब घरको छिड़के तो वह घर शुद्ध हो जाता है; इसमें संदेह नहीं । बृहद्विष्णुने लिखा है कि ग्रामके मध्यमें जबतक मृतक रहे तबतक ग्रामको अशौच है, जब ग्रामसे बाहर निकल जाता है तब ग्राम शुद्ध होता है और गृहपशु आदिके मृतक होनेमें भी इसी प्रकारका जानना

यात् ॥" गृहे पश्वादौ मृतेऽप्येवम् । यत्तु माधवीये प्रचेतसा मातृष्वस्रादिषु त्रिरात्रमुक्तम् । "मातृष्वसामातुलयोः श्वश्रूश्वशुरयोर्गुरोः । मृते चर्त्विजि याज्ये च त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥" इति । गुरुराचार्यः । ऋत्विक्कुलागतः । तत्स्वगृहमृतौ ज्ञेयम् । श्वशुरयोरन्यत्र मृतावपि संनिधौ त्रिरात्रम् । असंनिधौ पक्षिणी । देशान्तरे एकरात्रम् । वक्ष्यमाणविष्णूक्तेरिति माधवगौडादयः । अन्यत्र तु मातृष्वस्रादिषु पक्षिणी । 'पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम् ।' इति वृद्धमनूक्तेः । यत्तु वृद्धमनुः–"भगिन्यां संस्कृतायां तु भ्रातर्यपि च संस्कृते । मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते ॥ शालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥" इति । तद्भ्रातृदौहित्रादौ देशान्तरे, शालकसुतजामात्रोः स्वदेशे ज्ञेयम् । शालके तु स्वदेशे एकाहः 'आचार्यपत्नीपुत्रोपाध्यायमातुलश्वशुरश्वश्रूश्वशुर्यसहाध्यायिशिष्येष्वेकरात्रम् ' इति माधवीये विष्णूक्तेः । हरदत्तीये दशश्लोक्यामप्येवम् । श्वशुर्यः शालकः । देशान्तरे स्नानम् । श्वशुरयोर्देशान्तरे एकाहः । जाबालिः–"एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । सर्वत्र मूल्याभावेऽपि क्रियाकर्तुर्दशाहतः ॥" "गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरेत् । प्रेताहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥"

जो माधवीयमें प्रचेताने माताकी भगिनी आदिके मृतक होनेमें तीन दिन लिखा है कि माताकी बहन, मामा, सास और श्वशुर, गुरु, ऋत्विज तथा यजमानके मरनेमें तीन दिनमें शुद्धि होती है, गुरुसे आचार्य और ऋत्विग् वह लेना जो कुलपरंपरासे चला आया हो, वह घरके मरनेमें जानना। सास और श्वशुर और कहीं मरे हों तो निकटमें तीन रात और दूरमें पक्षिणी और देशान्तरमें एक रात्रि अशौच मानना; कारण कि विष्णु आगे कहेंगे ऐसा माधव गौड़ आदि लिखते हैं। माताकी बहन आदि और स्थानमें मरी हों तो पक्षिणी अशौच लगता है; कारण कि वृद्धमनुने लिखा है कि पिताकी बहनके मरनेमें पक्षिणी रात्रिको अशौचमें बितावे।जो वृद्धमनुने यह लिखा है कि संस्कार की हुई बहन और संस्कृत भ्राता, मित्र, जमाई, धेवता, भानजा, शाला और उसका पुत्र ये और स्थानमें मर जायँ तो स्नान करनेसे तत्काल शुद्धि होती है, यह वहां जानना जहां भाई और धेवता देशान्तरमें हों और शालेका पुत्र और जमाई अपने देशमें हों और शाला अपने देशमें हो तो एक दिनका अशौच है; कारण कि माधवीयमें विष्णुने लिखा है कि आचार्यकी स्त्री और पुत्र, उपाध्याय, मामा, श्वशुर, शाला, सहपाठी, शिष्य इनके मरनेमें एक दिन अशौच लगता है और हरदत्तकी दशश्लोकीमें भी ऐसा ही लिखा है। देशान्तरमें मरे तो स्नानमात्र और सास, श्वशुर देशान्तरमें मरें तो एक दिन अशौच लगता है । जाबालिने कहा है कि समानोदकोंको तीन दिन और सगोत्रियोंको एक दिन अशौच लगता है, सब स्थानमें प्रमाण न हो तो भी क्रिया करनेवालेको दश दिनका अशौच लगता है; कारण कि मनुने लिखा है कि मरे हुए गुरुका यदि शिष्य पितृमेध (क्रिया) करे तो वह और

इति मनूक्तेः । शिष्य इत्युपलक्षणम् । "निरन्वये सपिण्डे तु मृते सति दयान्वितः । तदशौचं पुरा चीर्त्वा कुर्यात्तु पितृवत्क्रियाम् ॥" इति माधवीये ब्राह्मोक्तेः । दिवोदासीये–"सगोत्रो वासगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः । सोऽपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्ध्येच्च दशमेऽहनि ॥" यत्रैकविषये पक्षिण्येकाहादिपक्षद्वयमुक्तं तत्र सन्निधिविदेशमैत्र्यादिकृता व्यवस्था । त्रिंशच्छ्लोक्याम्–'वानप्रस्थे यतौ चोपरमति कुलजे षण्ढके वा प्लवः स्याद्योषिद्गोविप्रगुप्त्यै मृतवति तु दिनं युद्धविद्धे च सद्यः ।' अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् । युद्ध मूर्ध्नि मृतस्य स्नानम् । "उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च । सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥" इति मनूक्तेः । यज्ञोऽन्त्यकर्म । सर्वं तदैवेत्यर्थः । यस्तु भारते राजधर्मेषु–"अशोच्यो हि हतः शूरः स्वर्गलोके महीयते । न ह्यन्नमुदकं तस्य न स्नानं नाप्यशौचकम् ॥" इति श्राद्धादिनिषेधः स पुत्राद्यभावपरः । अतएव तत्र कर्णादीनां श्राद्धमुक्तम् । अन्ये तु दशपिण्डनिषेधमाहुर्यतिवत् । यत्तु पराशरः–'आहवेऽपि हतानां च एकरात्रमशौचकम् ।' इति तद्युद्धक्षते कालान्तरमृतेर्ज्ञेयम् । 'असन्निधौ स्नानम्' इति माधवः । शुद्धितत्त्वे अग्निपुराणे–"दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि हता म्लेच्छैश्च

दश दिनमें पवित्र होते हैं । शिष्यपद औरका भी उपलक्षण है । यदि अपने कुलसे भिन्नका सपिंड मृतक हो जाय तो दयावान् मनुष्य उसके अशौचको मानकर पिताके समान क्रिया करे, यह माधवीयमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखा है। दिवोदासीयमें कथन है कि जो सगोत्री वा असगोत्री अपने मित्रको अग्नि दे वह भी नवश्राद्ध करे और दशवें दिन शुद्ध होता है । जहां एक ही विषयमें पक्षिणी और एक दिन आदि अशौच लिखे हैं वहां सन्निधि और विदेशसे वा मैत्री आदिसे व्यवस्था जाननी उचित है । त्रिंशत्श्लोकीमें कहा है कि यदि वानप्रस्थ, संन्यासी और वंशका नपुंसक मृतक होजाय तो स्नानसे और स्त्री, गौ, ब्राह्मण इनकी रक्षाके निमित्त मरे तो एक दिन तथा युद्धसे मृतक हो तो उसी समय पवित्रता होती है । इसमें प्रमाण आकरमें स्पष्ट लिखा है । युद्ध स्थानमें मरनेमें स्नानमात्रसे शुद्धि होती है, कारण कि मनुने कहा है कि संग्राममें उठाये हुए शस्त्रसे जो क्षत्रियोंके धर्मसे मृतक होता है उसका अन्त्येष्टिकर्म और अशौच उसी कालमें हो जाता है, यह मर्यादा है और जो महाभारतके राजधर्ममें कहा है कि शूरवीरके मृतक होनेका शोच नहीं करना क्योंकि वह स्वर्गलोकमें गमन करता है, उसको अन्न और जलका दान स्नान और अशौच नहीं होते, यह श्राद्ध आदिका निषेध तब जानना जब उसके पुत्र न हों, इसी निमित्त भारतमें कर्ण आदिका श्राद्ध लिखा है, अन्य तो संन्यासीके तुल्य श्राद्धका निषेध कहते हैं। जो पराशरने लिखा है कि युद्धमें मरोंका एक रात अशौच लगता है वह भी तब है जब युद्धमें घाव लगकर कालान्तरमें मरा हो, निकटमें न हो तो स्नानसे शुद्ध होता है, यह माधव लिखते हैं । शुद्धितत्त्वमें अग्निपुराणका वाक्य

तस्करैः । ये स्वाम्यर्थे हता यान्ति राजन्स्वर्गं न संशयः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशेषतः ॥" यत्तु बृहस्पतिः-"डिम्बाहवे विद्युता च राज्ञां गोविप्रपालने । सद्यः शौचं मृतस्याहुस्त्र्यहं चान्ये महर्षयः ॥" इति तच्छस्त्रं विना पराङ्मुखहते च त्रिरात्रम् । राज्ञा वध्ये हते सद्यः. शौचमन्यत्र त्रिरात्रम् । तथैव व्याघ्रः-"क्षतेन म्रियते यस्तु तस्याशौचं भवेद्द्विधा । आसप्ताहात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परम् ॥ शस्त्राघाते त्र्यहादूर्ध्वं यदि कश्चित्प्रमीयते । अशौचं प्राकृतं तस्य सर्ववर्णेषु नित्यशः ॥" शस्त्राघाते क्षतं विना शवस्पर्शे तु हारीतः-'शवस्पृशो ग्रामं न प्रविशेयुरानक्षत्रदर्शनात् रात्रौ चेदादित्यस्य ।' यत्तु मनुः-"अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः । शवस्पृशो विशुद्ध्यन्ति त्र्यहात्तूदकदायिनः ॥" इति । अह्ना रात्र्या चेत्यहोरात्रमित्युक्तम् । त्रिभिस्त्रिरात्रैरिति नवरात्रमेवं दशरात्रमित्यर्थः । तत्तदन्नाशने तद्गृहवासेऽनापदि च ज्ञेयम् । अङ्गिराः-"आशौचं यस्य संसर्गादापतेद्गृहमेधिनः । क्रियास्तस्य न लुप्यन्ते गृह्याणां च न तद्भवेत् ॥" अथ निर्हाराद्याशौचम् । स्नेहेन सवर्णनिर्हारे तदन्नाशने

हैं कि दाढ और सींगवाले, म्लेच्छ और तस्करोंसे जो मृतक हुए हैं और जो स्वामीके निमित्त मरे हैं हे राजन्! ये सब वर्ण और विशेषकर क्षत्री ये सब स्वर्गमें गमन करते हैं । जो बृहस्पतिने लिखा है कि जो डिम्ब संग्राममें और बिजलीसे मृतक हुए हैं और जो राजा गौ, ब्राह्मणकी पालनाके निमित्त मरे हैं, उनका शीघ्र शौच होता है और कोई महर्षि तीन दिनका अशौच लिखते हैं और शस्त्रके विना पराङ्मुख होकर जो मृतक हुआ हो उसका तीन दिन अशौच होता है, राजाने जिसे मारा हो उसका तत्काल शौच है और अन्यत्र तीन दिन होता है । वहां ही व्याघ्रका कथन है कि घाव होनेसे जो मरे उसका दो प्रकार अशौच लगता है कि सात दिनतक तीन दिन और उसके आगे दश दिन होता है। घाव लगकर तीन दिन पीछे कोई मर जाय तो उसका सब वर्णोंमें सदा प्राकृत ही अशौच है। शस्त्रके लगनेसे घावसे रहित मृतकके स्पर्शमें तो हारीतका यह वाक्य है कि मृतकके स्पर्श करनेवाले नक्षत्रोंके दर्शनतक और रात्रि हो तो सूर्यके दर्शनतक ग्राममें न आवें । जो मनुने यह लिखा है कि शवके स्पर्श करनेवाले दशरातसे पवित्र होते हैं और जल देनेवाले तीन रातमें पवित्र होते हैं वह आपत्तिके विना उनके अन्नभक्षण और उनके घरमें निवास करनेपर जानना । कारण कि मनुने यह लिखा है कि उनके अन्नको न खाय और उनके घरमें न रहे तो एकदिनमें पवित्र होता है । अंगिराने लिखा है कि जिस गृहस्थको सम्बन्धसे अशौच लगे उसके कर्मोंका लोप नहीं होता और वह अशौच गृह्याग्नियोंको भी नहीं होता; ऐसा जानना । अब मृतकके श्मशानमें ले जानेका अशौच वर्णन करते हैं-प्रेमसे

तद्गृहवासे च दशाहः । तदन्नानशने तद्गृहवासे त्र्यहः । गृहावासेऽन्नाभक्षणे चैकाहः। भृतिग्रहणेन निर्हारे दाहे च तज्जात्याशौचम्। "यदि निर्हरति प्रेतं प्रलोभाक्रान्तमानसः । दशाहेन द्विजः शुद्ध्येद्द्वादशाहेन. भूमिपः ॥ मासार्धेन तु वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥" इति कौर्मोक्तेः। विजातीयनिर्हारे तु शवजातीयमाशौचम्। अत्र भृतिग्रहे द्विगुणम् । "अवरश्चेद्वरं वर्णं वरो वाप्यवरं यदि। वहेच्छवं तदाशौचं द्रव्यार्थे द्विगुणं भवेत् ॥ " इति व्याघ्रोक्तेः। कौर्ममेतदिति गौडाः । दाहेऽप्येवम्। यत्तु ब्राह्मे-"योऽसवर्णं तु मूल्येन नीत्वा चैव दहेन्नरः । आशौचं तु भवेत्तस्य प्रेतजातिसमं नृप ॥" इति, तदापदि ज्ञेयम्। सोदकनिर्हारे तु दशाह इति माधवः । अलंकरणे तु शङ्खः-"कृच्छ्रपादो सपिण्डस्य प्रेतालंकरणे कृते। अज्ञानादुपवासः स्यादशक्तौ स्नानमिष्यते ॥" धर्मार्थमनाथसवर्णहरणे क्रियाकरणे च द्विजस्यानन्तयज्ञफलम्। 'स्नानं प्राणायामोऽग्निस्पर्शश्च' इति माधवीये । अग्निदेऽप्येवम् । "प्रेतसंस्पर्शसंस्कारैर्ब्राह्मणो नैव दुष्यति । वोढा चैवाग्निदाता च सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥" इत्यपरार्के वृद्धपराशरोक्तेः।

अपने सवर्णको ले जाय और उसके अन्नको भोजन करे और उसके घरमें रहे तो दश दिनका अशौच लगता है; उसके अन्नको न खाय और उसके घरमें रहे तो तीन दिनका और घरमें न रहे और अन्न न खाय तो एक दिनका है। वेतन लेकर लेजाय और दाह करै तो जातिका अशौच लगता है; कारण कि कूर्मपुराणमें लिखा है कि यदि लोभमें मन करके प्रेतको ले जाय तो ब्राह्मण दश दिनमें, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पन्द्रह दिनमें, शूद्र एक मासमें शुद्ध होते हैं । विजातीयप्रेतको ले जाय तो शवकी जातिका अशौच लगता है और भृति लेकर करे तो दूना अशौच लगता है; कारण कि व्याघ्रने लिखा है कि छोटा वर्ण बड़े वर्णको और बड़ा वर्ण छोटे वर्णको द्रव्य लेकर लेजाय तो अशौच दूना लगता है, यह वाक्य कूर्मपुराणमें लिखा है, यह गौड कहते हैं, दाहमें भी इसी प्रकार जानना। जो ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि जो मनुष्य सवर्ण प्रेतको द्रव्यके निमित्त श्मशानमें ले जाकर दाह करे तो हे राजन्! उसको प्रेतजातिके तुल्य अशौच लगता है, वह आपत्कालमें जानना। समानोदकको ले जाय तो दश दिन अशौच लगता है, यह माधवका कथन है। शवके अलंकार करनेमें तो शंखने यह लिखा है कि प्रेतके अलंकार करनेमें चौथाई कृच्छ्र और अज्ञानसे उपवास और अशक्तिमें स्नान करना चाहिये। धर्मके निमित्त अनाथ और सवर्ण प्रेतके ले जाने और क्रिया करनेमें ब्राह्मणको अनन्त यज्ञका फल प्राप्त होता है और वह स्नान, प्राणायाम और अग्निका स्पर्श करे, यह माधवीयमें कहा है। जो अग्नि दे उसके निमित्त भी ऐसे ही कहा है; कारण कि अपरार्कमें वृद्धपराशरका वचन है कि प्रेतके छूने और संस्कारसे ब्राह्मण दूषित नहीं होता, ले जानेवाला और अग्निका देनेवाला स्नान करके शीघ्र शुद्ध

मातुलत्वादिसम्बन्धे त्रिरात्रम् । 'असंबन्धिद्विजान्दृह्वा दग्ध्वा च सद्यः शौचम् ' संबन्धे त्रिरात्रम्' इति पैठीनसिस्मृतेः । गौतममिताक्षरायां वृद्धात्रिः-"सूतकाद्विगुणं शावं शावाद्विगुणमार्तवम् । आर्तवाद्विगुणा सूतिस्ततोऽपि शवदाहकः ॥" अत्र पूर्वेणोत्तरानिवृत्तिरित्यर्थः । विष्णुः-"मृतं द्विजं न शूद्रेण हारयेन्न शूद्रं द्विजेन ।' देवलः-"ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकक्रियाम् । यदि कुर्याच्चरेत्कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च ॥" याज्ञवल्क्यः-'आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती ।' अनुगमने तु सपिण्डे न दोषः । "विहितं हि सपिण्डानां प्रेतनिर्हरणादिकम् । तेषां करोति यः कश्चित्तस्याधिक्यं न विद्यते ॥" इति देवलोक्तेः । 'दोषः स्यात्त्वसपिण्डस्य तत्रानाथाक्रियां विना ।' इति हारीतोक्तेश्च । समोत्कृष्टवर्णे तु माधवीये कण्वः-"अनुगम्य शवं बुद्धया स्नात्वा स्पृष्ट्वा हुताशनम् । सर्पिः प्राश्य पुनः स्नात्वा प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥" इति । 'हीनवर्णे तु क्षत्रियेऽहः, वैश्ये पक्षिणी, शूद्रे त्रिरात्रम्, क्षत्रियस्य वैश्येऽहः, शूद्रे पक्षिणी, वैश्यस्य शूद्रेऽहः।' इति विज्ञानेश्वरः । माधवस्तु-'विप्रस्य वैश्ये द्व्यहः, क्षत्रस्य शूद्रेऽप्येवम् । अन्यत्

होता है । मातुल आदिका सम्बन्ध हो तो तीन रात्रितक अशौच है; कारण कि पैठीनासिकी स्मृतिमें लिखा है कि असम्बन्धी द्विजको ले जानेपर और दाह करनेपर शीघ्र शुद्धि और सम्बधमें तीन रात्रिके अनन्तर शुद्धि होती है । गौतममिताक्षरामें वृद्धात्रिका कथन है कि सूतकसे दूना मृतकका और शवसे दूना ऋतुका और ऋतुसे दुगुना प्रसवका और प्रसवसे दुगुना मृतकके दाहका अशौच लगता है, इनमें प्रथम अशौचसे पिछलेकी निवृत्ति हो जाती है । विष्णुने यह लिखा है कि मरे द्विजको शूद्रसे और शूद्रको द्विजसे कभी न लिवा ले जाय । देवलने लिखा है कि ब्रह्मचारीको प्रेतकी दाहक्रिया आदि न करनी चाहिये, यदि करे तो कृच्छ्र और फिर संस्कार करे । याज्ञवल्क्यने कहा है कि आचार्य, पिता, उपाध्यायको ले जाय तो ब्रह्मचारीको दोष नहीं लगता । सपिंडके संग जानेमें दोष नहीं है; कारण कि देवलने कहा है कि सपिंडोंको प्रेत ले जाना चाहिये, जो कोई उसको करता है उससे अधिक पुण्यात्मा कोई नहीं है । हारीतने कहा है कि अनाथकी क्रियाको छोड़कर असपिंडके ले जानेमें दोष होता है । समान और उत्कृष्ट वर्णके ले जानेमें तो माधवीयमें कण्वका वाक्य है कि जानकर प्रेतके संग जाकर स्नान, अग्निका स्पर्श, घृतका भक्षण और फिर स्नान और प्राणायाम करके पवित्र होता है । हीनवर्णोंमें तो क्षत्रियके संग जाय तो एक दिन, वैश्यके संग जाय तो पक्षिणी और शूद्रके संग गमन करे तो तीन दिन अशौच लगता है, क्षत्रियको वैश्यके संग जानेमें एक दिन, शूद्रके संग जानेमें पक्षिणी, वैश्यको शूद्रके संग जानेमें एक दिन अशौच लगता है । यह विज्ञानेश्वर लिखते हैं । माधवका तो यह कथन है कि ब्राह्मणको वैश्यके संग जानेमें दो दिन और इसी प्रकार क्षत्रियको शूद्रके संग जानेमें

प्राग्वत्।' स्नानाग्निस्पर्शघृताशनानि सर्वत्रेत्याह। हीनवर्णस्य दाहौर्ध्वदैहिककरणे तु ब्राह्मे–"ब्राह्मणो हीनवर्णस्य न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम्। कामाल्लोभात्तथा मोहात्कृत्वा तज्ज्ञातितां व्रजेत्॥" मनुः–"व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च। अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति॥" परेषां सर्ववर्णानां हीनेषु तद्द्वैगुण्यत्रैगुण्यचातुर्गुण्याद्यूह्यम्। अथ रोदननिर्णयः। रोदने समोत्तमवर्णयोः संचयनात्पूर्वं सचैलस्नानमूर्ध्वमाचमनम्। हीनवर्णेषु तु संचयात्प्राक् सचैलमूर्ध्वं स्नानमात्रम्। विप्रस्य क्षत्रवैश्यविषये तु ब्राह्मे–"अस्थिसंचयने विप्रो रौति चेत्क्षत्रवैश्ययोः। तदा स्नातः सचैलस्तु द्वितीयेऽहनि शुद्ध्यति॥ कृते तु संचये विप्रः स्नानेनैव शुचिर्भवेत्॥" क्षत्रस्य वैश्येऽप्येवम्। शूद्रे तु संचयात्प्राक् विप्रस्य त्रिरात्रम्। क्षत्रवैश्ययोर्द्विरात्रम्। ऊर्ध्वं तु द्विजानामेकाहः। शूद्रस्य शूद्रे स्पर्शं विना संचयात्पूर्वमेकाहः। ऊर्ध्वं सज्योतिरिति माधवीये ज्ञेयम्। शुद्धितत्त्वे पारस्करस्तु–"अस्थिसंचयनादूर्ध्वं मासं यावद्द्विजातयः। दिवसेनैव शुध्यन्ति वाससां क्षालनेन च॥ सजातेर्दिवसेनैव ऽप्यहा-

---

दो दिन अशौच लगता है और पूर्वके समान जानना। स्नान, अग्निका स्पर्श और घृतका भक्षण सर्वत्र तुल्य है। हीनवर्णके दाह और और्ध्वदैहिक करनेमें तो ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि ब्राह्मण हीनवर्णका और्ध्वदैहिक न करे, यदि काम, मोह, लोभसे करे तो उसी जातिको प्राप्त हो जाता है। मनुने कहा है कि, जिनका शास्त्रोक्त समयपर संस्कार न हुआ हो उन नीचोंके यहां यज्ञ कराकर और सब वर्णोंके अन्त्यकर्मको कराकर तथा अपने सवर्णकी हिंसा वा दुःख दे करके तीन कृच्छ्र व्रतको करके पापसे छूटता है। हीनवर्णके यहां पूर्वोक्त कर्म करे तो दुगुना, तिगुना, चौगुना पाप जानना। अब समान और उत्तम वर्णके यहां रोनेका प्रायश्चित्त लिखते हैं–अस्थिसञ्चयनसे पूर्व सचैल स्नान और पीछे रोवे तो आचमन करे, हीनवर्णके यहां अस्थिसञ्चयनसे प्रथम सचैल स्नान और पीछे स्नानमात्र करे। ब्राह्मणको क्षत्रिय वैश्यके यहां रोनेमें तो ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, यदि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके यहां अस्थिसञ्चयनके दिन रुदन करे तो सचैल स्नान करे, दूसरे दिन और अस्थिसञ्चयनसे पश्चात् रुदन करे तो स्नानसे ही शुद्ध होता है। वैश्यके यहां क्षत्रियको भी ऐसे ही जानना। शूद्रके यहां ब्राह्मण अस्थिसञ्चयनसे प्रथम रुदन करे तो तीन दिन, क्षत्रिय और वैश्यके यहां दो दिन और उससे पीछे रुदन करनेमें द्विजोंको एक दिनका अशौच लगता है। शूद्र शूद्रके यहां रुदन करे और स्पर्श न करे तो एक दिनका अस्थिसञ्चयनसे उपरान्त सूर्यास्ततकका अशौच लगता है, यह माधवीयमें लिखा है। शुद्धितत्त्वमें पारस्करने तो यह लिखा है कि अस्थिसंचयनके उपरान्त मासपर्यन्तके रोनेमें द्विजाति एक दिनमें और

त्क्षत्रियवैश्ययोः ॥" इत्युक्तम् । सपिण्डानां रोदननिर्हारादावदोष इत्युक्तं प्राक् । विज्ञानेश्वरस्तु-"मृतस्य बान्धवैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनम् । वर्जयेत्तदहोरात्रं दानश्राद्धादिकर्म च ॥" इति पारस्करोक्तेः सर्वत्रैकरात्रमाह । अथाशौचान्नभक्षणे निर्णयः । अशौचान्नभक्षणे विष्णुः-'ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचं यावत्तेषामाशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तम्' इति । अज्ञाने त्वङ्गिराः- "अन्तर्दशाहे भुक्त्वान्नं सूतके मृतकेऽपि वा । अस्याशौचं भवेत्तावद्यावदन्नं व्रजत्यधः ॥" प्रायश्चित्तं त्वमत्या विप्रस्य वर्णक्रमेणैकाहत्र्यहपञ्चाहसप्ताहोपवासाः, दश विंशतिः षष्टिः शतं च प्राणायामाः, पञ्चगव्याशनं च । अभ्यासे द्विगुणम् । आपदि तु प्राणायामशतं पंचशतमष्टशतमष्टसहस्रं गायत्रीजपश्च । मत्यापदि तु सवर्णाशौचे त्रिरघमर्षणं गायत्र्यष्टसहस्रं च । क्षत्रियाशौचे उपवासः । तच्च वैश्याशौचे त्रिरात्रोपवासश्च । शूद्राशौचे कृच्छ्रः । क्षत्रवैश्ययोः पञ्चशतमष्टशतं गायत्रीजपः । उत्तमेषु शूद्रस्य सर्वत्र स्नानम् । मत्यानापदि विप्रस्य वर्णेषु सांतपनकृच्छ्रमहासांतपनचान्द्राणि । अभ्यासे तु मासिकद्वैमासिकत्रैमासिकषाण्मासिकानीत्यादि

वस्त्रोंके धोनेसे शुद्ध होते हैं और सजातीयके यहां एक दिनमें और क्षत्रिय और वैश्यके यहां रोनेसे तीन दिनमें पवित्रता होती है, सपिंडोंके यहां रोने और उनके लेजानेमें दोष नहीं, यह पहले कह आये हैं । विज्ञानेश्वरने तो सब जगह एक रात लिखा है, कारण कि यह पारस्करने लिखा है कि बांधवोंके संग प्रेतका शोक करके उस रात दिनमें श्राद्ध और दान आदि कर्मको त्याग दे । अब अशौचके अन्न खानेमें दोष लिखते हैं-विष्णुने कहा है कि ब्राह्मण आदिके अशौचमें जो एकबार अन्न भोजन करता है उसको तबतक अशौच लगता है, जबतक उनको होता है और अशौचके उपरान्त प्रायश्चित्त लगता है । अज्ञानसे भोजन करे तो अंगिराने कहा है कि सूतक वा मृतकमें दश दिनके भीतर खानेसे इतने कालतक उसको अशौच लगता है जबतक वह अन्न बाहर न निकल जाय और विना जाने भोजन करनेका प्रायश्चित्त तो ब्राह्मणादि वर्णोंके क्रमसे एक, तीन, पांच, सात दिनतक उपवास करना तथा दश, वीस, साठ, सौ प्राणायाम और पंचगव्यका भक्षण करे और वारंवार करनेमें दूना प्रायश्चित्त है । आर आपत्कालमें तो सौ प्राणायाम, पांच सौ, आठ सौ और आठ हजार गायत्रीका जप कहा है । जानकर आपत्तिमें सवर्णके अशौचमें भोजन करे तो तीन वार अघमर्षण और आठ हजार गायत्रीका जप करे । और क्षत्रियके अशौचमें भोजन करे तो उपवास भी कहा है और वैश्यके अशौचमें तीन रातका व्रत है, शूद्रके अशौचमें कृच्छ्रव्रत है, क्षत्रिय और वैश्यके अशौचमें खाय तो पांच सौ वा आठ सौ गायत्रीका जप करे और उत्तम वर्णोंके यहां शूद्रको सर्वत्र स्नानमात्रका प्रायश्चित्त कहा है । जानकर और आपत्तिके विना ब्राह्मण तीनों वर्णोंके अशौचमें भोजन करे तो सांतपन, कृच्छ्र, महासांतपन और चान्द्रायण करे और वारंवार भोजन करनेमें तो एक महीना, दो महीने, तीन महीने,

माधवीयादौ ज्ञेयम् । अथ दासस्य स्वदास्युत्पन्नस्य सपिण्डमृतौ स्नानमात्रेण स्वामिकार्ये स्पृश्यत्वम् । भक्तदासस्य त्र्यहोर्ध्वम् । 'सद्यः स्पृश्यो गर्भदासो भक्तदासस्त्र्यहाच्छुचिः ॥' इति स्मृत्यन्तरोक्तेः । "मूल्यकर्मकराः शूद्रदासीदासास्तथैव च । स्नाने शरीरसंस्कारे गृहकर्मण्यदूषिताः ॥" इति शातातपोक्तेश्च । एतच्चानन्यसाध्ये तत्कार्यमात्रे । अन्यत्र मासाद्याशौचमस्त्येव । एवं दास्यामपि । सूतिकायास्तस्या अस्पृश्यत्वमपि मासमात्रम् । "दासी दासश्च सर्वो वै यस्य वर्णस्य यो भवेत् । तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्या मासस्तु सूतकम् ॥" इत्यङ्गिरसोक्तेः । षडशीतावपि-"स्वामिशौचेन दासाद्याः स्पृश्या मासस्तु कर्मसु । योग्याः स्युर्मासतो दासी सूतौ चेत्स्पृश्यतामियात् ॥" दत्तदासादीनां स्वसापिण्डमरणादौ स्वाम्याशौचसमसंख्यदिनोर्ध्वं सत्यपि मासाद्याशौचे स्वामिकार्ये स्पृश्यतेति हरदत्तः । "दासोन्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः । स्वामितुल्येन शौचेन शुध्यन्ति मृतसूतके ॥" इति बृहस्पतिस्मृतेः । दासश्चात्र-"गृहजातस्तथा क्रीतो लुब्धो दायादुपागतः । अन्नकाल-

---

छः महीने व्रत आदि माधवीय आदिमें जानने । अब अपनी दासीमें उत्पन्न दासका अशौच लिखते हैं-अपना सपिंड मृतक हो जाय तो स्नान करनेसे स्वामीके कार्यमें छूनेके योग्य होता है और भोजन करनेवाले दासका तीन दिन अधिक अशौच होता है; कारण कि अन्य स्मृतिका कथन है कि गर्भदास शीघ्र स्पर्शसे योग्य है और भक्तदास तीन दिनमें पवित्र होता है । और शातातपने भी लिखा है कि मोलसे कार्य करनेवाले शूद्र और जो दासीके दास हैं, वे शरीरका संस्कार स्नान करनेसे घरके काम करनेमें दूषित नहीं हैं, यह भी उस कार्यमें है जिसको दूसरा न कर सके, औरमें दो महीने आदिका अशौच है और इसी प्रकार दासीमें भी समझना चाहिये । सूतिका दासीको तो महीनेतक स्पर्श न करे; कारण कि अंगिरसने कहा है कि दासी वा दास जो जिस वर्णका होता है उसको उसी वर्णका अशौच लगता है, दासीको सूतक तो महीनेभरका लगता है । षडशीतिमें भी कहा है कि दास आदि स्वामीकी शुद्धिसे छूनेके योग्य होते हैं और दासी प्रसूता हो तो एक महीनेमें स्पर्शके योग्य होती है । जो दास दत्त हैं उनके अपने सपिंडके मरण आदिमें स्वामीका अशौच लगता है और तुल्य संख्याके दिनोंके पीछे महीने आदिके अशौच होनेपर भी स्वामीके कार्यमें स्पर्श करनेकी योग्यता होती है, यह हरदत्तने कहा है, कारण कि बृहस्पतिकी स्मृति है कि दास, अन्तेवासी (शिष्य), भृत्य और एकत्र रहनेवाले शिष्य ये मरणसूतकमें स्वामीके अशौचसे पवित्र होते हैं । यहां दाससे इन पन्द्रह भांतिके दासोंमें गर्भदास और भक्तदाससे पृथक् लेना कि घरमें उत्पन्न हुआ, मोल लिया, मिल गया, दायके क्रमसे आया, अन्नके कालमें प्राप्त हुआ, स्वामीका बुलाया,

मृतस्तद्ददाहितः स्वामिना च यः ॥ मोक्षितो महतश्चर्णाद्युद्धप्राप्तः पणे जितः । तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृतः ॥ भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव वडवाहृतः । विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पञ्चदश स्मृताः ॥" इति नारदोक्तेषु गर्भभक्तदासौ विना ज्ञेयाः । वडवा दासी तया हृतस्तामुद्वाह्य दासो जात इत्यर्थः । अन्तेवास्यपि तेनैवोक्तः–"स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं बान्धवानामनुज्ञया । आचार्यस्य वसेदन्ते कृत्वा कालं सुनिश्चितम् ॥ आचार्यः शिक्षयेदेनं स्वगृहे दत्तभोजनम् ॥" इति । शिष्यस्तत्तुल्यो विद्यार्थी । दासादेः स्वामितत्सपिण्डमरणे तु विष्णुः–'पत्नीनां दासानामानुलोम्येन स्वामितुल्यमाशौचम् मृते स्वामिन्यात्मीयम्' इति प्रातिलोमदासानामाशौचाभावः । 'वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । अथ रात्रौ जनने मरणे निर्णयः । रात्रौ जनने मरणे वा रात्रिं त्रिभागां कृत्वाऽऽद्यभागद्वये चेत्पूर्वं दिनम्, अन्त्ये तूत्तरमिति मिताक्षरायाम् । यत्तु प्रागर्धरात्रात् प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वं दिनमित्युक्तं, तत्र देशाचारतो व्यवस्था । सर्वं चाशौचमाहिताग्नेर्दाहं तद्भिन्नस्य मरणमारभ्य ज्ञेयम् । " अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विन्द्याद्विदेशस्थे मृते सति ॥" इति पैठीन-

---

बड़े ऋणसे छुटाया, युद्धसे प्राप्त और दांवसे जीता हुआ, मैं तुम्हारा हूँ यह कहकर आया, संन्यासका त्याग किया हुआ और कृत (कृत्रिम), भक्तदास, वड़वाहृत (विवाही हुई दासीमें उत्पन्न), अपना बेचनेवाला ये पन्द्रह जन शास्त्रमें दास लिखे हैं । अन्तेवासी भी उसने ही लिखा कि बान्धवोंकी आज्ञासे शिल्प सीखनेकी इच्छा करता हुआ जो आचार्यके निकट कालका नियम करके रहे और आचार्य उसको अपने घरसे भोजन देकर उपदेश दे उसे अन्तेवासी कहा है और शिष्य भी विद्याकी इच्छावाला उसके समान होता है । स्वामी और उसके सपिंडोंके मृतक होनेमें दासादिकोंके निमित्त विष्णुने यह लिखा है कि अनुलोम पत्नी और दासोंको स्वामीका अशौच लगता है और स्वामीके मरनेमें अपनी जातिका अशौच लगता है, और प्रतिलोम दासोंको तो अशौच नहीं लगता है; कारण कि याज्ञवल्क्यने कहा है कि वर्ण अनुलोमसे दास होते हैं प्रतिलोमसे नहीं होते । इसके उपरांत जन्म वा मृत्यु हो तो निर्णय लिखते हैं कि रात्रिके तीन भाग करके पहले दो भागमें हो तो पूर्वदिन और पिछले भागमें हो तो अगले दिन अशौच लगता है, यह मिताक्षरामें कहा है । और जो अर्द्धरात्र और सूर्योदयसे प्रथम पहिला दिन लिखा है वहां देशाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये । संपूर्ण अशौच अग्निहोत्रीको दाहसे और दूसरोंको मरणसे जानना चाहिये; कारण कि पैठीनासिकी स्मृतिमे लिखा है कि द्विजातियोंमें अग्निहोत्रीसे पृथक्को मृत्युसे और अग्निहोत्रीको दाहसे अशौच लगता है, यदि वह विदेशमें मृतक हो तो, ऐसा जानना । और वसिष्ठस्मृतिमें यह विशेष लिखा है कि

नसिस्मृतेः । आहिताग्निः साग्निः । 'आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियेत पुनः संस्कारं कृत्वा शववदाशौचम्' इति वसिष्ठे विशेषोक्तेः । 'दाहादेव तु कर्तव्यं यस्य वैतानिको विधिः ।' इति ब्राह्माच्च । यत्तु धूर्तस्वामिना रामाण्डारेण चोक्तम्- 'आहिताग्नेरपि मरणाद्येव दशरात्रं दशाहं शावमाशौचम्' इति मरणनिमित्तत्वात्तस्य । यत्तु दाहादेव तस्याशौचमुक्तं, तत्संस्कारनिमित्ताशौचं पृथगेव । तेन गृह्याग्नेः संस्काराङ्गं त्रिरात्रम् । श्रौताग्नेस्तु दशरात्रम् । मरणनिमित्तं तूभयोर्दशाहम् । दाहात्प्रागपीति । तद्वचनविरोधात्पूर्वस्यैवोत्कर्षान्मूलकल्पनालाघवाच्च चिन्त्यम् । अथातिक्रान्ताशौचानिर्णयः । तत्राशौचमध्ये जननादौ ज्ञाते तच्छेषेण शुद्धिः । " विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ " इति मनूक्तेः । अत्र केचिदेतत्पुत्रातिरिक्तविषयम् । तेषां त्वाशौचमध्ये श्रवणेऽपि तदाद्येव दशाहादि । " पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥ " इत्यस्य सर्वापवादत्वादित्याहुस्तन्न । ज्ञातमरणस्य निमित्तत्वात्, ' अनग्निमत उत्क्रान्तेः ' इत्यादिविरोधाच्च । स्मृत्यर्थसारेऽपि-'जनने मरणे वा प्रथमदिनादूर्ध्वं ज्ञाते पुत्रादीनां शेषेणैव शुद्धिः ।'

यदि आहिताग्नि परदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो फिर संस्कार करके शव (मृतक)के तुल्य अशौच माने और ब्रह्मपुराणका वाक्य भी है कि जो अग्निहोत्री है उसका अशौच दाहसे जानना । और जो धूर्तस्वामी और रामांडारने लिखा है कि आहिताग्निको भी मरणसे ही दश रात अशौच लगता है; कारण कि शवका अशौच दश दिन होता है, उसका निमित्त मृत्यु है और जो उसको दाहसे ही अशौच लिखा है वह संस्कारके निमित्त अशौच पृथक् ही है, इससे गृह्याग्निको संस्कारका अंग अशौच तीन दिन और श्रौताग्निको दश रात्रितक होता है और मृत्युनिमित्तका अशौच तो दोनोंको दाहसे प्रथम भी दश दिनका लगता है, ये सब वाक्यके ही विरोधसे और पूर्वकी उत्कृष्टतासे और मूलकल्पनाकी लघुतासे करने योग्य हैं । अब अतिक्रांत अशौचको वर्णन करते हैं-यदि अशौचके बीचमें जन्मादि हो जाय तो पूर्व अशौचके शेषसे शुद्धि होती है; कारण कि मनुने लिखा है कि विदेशमें मृतक हुएको जो दश दिनके भीतर सुने तो जितने दिन दशमें शेष हों उनसे ही पवित्र होता है । यहां कोई लिखते हैं कि यह पुत्र आदिसे भिन्नके विषयमें है, उनके मतमें अशौचके बीचमें सुननेपर भी सुननेके दिनसे ही दश दिन आदिका अशौच लगता है; कारण कि यह वाक्य सबका अपवाद है कि पिता माता मृतक हो जायँ तो दूरस्थित भी पुत्र जिस दिन सुने उस दिनसे लेकर दश दिन सूतकी होता है, सो यथार्थ नहीं; कारण कि ज्ञातमें मृत्यु निमित्त है और अग्निहोत्रीसे पृथक् मरणसे अशौच लगता है, इत्यादि वाक्योंका विरोध आता है । स्मृत्यर्थसारमें भी लिखा है कि जन्म वा मरणके पहले दिनसे पीछे ज्ञान हो तो पुत्र आदिकी पवित्रता

इति । षडशीतावपरार्के चैवम् । दशाहादूर्ध्वं ज्ञाते तु वृद्धवसिष्ठः–"मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासे पक्षिणी तथा । अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ॥" जनने त्वतिक्रान्ताशौचं नास्त्येव । 'नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्वपि ।' इति देवलोक्तेः । पितुः स्नानं तत्रापि भवत्येव । "निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च । सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥" इति मनूक्तेः । तच्चातिक्रान्ताशौचं दशाहादिजात्याशौचविषयम् । न त्वनुपनीतादिनिमित्तत्रिरात्रादौ–'उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवातिकालजम् ।' इति व्याघ्रोक्तेः । 'निर्दशं ज्ञातिमरणम्' 'अतिक्रान्ते दशाहे तु' इति मनूक्तेश्च । माधवीये देवलस्तु–"आ त्रिपक्षात्त्रिरात्रं स्यात्षण्मासात्पक्षिणी ततः । परमेकाहमावर्षादूर्ध्वं स्नातो विशुध्यति ॥" इत्याह । तत्रापदनापद्विषयत्वेन व्यवस्था । इद चैकदेशे देशान्तरे तु स्नानमात्रम् । "देशान्तरमृतं श्रुत्वा क्लीबे वैखानसे यतौ । मृते स्नानेन शुद्ध्यन्ति गर्भस्रावे च गोत्रिणः ॥" इति पराशरोक्तेरिति विज्ञानेश्वरः । स्नानं वत्सरान्ते । "अर्वाक्त्रिपक्षात्त्रिनिशषण्मासाच्च दिवानिशम् । अहः संवत्सराद-

---

शेष दिनसे ही होती है, षडशीति और अपरार्कमें भी ऐसे ही लिखा है। दशदिनसे उपरांत ज्ञात हो तो वृद्धवसिष्ठने यह लिखा है कि तीन महीनेतक सुननेमें त्रिरात्र, छः महीनेतक पक्षिणी, नौ महीनेसे पूर्वतक एक दिन अशौच लगता है और इसके पीछे स्नानसे पवित्रता होती है । जन्ममें तो अतिक्रांत अशौच लगता ही नहीं; कारण कि देवलने लिखा है कि प्रसवके अशौचमें दिनोंके बीतनेपर अशुद्धि नहीं होती । पिताका स्नान तो वहां भी होता है, कारण कि मनुने लिखा है कि दश दिनके उपरान्त ज्ञातिका मरण और पुत्रजन्मको सुनकर सवस्त्र स्नान करके उसी क्षणमें मनुष्य पवित्र होता है, वह अतिक्रांताशौच दशाह आदि जातिके अशौचविषयमें है । और अनुपनीत आदिके निमित्त त्रिरात्र आदि अशौचमें नहीं है । कारण कि व्याघ्रका कथन है कि यज्ञोपवीतीको तो अतिकालका अशौच पूर्वोक्तसे विषम लगता है । और मनुने भी दश दिनके पीछे ज्ञातिमरण और दश दिनके उपरान्त सुने तो स्नानमात्रसे शुद्धि कही है । माधवीयमें देवलका यह कथन है कि तीन पखवारेसे सुने तो त्रिरात्र, छः महीनेतक पक्षिणी, फिर वर्षतक एक दिन, इसके अनन्तर स्नानसे पवित्रता होती है । वहां विपत्ति और विना विपत्तिके विषयसे व्यवस्था जाननी चाहिये । यह भी एक देशमें है, देशान्तरमें तो स्नानमात्र कहा है, कारण कि यह पराशरने लिखा है कि देशान्तरमें मृतकको सुनकर और नपुंसक, वानप्रस्थ संन्यासीका मरण और गर्भके स्रावमें गोत्री स्नानसे पवित्र होते हैं, यह विज्ञानेश्वरका मत है। वर्षके पीछे स्नानसे शुद्धि है। कारण कि विष्णुका वाक्य है कि तीन पखवारेसे पहले तीन रात, छः महीने तक दिनरात, वर्षसे पहले देशा-

वाग्देशान्तरमृतेष्वपि ॥" इति विष्णूक्तेरिति माधवः । इदं सपिण्डानां देशान्तरे स्नानं सोदकानामिति युक्तम् । लक्षणं त्वाह बृहस्पतिः–"महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः । वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते ॥ देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतम् । चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च ॥" इति । एतत्सर्वं मातापितृभिन्नविषयम् । 'तयोस्तु पितरौ चेत्' इति पूर्वपैठीनसिवाक्यात्सदा पूर्णमेव दशाहादि । स्मृत्यर्थसारेऽपि–'मातापितृमरणे दूरदेशेऽपि संवत्सरोर्ध्वमपि पुत्रो दशाहादिकं पूर्णमाशौचं कुर्यात् । स्त्रीपुंसयोः परस्परं सपत्नीषु चैवम्' इति । शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु–"ऊर्ध्वं संवत्सरादाद्याद्बन्धुश्चेच्छ्रूयते मृतः । भवेदेकाहमेवात्र तच्च संन्यासिनां न तु ॥" इति देवलोक्तेः । पित्रोरब्दमध्ये त्रिरात्रमूर्ध्वमेकाहः । बन्धुर्माता पिता भर्ता च । पूर्वोक्तदशाहस्तु कलिङ्गादिदेशपर इत्याहुः । ते बन्धुपदस्य पुत्रादिपरत्वे मानाभावादुपेक्ष्याः । सापत्नमातुस्तु दक्षः–"पितृपत्न्यामपेतायां मातृवर्जं द्विजोत्तम । संवत्सरे व्यतीतेऽपि त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥" 'हीनवर्णमातृषु सपत्नीषु चैवम्' इति

न्तरमें मृतक हुओंका एक दिन अशौच होता है, यह माधवका मत है । यह सपिंडोंके निमित्त है, देशान्तरमें समानोदकोंको तो स्नानमात्र है । उसका लक्षण बृहस्पतिने लिखा है कि जहाँ महानदीका अन्तर हो, वा पर्वत बीचमें हो और वाणीका भेद हो उसे देशान्तर कहते हैं । कोई साठ योजन लम्बा, और कोई चालीस योजन और कोई तीस योजनका देशान्तर कहते हैं । यह सब माता पितासे भिन्नके विषयमें जानना और उनके माता पिता मृतक हुए हों तो इस पूर्वोक्त पैठीनसिस्मृतिके वाक्यसे पुत्रोंको सदा दशाह आदि अशौच लगता है । स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि मातापिताके मरणमें दूर देश और वर्षके पीछे भी पुत्र दशाह आदि पूर्ण अशौच करे, स्त्री पुरुष और परस्पर सवर्ण और उत्तम वर्णकी पत्नियोंमें भी ऐसे ही है । शुद्धितत्त्व आदि गौड़ तो यह लिखते हैं कि प्रथम वर्षके उपरान्त यदि मृतक हुआ बन्धु श्रवण किया जाय तो एक दिन अशौच लगता है और वह संन्यासियोंको नहीं लगता, इस देवलके वाक्यसे पिता माताका अशौच वर्षके बीचमें त्रिरात्र और पीछे एक दिन लगता है और बन्धुपदसे पिता, माता, भर्ताको जानना, पूर्वोक्त दश दिनका अशौच तो कलिंग आदि देशमें होता है । वे इस निमित्त उपेक्षा करने योग्य हैं कि बन्धुपदको पिता आदिके बोधक होनेमें प्रमाण नहीं है । सपत्नीके अशौचमें तो दक्षका वाक्य है कि हे द्विजश्रेष्ठ ! माताको छोड़कर यदि और पिताकी पत्नी मरे तो वर्षदिनके उपरान्त तीन रात्रिमें शुद्धि होती है, मातासे भिन्न हीनवर्णकी सपत्नियोंमें भी ऐसे ही चाहिये, यह स्मृत्यर्थसारमें

स्मृत्यर्थसारे। केचित्—'पितुः पत्न्यां प्रमीतायामौरसे तनये तथा।' इति ब्राह्मोक्तेरौरसेऽपीदमाहुः। षडशीतावप्येवम्। एतत्सर्ववर्णतुल्यम्। 'तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च।' इति व्याघ्रोक्तेः। अथाशौचसंपाते उच्यते। तत्र शावे शावं, सूतके सूतकम्। शावे सूतकं सूतके शावं वा। तत्राप्युत्तरं कालतः पूर्वेण समं न्यूनमधिकं चेति द्वादश भेदाः। यदैकदिने समं न्यूनमधिकं वाशौचद्वयं तत्र तंत्रेणान्यसिद्धिः। द्वयोरेककालत्वात्। यदा तु द्वितीयादिदिनेषूत्तरं सजातीयं शावे जननं वा समकालं न्यूनकालं वा परं स्यात्तदा षट्सु पक्षेषु पूर्वशेषेण शुद्धिः। 'अन्तराजन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति।' इति याज्ञवल्क्योक्तेः। अन्तरा ज्ञाते इत्यर्थः। ज्ञातस्यैव जननादेर्निमित्तत्वात्। पूर्वाशौचोत्तरं तन्मध्योत्पन्ने जाते तूत्तरमेव कार्यम्। शुद्धितत्त्वेऽप्युक्तम्—'पूर्वाशौचान्तरुत्पन्नं समानं लघु वा निमित्तं तत्कालादुपरिश्रुतं स्वाशौचहेतुरेव।' अज्ञातं तु न। 'अविज्ञाते न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथंचन।' इत्यस्याशौचसांकर्येऽपि प्रवृत्तेः। तेनाज्ञानाद्वृषोत्सर्गादौ कृते पश्चाज्ज्ञातेऽपि नावृत्तिरिति। माधवीये यमोऽपि—"जनने जननं चेत्स्यान्मरणे मरणं तथा। पूर्वशेषेण शुद्धिः स्यादुत्तराशौचवर्जनम्॥"

लिखा है। कोई तो कहते हैं कि पिताकी पत्नी मृतक हो जाय तो औरसपुत्रको ऐसे ही अशौच लगता है, इस ब्राह्मके वाक्यसे और सपुत्रको भी त्रिरात्रका अशौच लिखते हैं, षडशीतिमें भी ऐसे ही कहा है। यह सब वर्णोंमें बराबर है; कारण कि व्याघ्रने कहा है कि अतिक्रान्ताशौच सब वर्णोंको समान हुआ करते हैं। अब अशौचका संपात वर्णन करते हैं—मृत्युमें मृत्यु, सूतकमें सूतक, मरणमें सूतक, सूतकमें मरण और उनमें भी पीछे तक पूर्वके समान न्यून वा अधिक ये बारह १२ प्रकारके संपात अशौच कहाते हैं। यदि तुल्य, न्यून वा अधिक दो अशौच एक दिन हो जायँ तो वहाँ तन्त्रसे दूसरेकी भी सिद्धि होती है, क्योंकि दोनों एक कालमें प्राप्त हुए हैं और जब द्वितीय आदि दिनोंमें दूसरा अशौच सजातीय हो जाय वा मृत्युके दिन ही सूतक हो जाय वा न्यून समयका दूसरा अशौच हो जाय तो इन छहों पक्षोंमें पूर्वके पूर्ण होनेसे शुद्धि होती है; कारण कि याज्ञवल्क्यने लिखा है कि मध्यमें जन्म वा मृत्यु हो जाय तो शेषदिनोंसे ही शुद्धि होती है। बीचमें जान लिया हो यह अर्थ है; कारण कि जन्म आदिका ज्ञान होना ही अशौचका कारण है। पूर्व अशौचके उपरान्त मध्यमें उत्पन्न हुएका ज्ञान हो तो पीछे अशौच करना चाहिये। शुद्धितत्त्वमें भी लिखा है कि पूर्व अशौचके बीचमें उत्पन्न हुएके तुल्य वा लघु निमित्त अशौच वा उसके समयसे पीछे श्रवण किया हो तो वह अपने अशौचका कारण है और ज्ञान न हो तो हेतु नहीं होता; कारण कि श्राद्ध आदिमें विना जाने कदाचित् भी दोष नहीं होता है। इसकी अशौचके सांकर्यमें भी प्रवृत्ति है, इससे अज्ञानसे वृषोत्सर्ग आदि करनेपर पीछे उसके ज्ञान होनेपर भी उसकी आवृत्ति नहीं होती। माधवीयमें यमका लेख है कि जन्ममें जन्म और मरणमें मरण हो जाय तो पहलेके शेषसे शुद्धि होती है, उत्तर अशौच नहीं लगता।

अत्र केचित्-"अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत् स्यादनिर्दशम् ॥" इति मनुपराशराद्यैर्दशाहग्रहणात्पूर्णाशौचे एव पूर्वशेषेण शुद्धिः। त्र्यहाद्यल्पाशौचसंपाते तूत्तरेणैव शुद्धिरित्याहुः । हरदत्तोऽप्येवमाह । गौडा अप्येवम् । तन्न । याज्ञवल्क्यादिवचेन दशाहस्य तुल्यकालाशौचोपलक्षणत्वात् । "समानाशौचसंपाते प्रथमेन समापयेत् । असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥" इति माधवीये शंखोक्तेः । अपरार्कमिताक्षरादिविरोधाच्च । यदा तु सूतके शावं समन्यूनमधिकं वा तदा न पूर्वशेषाच्छुद्धिः । तदाहांगिराः-"सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकम् । तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतके ॥" षट्त्रिंशन्मते-"शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् । शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥" चतुर्विंशतिमतेऽपि-'मृतेन शुध्यते जातं न मृतं जातकेन तु ।' अतो यदा दशाहजननमध्ये तदन्ते वा त्र्यहादि शावं, तदा पूर्वेण शुद्धावपि तन्निमित्तमस्पृश्यत्वं भवत्येव । 'मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत् ।' इति कौर्माच्च । गौतमव्याख्यायां वृद्धात्रिरपि-"सूतकाद्द्विगुणं शावं शावाद्द्विगुणमार्तवम् । आर्तवाद्द्विगुणा सूतिस्ततोऽपि शवदाहकः ॥"

यहां कोई यह लिखते हैं कि दश दिनके भीतर फिर मरण वा जन्म हो जाय तो उतने कालतक ब्राह्मण अशुचि रहता है, जबतक उस प्रथमके दश दिन न हों। इन मनु पराशर आदिके वाक्योंमें दशाह पदका ग्रहण किया है, इससे पूर्ण अशौचमें भी पूर्वशेषसे शुद्धि होती है और तीन दिन आदि अल्प अशौचके सम्पातमें तो पिछलेवालेके पूर्ण होनेपर पवित्रता होती है। हरदत्तने भी ऐसे ही लिखा है, गौड भी ऐसे ही कथन करते हैं, सो उचित नहीं; कारण कि याज्ञवल्क्य आदिके वाक्योंसे दशाह पद समान कालके अशौचमें कहा है। और माधवीयमें शंखका कथन है कि समान अशौचके संपातमें प्रथमसे समाप्त करे और असमान अशौचको दूसरेसे धर्मराजके वचनानुसार समाप्त करे और अपरार्क तथा मिताक्षरा आदिका भी इससे विरोध है। जब सूतकमें मरणाशौच तुल्य, न्यून वा अधिक हो जाय तो पहलेकी पूर्तिसे पवित्रता होती है, यही अंगिराने लिखा है कि सूतकमें मृतक और मृतकमें सूतक हों जाय तो मृतकसे लेकर सूतक करे, सूतकसे मृतक न करना चाहिये। षट्त्रिंशत्का कथन है कि मरणके अशौचमें यदि सूतक हो जाय तो मरणके अशौचसे सूतक शुद्ध होता है, सूतकसे मृतक नहीं। चतुर्विंशतिके मतमें भी कहा है कि मरणसे जातक पवित्र होता है जातकसे मृतक नहीं, इससे जब जन्म दशाहके मध्यमें वा उसके अन्तमें तीन दिन आदि मरणाशौच हो जाय तब पहलेकी पूर्तिसे शुद्धि होनेपर भी उसके निमित्तको अस्पृश्यत्व होता है कूर्मपुराणमें भी लिखा है। कि मरण और जन्मके योगमें मरण बड़ा होता है। गौतमकी व्याख्यामें वृद्धात्रिका भी कथन है कि सूतकसे दूना मरण अशौच और मरणसे दूना आर्तव आर्तवसे दूनी सूति और उससे भी दुगुना मृतकके दाह करनेवालेको

अत्र पूर्वपूर्वेण नोत्तरोत्तरनिवृत्तिरस्पृश्यत्वाधिक्यादित्यर्थः । षडशीतावपि-'स्वभावबहुसूतिस्तु न्यूनशावविशोधिनी ।' इति । रात्रिशेषादौ वर्धितद्वित्रिदिनैरागन्तुकैः सूतेर्बहुत्वं न स्वभावेन । अतस्तत्र न्यूनशावस्यापि न पूर्वेण शुद्धिरिति वक्तुं स्वभावेनेत्युक्तम् । ब्राह्मेऽपि-"नागन्तुकैरथाहोभिराशौचमपनुद्यते । न च पातनिमित्तेन शावस्यान्तस्य शोधनम् ॥" इति । एवं नव पक्षाः । यदा तु त्र्यहाद्यल्पाशौचमध्ये सजातीयं विजातीयं वा दीर्घकालमुत्तरं, तदाप्युत्तरं पूर्णं कार्यम्, न पूर्वेण शुद्धिः । "स्वल्पाशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौचं भवेद्यदि । न पूर्वेण विशुद्धिः स्यात् स्वकालेनैव शुध्यति ॥"इत्युशनसोक्तेः । तेन त्र्यहादिशावमध्ये दशाहादिसूतकेऽपि न पूर्वेण शुद्धिरित्यपरार्कः । शावनिमित्तमस्पृश्यत्वं च भवत्येव । शुद्धिविवेके तु-'शावेन शुध्यते सूतिः' इति प्रागुक्तेस्तत्राप्युत्तराशौचनिवृत्तिरुक्ता । तन्न । उत्तरस्य कालाधिक्येन बलवत्त्वात् । माधवीये यमोऽपि-"अघवृद्धिमदाशौचं पश्चिमेन समापयेत् । यथा त्रिरात्रे प्रक्रान्ते दशाहं प्रविशेद्यदि । आशौचं पुनरागच्छेत्तत्समाप्य विशुध्यति ॥" हारीतोऽपि-'गुरुणा लघु शुध्येत्तु लघुना

होता है । यहां पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तरकी निवृत्ति नहीं होती; कारण कि स्पर्शका अभाव अधिक है । षडशीतिमें भी कहा है कि स्वभावसे अधिक सूति न्यून मरणके अशौचकी विशोधिनी होती है, रात्रिशेष आदिमें बढे दो तीन आनेवाले दिनोंसे सूति अधिक होती हैं कुछ स्वभावसे नहीं, इससे वहां न्यून मृत्युकी भी पूर्वसे शुद्धि नहीं होती, यह कहनेको 'स्वभावेन' यह पद कहा है । ब्राह्मका कथन है कि आनेवाले दिनोंसे अशौच दूर नहीं किया जा सकता और पातके कारणसे शाव अशौच दूसरेका शोधक नहीं है, ऐसे नौ पक्ष हैं।जब तीन दिन आदि अल्पाशौचके बीचमें सजातीय वा विजातीय दीर्घ अशौच पीछेसे हो जाय; तो भी पिछला ही पूर्ण मानना चाहिये, पूर्वशेषसे शुद्धि नहीं होती; कारण कि उशनाने कहा है कि अल्प अशौचके बीचमें दीर्घाशौच हो जाय तो पूर्वाशौचसे शुद्धि नहीं होती किन्तु अपने कालसे शुद्धि होती है, इससे तीन दिन आदि मरणाशौचके मध्यमें दशाह आदि सूतक होनेपर भी पूर्वसे शुद्धि नहीं होती, यह अपरार्कका कथन है और मरण निमित्तका अस्पर्श तो होता ही है । शुद्धिविवेकने तो यथार्थ मरणसे सूति पवित्र होती है, इस पूर्व कहे उस स्थलमें भी उत्तराशौचकी निवृत्ति लिखी है, सो यथार्थ नहीं; कारण कि उत्तर अधिक समयका होनेसे बलवान् है । माधवीयमें यमका भी कथन है कि पापकी वृद्धिवाले अशौचको पिछलेसे समाप्त करे, जैसे त्रिरात्राशौचमें दशाहका प्रवेश हो जाय तो फिर अशौच आजाता है, उसको पूर्ण करके शुद्ध होता है । हारीतने भी लिखा है कि गुरुसे लघु अशौच शुद्ध हो जाता है और लघुसे वह गुरु

नैव तद्गुरु ।' इति गुरुत्वं लघुत्वं च कालकृतमेव । पूर्वानुरोधात् । एतच्च हरदत्तेन स्पष्टमुक्तम् । मिताक्षरायामप्येवम् । यत्तु-"अघानां यौगपद्ये तु ज्ञेया शुद्धिर्गरीयसी । मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत् ॥" इति हारीतकौर्मादि । तत्रा-स्पृश्यत्वाभिप्रायं शावस्य गुरुत्वं ज्ञेयम् । क्वचिदल्पकालेनापि दीर्घकालाशौचनिवृत्तिमाह देवलः-"परतः परतोऽशुद्धिरघवृद्धौ विधीयते । स्याच्चेत्पञ्चतमादह्नः पूर्वेणैवात्र शिष्यते ॥" अस्यार्थः । अघवृद्धौ दीर्घाशौचे परतः शुद्धिः परमाशौचम् । यदि पूर्वाशौचमुत्तरस्य पंचमदिनात्परतोऽनुवर्तते तदा पूर्वेणैव शुद्धिः । पूर्वस्योत्तराशौचार्धाधिककालव्यापित्वे पूर्वशेषाच्छुद्धिरित्यर्थः । यथा षष्ठमासे गर्भपातनिमित्तषडहाशौचमध्ये दशाहपाते पूर्वेणोत्तरनिवृत्तिः । यथा वा त्र्यहमध्ये स्रावपातनिमित्तचतुरहपञ्चाहयोरिति कश्चित् । तन्न । दशाहावधिपूर्वशेषशुद्ध्यावेदकवाक्यविरोधात् । षष्ठादिदिने पूर्णाशौचमन्त्यरात्रौ तु द्व्यह इत्यनौचित्याच्च । अस्मद्गुरवस्तु पञ्चतमादह्न अशौचं ततो न्यूनं त्र्यहादि चेत्स्यादस्मिन्विषये पूर्वेणैवाशुद्धिः शिष्यते । दशाहादिरात्रिशेषे त्र्यहादिपाते त्र्यहाद्यल्पाशौचानां परस्परं रात्रिशेषे संपाते च न द्व्यहादिवृद्धिरित्यर्थमाहुः । क्वचित्पूर्वशेषेण शुद्धे-

---

सूतक शुद्ध नहीं होता । गुरु और लघु कालसे समझने; कारण कि पूर्व ऐसे ही लिखा है, यह हरदत्तने स्पष्ट लिखा है । मिताक्षरामें भी इसी प्रकार लिखा है । जो पापोंका मेल एक साथ हो जाय तो शुद्धिको ही गुरु न जानना, मरण और जन्मके योगमें मरण ही अधिक गुरु होता है, यह हारीत और कूर्मपुराण आदिका कथन है, वहां अस्पर्शके अभिप्रायसे ही मरणाशौचको गुरु जानना । कहीं थोड़े कालसे भी दीर्घकालके अशौचकी निवृत्ति देवलने लिखी है कि पापकी वृद्धि होनेपर पिछले पिछलेसे शुद्धि लिखी है । यदि पांच दिनके मध्यमें हो तो पूर्वका ही शेष रहता है, इसका अर्थ यह है कि पापकी वृद्धिमें दीर्घ अशौच होनेपर पिछले अशौचसे शुद्धि होती है, यदि प्रथम अशौच पिछलेके पांच दिनसे परेतक हो तब पूर्वसे ही शुद्धि होती है, यदि पूर्वका अशौच आगेके अशौचके आधेसे अधिक समयतक व्याप्त हो तो पूर्वके शेषसे शुद्धि होती है । जैसे छठे महीनेमें गर्भपातके छः दिनके अशौचमें दशाहका पात हो जाय तो पहलेसे उत्तरकी निवृत्ति होती है, और जब तीन दिनके बीचमें गर्भस्राव वा पात निमित्त चार वा पांच दिनका आ पड़े, यह कोई कहते हैं, सो उचित नहीं; कारण कि दशदिनपर्यन्त पूर्व शेषकी शुद्धिसे बौधायनोक्त वाक्यका विरोध होगा और छः आदि दिनोंमें पूर्ण अशौच और अन्त्यरात्रिमें तो दो दिन यह उचित नहीं । हमारे गुरु तो यह लिखते हैं कि पांचवें दिनसे प्रथमतक उससे न्यून तीन दिन आदि अशौच हो जाय तो ऐसे विषयमें पूर्वसे ही अशुद्धि शेष रहती है । दशाह आदिके रात्रि शेषमें तीन दिन आदि अशौच हो जाय तो ऐसे विषयमें पूर्वसे ही

रपवादमाह गौतमः—'रात्रिशेषे साति द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः' इति । प्रभातेऽन्त्ययामे । 'रात्रिशेषे द्व्यहाच्छुद्धिर्यामशेषे शुचिस्त्र्यहात् ।' इति शातातपोक्तेः । इदं शावान्ते सूतकपाते सजातीये वा तुल्यम् । अत्र केचित् रात्रिशब्दोऽहोरात्रपरः । 'अहः शेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः' इति शंखलिखितोक्तेः । 'अथ यदि दशरात्राः संनिपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचमानवमाद्दिवसादत ऊर्ध्वं द्विरात्रेण व्युष्टायां त्रिरात्रेण' इति बौधायनोक्तेः । "पुनः पाते दशाहात्प्राक् पूर्वेण सह गच्छति । दशमेऽह्नि पतेद्यस्याहर्द्वयात्स विशुध्यति ॥" इति । 'प्रभाते तु त्रिरात्रेण दशरात्रेष्वयं विधिः ।' इति देवलोक्तेश्च । नवमदशमशब्दौ चोपान्त्यदिनपरौ । तेन क्षत्रियादावपि तथेत्याहुः । माधवीयेऽप्येवम् । अन्ये त्वाहुः—"अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥" इति मनुपराशराद्यैर्दशमदिनेनोत्तरस्य शुद्धेरुक्तत्वाद्विरोधः स्पष्ट एव । विरोधे च—'यद्वै किंचन मनुरवदत्तद्भेषजम्' इति । 'कलौ पाराशरस्मृतिः' इत्यनेन पूर्ववचसां बाधः ।

अशुद्धि शेष रहती है, दशाह आदिके रात्रिशेषमें तीन दिन आदि लघु अशौचोंका परस्पर रात्रिशेषमें योग हो तो दो आदिकी वृद्धि नहीं होती । कहीं तो पूर्वशेषसे शुद्धिका अपवाद गौतमने लिखा है कि रात्रिके शेषमें हो तो दो दिनमें और प्रभात (पिछले पहर) में हो तो तीन दिनमें पवित्रता होती है । और शातातपने भी यही लिखा है कि रात्रिके शेषमें दो दिनसे और पहरके शेषमें दूसरा अशौच हो तो तीन दिनमें शुद्धि जाननी । यह मरणाशौचके अन्तमें सूतक वा मृत्यु हो जाय तो दोनोंके समान है । इस स्थलमें कोई रात्रिपदसे दिनरात ग्रहण करते हैं; कारण कि शंखलिखित आदिने यह लिखा है कि दिनके शेषमें दो दिनमें और प्रभातकाल हो तो तीन दिनमें शुद्धि होती है । अब यदि दश दिनके बीच नव दिनतक हो तो दश दिन अशौच लगता है, तब बौधायनके इस कथनसे दो दिनसे और प्रभातमें हो तो तीन दिनसे शुद्धि होती है और देवलने भी कहा है कि दश दिनसे प्रथम दूसरा अशौच आ जाय तो पहलेके संग जाता है, जो दशवें दिन हो तो दो दिनमें और प्रभातमें हो तो तीन रात्रिसे शुद्धि जाननी यह दश दिनका विधान है । नवम दशम शब्दोंसे अंत्यका निकट दिन और अन्त्य दिन लेना, इससे क्षत्रिय आदिमें भी इसी प्रकार जानो । माधवीयमें भी ऐसे ही लिखा है । और तो यह लिखते हैं कि दश दिनके भीतर फिर मरण वा जन्म हो जाय तो तबतक ब्राह्मण अशुद्ध रहता है जबतक दश दिन न बीते । इस कथनसे मनु पराशर आदिने दशवें दिनसे पिछलेकी शुद्धि मानी है इससे विरोध स्पष्ट है और विरोधमें जो मनुने लिखा है वह औषधवत् जानना चाहिये और कलियुगमें पराशरकी स्मृति यथार्थ है, इससे पहले वाक्योंका

अत एव वाचस्पतिना तेषामनाकरत्वमुक्तम् । साकरत्वेऽपि जातिमात्रविप्रादिविषयं देशान्तरविषयं वा युगान्तरविषयं वास्तु । तेन गौतमीये रात्रिशब्दो नाहोरात्रपरः । 'रात्रिमात्रावशिष्टे' इति मिताक्षरोक्तेश्च । न कुकविकृतिरिवान्यथा व्याख्या युक्ता । माधवस्तु-'अनिर्गतदशाहम्' इति पूर्वस्वग्रंथविरोधादुपेक्ष्य इति। अस्मत्पितृचरणास्तु बौधायनीये-'आनवमाद्दिवसात्' इति द्वितीयाशौचस्य नवमं दिनं प्रथमस्य दशममेवाहुः। द्व्यहादिवृद्धेः पूर्वशेषापवादत्वात् । तस्य च न्यायतो द्वितीयदिनादेव प्रवृत्तेः । अत ऊर्ध्वमिति दशमरात्रिपरम् । शंखलिखितोक्तौ देवलोक्तौ चाहःशेषे दशमेऽह्नि चातीते रात्रौ पतेदित्यर्थः । दशम्यां पिता नाम कुर्यादितिवत् । तेन न मन्वाद्यैर्विरोधो ,नापि मिताक्षराद्यैरित्याहुः । अपरार्के निर्णयामृतस्वरसोऽप्येवम् । यत्तु तत्रैव ब्राह्मे-"आद्यभागद्वयं यावत्सूतकस्य तु सूतके। द्वितीये पतिते त्वाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते ॥ अत ऊर्ध्वं द्वितीयात्तु सूतकान्ताच्छुचिः स्मृतः । एवमेव विचार्यं स्यान्मृतके मृतकान्तरे ॥ मृतकस्यान्तरे यत्र सूतकं प्रतिपद्यते । सूतकस्यान्तरे वाथ मृतकं यत्र विद्यते ॥ मृतकान्ते भवेत्तत्र शुद्धिर्वर्णेषु सर्वशः ॥" इति अस्यार्थस्तत्रैवोक्तः । पूर्वाशौचचरमाहोरात्रस्य दिनरूपे

बाध है, इसीसे वाचस्पतिने उन कथनोंको आकर ग्रन्थोंमें नहीं है; ऐसा कहा है और आकर शास्त्रोंके हो भी तो जातिमात्र ब्राह्मणके विषयमें देशांतरमें वा अन्य युगोंमें उनकी सफलता होगी, इससे गौतमके कथनमें रात्रिशब्द दिनरातका वाचक नहीं है; कारण कि मिताक्षरामें रात्रिमात्रका शेष कहा है सो यह बात कुकविकी रचनाके तुल्य अन्यथा व्याख्या करने योग्य है । माधव तो जब दशदिन न बीते हों, इस पहले अपने ग्रन्थके विरोधसे वह त्यागके योग्य है; ऐसा कहते हैं । हमारे पिताके तो 'आनवमाद्दिवसात्' इस वाक्यसे दूसरे अशौचका नवम दिन और प्रथमका दशम दिन लेते हैं; कारण कि दो दिन आदिकी वृद्धि पूर्वशेषका अपवाद है और न्यायसे उसकी प्रवृत्ति दूसरे ही दिनसे होती है, इसके पीछे यह वाक्य दशम रात्रिका बोधक है । शंखलिखित और देवलके कथनोंमें दिनके शेषमे और दशवें दिन रात्रिशेषमें सूतक लग जायगा, जैसे दशमीको पिता नाम करे यह इस कथनसे न मनुआदिके संग विरोध है, न मिताक्षरा आदिके संग विरोध हैं; यह कहते हैं । अपरार्कमें निर्णयामृत आदिका भी आशय ऐसा ही है । और जो वहां ही ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखा है कि प्रथमके दो भागतक सूतकमें सूतक हो जाय तो प्रथम सूतकसे पवित्रता जाननी चाहिये, इससे परे दूसरे सूतकसे शुद्धि लिखी है, यही विचार एक मरणमें दूसरेके मरनेका है, मरणके मध्यमें जहां सूतक हो जाय वा सूतकके बीचमें मृत्यु हो जाय वहां मृतकके उपरान्त सब वर्णोंमें शुद्धि होती है । इसका अर्थ वहां ही लिखा है कि पहले अशौचसे आगे अहोरात्रके दिन-

आद्यभागद्वयेऽन्याशौचपाते पूर्वेण शुद्धिः । भागद्वयोर्ध्वं रात्रौ सूतकान्तरे द्वितीयात्पूर्वभिन्नात्सूतकान्ताद्द्व्यहादिरूपाच्छुद्धिरिति । अपरार्के त्वाशौचकालं त्रिधा विभज्य निर्गुणविषयत्वेनेदमुक्तम् । अस्य वचनस्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव । अतः पूर्वाशौचान्त्यरात्रावन्याशौचेऽहोरात्रद्वयमधिकं रात्रेरन्त्ययामे तु दिनत्रयमिति भट्टचरणोपदिष्टः पन्थाः । एतत्संपूर्णाशौचसंपाते एव । रात्रिशेषे त्रिरात्रादिसंपाते तु पूर्वशेषेणैव शुद्धिः । द्विरात्रादिवृद्धेः पूर्ववाक्यैर्दशाहविषयत्वादपवादाभावे शेषशुद्धेरेव सामान्यतः प्रवृत्तेः । षडशीतौ तु दशाहान्ते त्र्यहपातेऽपि द्वित्रिदिनवृद्धिरुक्ता—"रात्रिशेषे यदाशौचं पूर्वानधिकमापतेत् । ऊर्ध्वं दिनद्वयं पूर्वाद्यामशेषे दिनत्रयम् ॥" इति । अनधिकं समं न्यूनं वा । तत्तुच्छम् । निर्मूलत्वादन्ते पक्षिण्यादिपातेऽपि द्विरात्रादिवृद्ध्यापत्तेश्च । पूर्वाशौचान्तर्वर्धितद्वित्रिदिनमध्येऽधिकाशौचान्तरपाते तु वर्धितस्याल्पत्वादधिकेनैव शुद्धिः । नच वर्धितस्य पूर्वशेषत्वं शंकनीयम् । रात्रिशेषपूर्वशेषशुद्ध्यपवादे नैमित्तिकावृत्तिन्यायोज्जीवनात् । अपवादाभावे उत्सर्गस्य प्राप्तेः । अपवादान्तरमाह शंखः—"मातर्यग्रे प्रमीताया-

---

रूप पहले दो भागोंमें अल्प अशौच हो जाय तो पूर्वसे शुद्धि होती है, दो भागोंसे ऊपर रातमें अन्य सूतक हो जाय तो दूसरेसे शुद्धि है, पूर्वभिन्न सूतकके पीछे दो दिन आदिसे प्रथमकी अशुद्धि है । अपरार्कमें तो अशौच समयके तीन भाग करके निर्गुणोंके विषयमें यह वाक्य लिखा है, इस वाक्यको जो अप्रमाण कहे, वह मूर्खका प्रलाप है, इससे पूर्वाशौचकी पिछली रातमें अन्य अशौच हो जाय तो दो अहोरात्र अधिक अशौच लगता है, रात्रिके पिछले प्रहरमें हो तो तीन दिन अशौच लगता है, यह मार्ग भट्टचरणोंमे लिखा है, परन्तु तभी जानना जब सम्पूर्ण अशौचके संयोगमें हो । और रात्रिशेषमें तीन दिन आदिका संयोग हो तो पूर्व शेषसे ही शुद्धि जानो; कारण कि दो रात्रि आदिकी वृद्धिको पहले वाक्योंसे दश दिनके विषयमें होनेसे अपवादक नहीं हो सकता है, इससे शेष शुद्धिकी ही सामान्यतः प्रवृत्ति होती है । षडशीतिमें तो दशाहके पीछे तीन दिनके अशौचके योगमें भी दो तीन दिनकी वृद्धि लिखी है कि रात्रिके शेषमें जब पहलेके तुल्य वा न्यून अशौच लगता हो तो पहलेसे दो दिन अधिक और प्रहरके पीछेसे हो तो तीन दिन अधिक अशौच लगता है, सो कुछ नहीं है; कारण कि वे वाक्य निर्मूल हैं और पीछेसे पक्षिणी आदिके योगमें भी दो रात्रि आदिकी वृद्धि हो जायगी । प्रथम अशौचके बीचमें बढ़े हुए दो तीन दिनके बीचमें बढ़ा और अशौचका योग हो जाय तो बढ़े हुएसे थोडा होनेसे अधिकसे ही पवित्रता होती है । यदि कोई यह शंका करे कि बढ़ा हुआ पूर्वका शेष है, सो उचित नहीं; कारण कि रात्रिके शेष पूर्व शेषकी शुद्धिका अपवाद है न्यायसे नैमित्तिक अशौचका होना है और अपवादके न होनेमें उत्सर्गकी प्राप्ति यहां जाननी चाहिये । शंखने अपवादान्तर कहा है कि माता प्रथम मरी हो और अशुद्धिमें ही पिता मृतक

मशुद्धौ म्रियते पिता । पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम् ॥" पादत्रयं स्पष्टम् । तुर्यस्य त्वयमर्थः–पित्राशौचमध्ये मातुर्मृतौ पित्राशौचान्ते मातुः पक्षिणीमधिकां कुर्यादिति । अत्राशुद्धावित्युक्तेरात्महादेः पितुराशौचाभावान्मातृमरणे न पक्षिणी, किंतु पूर्णमेवाशौचम् । इयं च पक्षिणी तृतीयादिदिनपरा । नाद्यदिनद्वये प्रतिनिमित्तनैमित्तिकावृत्तिन्यायापवादपूर्वशेषापवादत्वादिति पितृचरणाः । सपिण्डाद्याशौचेन मातापित्रोराशौचापगमो नास्त्येव । एवं भर्तुरपि । इयं च पक्षिणी दशमदिनात्पूर्वं मातृमरणे ज्ञेया । दशम्यां रात्रौ तत्प्रभाते वा मातृमरणे द्व्यहत्र्यहसमुचिता पक्षिणीति कश्चित् । तन्न । संख्यान्तरोपजननापत्त्या त्र्यहादिश्रुतिबाधापत्तेः । अत एवैका देया षड् देया इत्यादौ श्रुतसंख्याबाधापत्तेः समुच्चयो निरस्तो द्वादशे । गुरुणि लघ्वोरन्तर्गतेः–'गुरुणा लघु शुद्ध्येत' इत्युक्तेश्च । मातुरन्वारोहणे तु न पक्षिणी । "यदा नारी विशेदग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया । तदाशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेण हि ॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदये लघुहारीतोक्तेः । तत्रैव षडशीतिमतेऽपि–"मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता । न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥ पुत्रोऽन्यो वाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचि-

जाय तो पिताके शेष अशौचसे पवित्रता होती है और माताकी पक्षिणी अशौच करे । इस श्लोकके तीन पाद तो स्पष्ट हैं और चौथेका यह अर्थ है कि पिताके अशौचके बीचमें यदि माताकी मृत्यु हो जाय तो पिताके अशौच उपरान्त माताकी पक्षिणी अधिक करे, इस स्थलमें 'अशुद्धौ' पद कहनेसे आत्महत्याकारी पिताके अशौचके अभावसे माताके मरनेमें पक्षिणी न करनी; किन्तु पूर्ण अशौच करे । यह पक्षिणी तृतीयादि दिनपरत्व जाननी, न कि पहले दो दिनमें निमित्त नहीं नैमित्तिक प्राप्तके न्यायसे उसका अपवाद है, यह हमारे पिताका कथन है । सपिण्डादिके अशौचसे मातापिताके अशौचका अभाव नहीं होता, इसी प्रकार पतिका भी जानना चाहिये । यह पक्षिणी दशवें दिनसे प्रथम माताके मरणमें जाननी चाहिये । दशमीकी रात वा उसके प्रातःकालमें माताकी मृत्यु हो तो दो तीन दिन सहित पक्षिणी करनी चाहिये, यह किन्हींका मत है, सो ठीक नहीं; कारण कि दूसरी संख्या उत्पन्न होनेसे तीन दिन आदिकी श्रुतिका बाध प्राप्त होगा, इस कारण 'एक देनी, छः देनी' इत्यादि श्रुतिसंख्याका बाध प्राप्त होनेसे उसके बारहमें समुच्चयका निरास लिखा है और गुरु अशौचमें लघु अशौच आ जाय तो गुरुसे लघु शुद्ध होता है यह भी लिखा है । माता पतिके साथ मृतक हो तो पक्षिणी न करे, क्योंकि जो स्त्री पतिके प्रियकी इच्छासे अग्निमें प्रवेश करे तो पतिके अशौच क्रमसे उसका अशौच करना, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लघुहारीतका वचन है । वहाँ ही षडशीतिके मतमें भी कहा है कि जो नारी मृतक पतिके पीछे अग्निमें प्रवेश करे, तो वहाँ पक्षिणी न करनी, क्योंकि वह पिताके अशौचसे ही शुद्ध होता है । पुत्र वा और कोई जो उसे अग्नि दे तो उसकी पितामाताके अशौचतक ही अशु-

स्तयोः। नवश्राद्धं च पिण्डं च युगपत्तु समापयेत् ॥" गृहीताशौचानां पुत्राणां पितुः संस्कारे मातुः सपिण्डस्य वा मरणे नायं निर्णयः। अतिक्रान्तकालाद्विद्यमानानिमित्तस्य बलवत्त्वात्। द्वादशवर्षोत्तरं संस्काराशौचमध्ये सपिण्डमरणेऽप्येवम्। यत्तु अपरार्के ब्राह्मे-"ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी। त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत् ॥" इति तद्भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्राशौचपरम्, इति पृथ्वीचन्द्रः। ब्राह्मणादेः क्षत्रियाद्यनुगमनेऽल्पाशौचपरमित्यपरार्कः। शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्रम्। सहगमने तु संपूर्णम्। युद्धहतस्य सद्यः शौचान्वारोहणे ब्राह्मोक्तेस्त्रिरात्रत्वात्। भर्तुरपि त्र्यहेण पिण्डदानम्। एकचितौ तु सद्यः शौचमित्याहुः। अन्यत्प्रागुक्तम्। पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादान्तरमुक्तं षडशीत्याम्-"पूर्वाशौचेन या शुद्धिः मृतके सूतके च सा। सूतिकामग्निदं हित्वा प्रेतस्य च सुतानपि ॥" निर्णयामृते स्मृतिसंग्रहेऽपि-'इयं विशुद्धिरुदिता सूतिकामग्निदं विना।' इदं मूल्येन दाहकरणे। मातुलादिसंबन्धेन दाहमात्रकरणे तु त्रिरात्रमेवेत्युक्तं प्राक्। वृद्धात्रिः-" सूतका-

---

द्धता रहती है, और नवश्राद्ध तथा सापिण्डी एकत्र करनी चाहिये। यदि प्राप्त अशौचवाले पुत्र पिताका संस्कार करे और माता वा सपिण्डका मरण हो जाय तो यह निर्णय नहीं जानना; कारण कि जिसका समय बीत गया हो उससे विद्यमान निमित्तकी बलवत्ता है। बारह वर्षके उपरान्त संस्कार अशौचके मध्यमें सपिण्डमरणमें भी यही अशौच है। जो अपरार्कमें ब्रह्माका वचन है कि ऋग्वेदके कथनसे साध्वी स्त्री आत्मत्याग न करे, तौ तीन दिनके अशौच उपरान्त शास्त्रमें कहे श्राद्धको प्राप्त होती है, वह वाक्य पतिके अशौच उपरान्त चितामें प्राप्त होनेमें तीन दिनके अशौचमें जानना, यह पृथ्वीचन्द्रका कथन है। अपरार्क तो यह लिखते हैं कि ब्राह्मण आदिको क्षत्रिय आदिके अनुगमनके अल्पाशौचमें यह वाक्य है। शुद्धितत्त्वादिमें गौड तो यह कहते हैं कि पतिके अशौच उपरान्त अन्वारोहणमें तीन रात और सहगमनमें सम्पूर्ण अशौच लगता है और युद्धमें मृतक हुएका सद्यः अशौचमें, अन्वारोहणमें ब्राह्मके तीन रात कहनेसे पतिको भी तीन रातमें ही पिण्डदान दे, एक चिता हो तो तत्काल शौच होता है और अन्य प्रथम कह आये हैं। पूर्वशेषसे शुद्धिका अन्य भी अपवाद षडशीतिमें कहा है कि सूतक वा मृतकमें पहले अशौचसे जो शुद्धि होती है वह सूतिका तथा अग्निका देनेवाला और प्रेतके पुत्रोंको त्यागकर है। निर्णयामृत और स्मृतिसंग्रहमें भी कहा है कि सूतिका और अग्निके देनेवालेको त्यागकर इस प्रकार शुद्धि लिखी है, परन्तु यह मोल लेकर दाह करनेमें है और मामा आदिरूप सम्बन्धसे दाह करनेमें तो त्रिरात्र होता है, यह प्रथम कह आये हैं। वृद्धात्रिने लिखा है कि सूतकसे दूनी मृत्यु और मृत्युसे दूना आर्तव और आर्तवसे दूनी सूतिका तथा उससे भी दूना अशौच शवको दाह करनेमें है। ऐसे ही अशौचके

द्विगुणं शावं शावाद्विगुणमार्तवम् । आर्तवाद्विगुणा सूतिस्ततोऽपि शवदाहकः ॥" तथाशौचसंपातेऽपि न शावजननिमित्तकार्यप्रतिबन्धः । "आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥" इति प्रजापतिस्मृतेः । आशौचे तु द्विविधेऽपि शातातपः-"अन्तर्दशाहे जननात्पश्चात्स्यान्मरणं यदि । प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥ प्रारब्धे प्रेतपिण्डे तु मध्ये चेज्जननं भवेत् । तथैवाशौचपिण्डांस्तु शेषान्दद्याद्यथाविधि ॥" मातुः पक्षिणी । मध्ये पितुरेकादशाहं कुर्यात् ।'आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि ।' इति स्मृतेः। केचित्त्विदं क्षत्रियादिपरम् । विप्रादेस्त्वाशौचान्तर एकादशाहश्राद्धं नेत्याहुः । अत एव विज्ञानेश्वरेण-'दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत् ।' इति शुचित्वे महैकोद्दिष्टाङ्गविप्रनिमन्त्रणपरमिति वदता तत्र शुद्धेरङ्गत्वं दर्शितम् । एवं वृषोत्सर्गशय्यादानादावपि । देवयाज्ञिकेन त्वाशौचान्तरेऽपि भवत्येवेत्युक्तम् ॥ अथाशौचापवादनिर्णयः । स च पञ्चधा । कर्तृतः कर्मतः द्रव्यतः मृतदोषतः विधानाच्च । आद्यो ब्रह्मचारियत्यादिषु । "नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । नाशौचं कीर्तितं सद्भिः पतिते च तथा मृते ॥" इति कौर्मोक्तेः । तुर्यपादे 'शावे वापि तथैव च' इति देवलपाठः । आशौचमन्त्यक-

---

संपातमें भी मृत्यु और जन्मनिमित्तक कार्योंका प्रतिबंध नहीं होता है; कारण कि प्रजापतिकी स्मृतिमें लिखा है कि अशौचकी प्राप्तिमें जब पुत्रजन्म हो जाय तो कर्मके करनेवालेकी उसी समय शुद्धि होती है और प्रथम अशौचसे शुद्ध होता है । दो प्रकारके अशौचमें भी शातातपने लिखा है कि जन्मसे उपरान्त दश दिनके भीतर मृत्यु हो जाय तो प्रेतके निमित्त विधिसे पिण्डदान करे और प्रेत पिण्डके प्रारम्भ हो जानेपर मध्यमें यदि जनन हो जाय तो उसी प्रकार शेष पिण्डोंको विधिपूर्वक दे । माताकी पक्षिणीके बीचमें पिताका एकादशाह भी करना; कारण कि ऐसा स्मृतिने कहा है कि अशुद्ध मनुष्य भी एकादशाहमें प्रथम श्राद्ध करे । कोई तो यह लिखते हैं कि यह क्षत्रिय आदिके विषयमें है, ब्राह्मण आदिको तो और अशौचमें एकादशाह श्राद्ध करनेकी विधि नहीं है । इसीसे विज्ञानेश्वरने लिखा है कि दशवां पिंड देकर रात्रिके शेषसे शुद्ध होता है,यह शुद्ध होना एकोदिष्टका अंग है, जो ब्राह्मणके निमंत्रणमें है, यह कहकर शुद्धिको अंग कहा है । इसी प्रकार वृषोत्सर्ग और शय्यादान आदिमें भी जानना। देवयाज्ञिकने तो लिखा है कि अन्य अशौचमें भी यह होता है । अब अशौचका अपवाद वर्णन करते हैं-वह पांच प्रकारका कहा है कि कर्तासे, कर्मसे, द्रव्यसे, मृत्युके दोषसे और विधिसे । प्रथमके दो ब्रह्मचारी यति आदिकोंमें है, कारण कि नैष्ठिक वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्रह्मचारी और पतितके मृतक होनेपर महात्माओंने अशौच नहीं लिखा है, यह कूर्ममें लिखा है। चौथे पादमें देवलने 'शावे वापि तथैव च' यह पाठ लिखा है । यह अशौच अन्त्यकर्मका उपलक्षण है; कारण कि देवलने कहा है कि ब्रह्मचारी मृतककी वाह (मुर्दा ले जाना) आदि

र्मोपलक्षणम् । "ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकाः क्रियाः । यदि कुर्याच्चरे-त्कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च ॥" इति देवलोक्तेः । एतत्पित्राद्यतिरिक्तविषयम् । "आचार्यं स्वमुपाध्यायं मातरं पितरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन वियु-ज्यते ॥" इति मनूक्तेः । हारीतः-"आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन वियुज्यते ॥ मातापित्रोस्तु यत्प्रोक्तं व्रतचारी तु पुत्रकः । व्रतस्थोऽपि हि कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाम् ॥ भवत्यशौचं नैवास्य नैवाग्निस्तस्य लुप्यते । स्वाध्यायं च प्रकुर्वीत पूर्ववद्विधिदर्शितम् ॥" संवर्तः-" अन्यगोत्रोपसंबन्धः प्रेतस्याग्निं ददाति यः । पिण्डं चोदकदानं च स दशाहं समाचरेत् ॥" निर्हरणमन्त्यकर्मपरम् । एवं मातामहस्य-"यथा व्रतस्थोऽपि सुतः पितुः कुर्यात् क्रियां नृप । तथा मातामहस्यापि दौहित्रः कर्तुमर्हति ॥" इत्यपरार्के भविष्योक्तेः । " मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदैहिकम् । कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात् ।" इति कालादर्शाच्च । तत्रान्त्यकर्मनिमित्तमस्पृश्यत्वं दशाहमस्त्येव ॥ "सगोत्रो वासगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः । सोऽपि कुर्या-न्नवश्राद्धं शुद्ध्येत्तु दशमेऽहनि ॥" इति दिवोदासोक्तवचनात् । अत एव 'ब्रह्मचा-रिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोर्गुरोश्च' इति गौतमीये व्रतनिवृत्ते-

---

क्रिया न करे और यदि करे तो कृच्छ्रव्रत और फिर संस्कार करे। यह पिता आदिसे भिन्नके विषयमें जानना; कारण कि मनुने लिखा है कि आचार्य, अपना उपाध्याय, माता, पिता और गुरु इनका निर्हरण करके भी ब्रह्मचारी व्रतसे हीन नहीं होता है । और हारीत कहते हैं कि आचार्य, अपना उपाध्याय, माता, पिता और गुरु इनका अन्त्यकर्म करके व्रती व्रतसे वियुक्त नहीं होता । माता पिताका जो कहा है कि व्रत करनेवाला पुत्र व्रतमें स्थित हुआ भी पिण्डदान और जलक्रिया करे तो उसको अशौच नहीं लगता और न अग्नि लुप्त होती है तथा वह पूर्वके समान विधिदर्शित स्वाध्याय करे। संवर्त कहते हैं कि अन्य गोत्रके संब-न्धसे जो प्रेतको अग्नि देता है तथा पिण्ड और जलदान करता है वह दशाह करे। अपरार्कमें भविष्यपुराणका कथन है कि जिस प्रकार व्रतमें भी स्थित पुत्र पिताकी क्रिया करता है उसी प्रकार धेवता नानाकी क्रियाको करे। कालादर्शमें कहा है कि माता, पिता, उपाध्याय, आचार्य और नानाके और्ध्वदैहिक कर्मको करके ब्रह्मचारी अपने व्रतसे पतित नहीं होता है। वहां अंत्यकर्मका किया अस्पर्श तो दश दिनतक होता ही है; कारण कि दिवोदासका यह वाक्य है कि सगोत्री हो वा असगोत्री हो जो अग्नि दे वह भी नवश्राद्ध करे और दशवें दिन पवित्र होता है। इसीसे मृतकके कर्म करनेवाले ब्रह्मचारीको माता, पिता, गुरुको त्यागकर व्रतसे निवृत्ति है, इस गौतमके कथनमें व्रत निवृत्तिका निषेध है अशौचका नहीं है। संध्या आदिका लोप तो